

GOVERNMENT OF INDIA

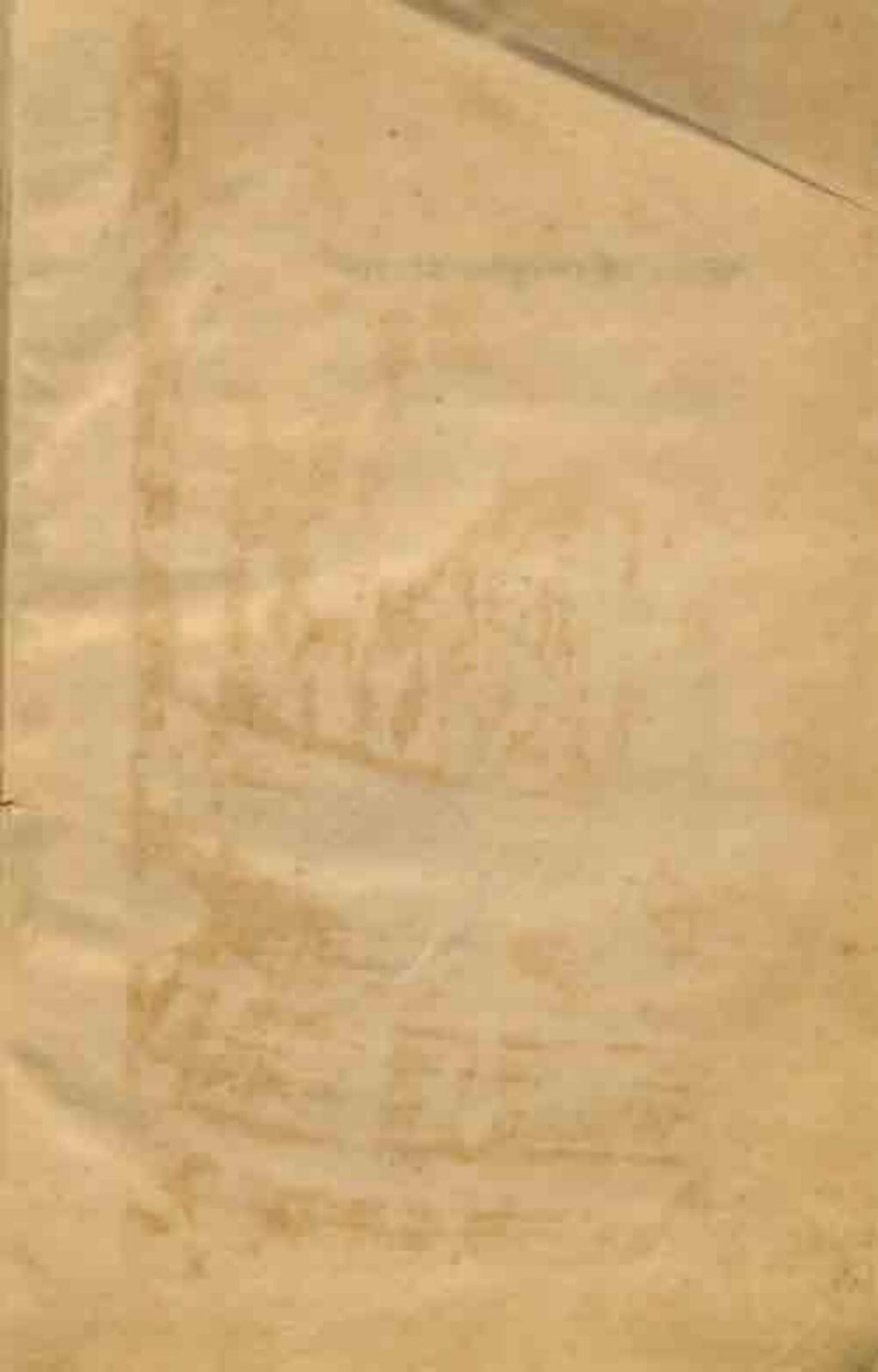
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

**CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY**

Acc. No. 52258

CALL NO. 722.4109 / Vaj

D.G.A. 79.



भारतीय वास्तुकला का इतिहास



Bharatiya Vastukala Ka
Sikhiyaa

by

Krishnandutt Vaffai

Hindi Samiti, Lucknow,
1972

भारतीय वास्तुकला का इतिहास

52258

लेखक

कुण्डलांग वाजपेयी
टैगोर ब्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृत तथा पुरातत्त्व विभाग,
सामर विविधालय
(महाराष्ट्र)

722.4109

Vaj

•
हिन्दी समिति
हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग
लखनऊ

प्रथम संस्करण

१९७२

प्राचीन

मूल्य ८००
[आठ रुपये]

XAL AUGHAN LIBRARY, NEW DELHI
Acc. No. S 22 S 8
Date 12.1.73
Bill No. 742-4429/Vaf

मुद्रकः

प्रेस प्रिटिंग प्रेस

२५७-गोलांगंज, लखनऊ

प्रकाशकीय

भारत के अमृत अतीत को मृत्तुं रूप देने वाला बास्तुशिल्प, इतिहास के विद्यार्थियों के साथ-साथ सभी शिल्प और कलानुग्रहियों के लिए चिरतत्त्व आकर्षण का विषय रहा है।

मोहनजीद्वारा और हड्डपा के लघुभग प्रार्थितामिक काल से लेकर १३वीं शती के अन्त तक भारतीय बास्तुशिल्प के उत्कर्ष को ऐरम्भना अविराम मृति से बचती रही, एक वेदाङ्ग के क्षय में इसकी प्रतिष्ठा हुई। इस विकास का एक रहस्य यह भी था कि बास्तुशिल्प का अधिष्ठाता स्वपति न केवल एक कृचल और निष्ठावान् शिल्पी फिल्तु अनिवार्यतः ज्ञानवान् भी होता था। अपने ज्ञान, कौशल और निष्ठा के अनुकूल ही समाज में उसे सम्मानित स्थान प्राप्त था।

कत्ता और सौन्दर्य के उपासक भारतीय जनमानस ने अपने स्वापतियों और शिल्पियों को निष्ठा और सौन्दर्य-बोध की जो धरोहर सौंपी उसे उन्होंने सहस्रगुणित कर लोटाया, इसकी साथी भारतवर्ष के कोने-कोने में विश्वरी पक्षी जगता, एतोरा, कोणार्क और विन्दुराहो जैसी जीवन्त कला-कृतियाँ हैं, जिनका निर्माण, शिल्पी की नैसर्गिक निष्ठा और जनन्य कलानुग्रह के अभाव में, मात्र अपनी विनाश शक्ति सम्पदा और वैभव के बल पर करा सकता वह से बड़े सभाट के लिए सम्भव नहीं था।

पत्थर ने आधार और राजवंशों ने सौखिय देकर विस मृति को आकार दिलाया शिल्पी की अनन्यता ने उसमें प्राप्तप्रतिष्ठा की। हृदय की जनन्य अद्वा और स्तेह से जग्नप्राप्ति उभावी लेनी ने भारतीय पूजामूर्हों की सौन्दर्य और सौष्ठुद्व द्वारा बास्तुशिल्प को विकास के चरम जिवर पर पहुँचा दिया। भारतीय मंस्तकिं की महज उपारता ने अन्य लेखों की तरह बास्तु शिल्प के धोख पर भी मुद्ररखापों प्रभाव डाला। शताविंयों तक देवा-विदेश के कलाकार इससे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी कला को प्राणवान् बनाते रहे।

प्रस्तुत पुस्तक में कंदराओं और पण्डितालालों से लेकर विशाल देवालयों और महालयों एवं दुगों के विकास की कहानी ऐतिहासिक इमवद्वता के साथ प्रांगन और आकर्षक भाषा में प्रस्तुत की गयी है। पुस्तक अपेक्षाकृत संक्षिप्त होते हुए भी कोई महत्वपूर्ण विवरण छूटने नहीं पाया है। आला है बास्तुशिल्प के विद्यार्थियों के साथ-साथ यह पुस्तक शृंखलों को भी सम्मृद्ध करने में समर्पण होगी।

—लोकाधार शर्मा पर्वतीय
सचिव, हिन्दी समिति

Effacement

is a process of gradual disappearance of a substance, usually
solid or adhesive, from a surface, which may be due to

a slow rate of evaporation or absorption by a liquid,
or due to the action of heat, light, or other agencies,
which decompose, disintegrate, or otherwise affect
the substance.

The term is also applied to
the gradual loss of a portion of the surface of books and
manuscripts, either by the action of the elements, the
sun, heat, water, fire, insects, or the like, or by
the use of acids, bleaches, solvents, or other substances, which
remove a portion of the surface, leaving a rough, uneven, or
irregular texture.

Effacement is often used to denote the gradual
loss of some part of the surface texture of books and
manuscripts, either by the action of the elements, the
sun, heat, water, fire, insects, or the like, or by
the use of acids, bleaches, solvents, or other substances,
which remove a portion of the surface, leaving a rough, uneven, or
irregular texture.

The term is also used to denote the gradual
loss of some part of the surface texture of books and
manuscripts, either by the action of the elements, the
sun, heat, water, fire, insects, or the like, or by
the use of acids, bleaches, solvents, or other substances,
which remove a portion of the surface, leaving a rough, uneven, or
irregular texture.

Effacement is also used to denote

the gradual

प्रावकथन

अब लिख कलाओं की तरह भारतीय वास्तु-कला का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन भारत में भवन-निर्माण को साधारण जिल्य से ऊपर भाना गया। इमारतों में उपर्योगिता के साथ-नाथ कलात्मकता भी अपेक्षित समझी गयी। स्थापत्य या वास्तु के विविध अंगों का प्राचीन भारत में इतना अधिक विकास हुआ कि उसके सम्बन्ध में विस्तृत वास्तुलेखन की लाभाश्वकता पड़ी। वास्तु पर बनेक स्वतन्त्र पर्यायों की रचना हुई। स्थापत्य की विविध तकनीकों तथा इमारतों के नाम सभ्यों के प्रचुर विवरण वैदिक ग्रन्थों से लेकर परम्परी संस्कृत-प्राहृत प्रन्दों में उपलब्ध हैं।

यही तक वास्तु के क्रिया-योग का सम्बन्ध है, यह मनोरंजक तथा है कि प्रारम्भिक हृषीकाश सम्भवता के बूँद से लेकर १००वीं शती तक भारत में धार्मिक तथा लौकिक वास्तु के बहुसंख्यक रूप निर्मित हुए। देश में तथा उसके बाहर स्थापत्य के जो अवधित उदाहरण सुरक्षित रह सके हैं, वे इस बात के उद्घोषक हैं कि यही वास्तु के क्षेत्र में अत्यधिक विमति हुई। यह कहा जा सकता है कि सभ्यूण भारत असेहा स्मारकों का एक विशाल सम्प्रदाय है। निस्तरेह विषय की प्राचीन वास्तुकला के क्षेत्र में भारत का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है।

वेद से हमारे विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में प्राचीन भारतीय वास्तुकला का अध्ययन स्वतन्त्र रूप में आरम्भ हुआ तब से इस और विद्वानों का अधिक ध्यान गया है। इस विषय के अध्ययन-अध्यापन में जो सबसे बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है वह है हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपयोगी पुस्तकों का अभाव। जो पुस्तकें अपेक्षी में या अन्य विदेशी भाषाओं में उपलब्ध हैं वे प्रायः विदेशी विद्वानों की लिखी हुई हैं। इन विद्वानों ने इहे परिवर्तन के माध्य भारत के विभिन्न धर्मों के स्मारकों के साचिक विवरण प्रस्तुत किये हैं। अनेक प्राचीन इमारतें अब नष्ट हो गयी हैं या विलत अवस्था में हैं। यदि उक्त विद्वानों द्वारा तैयार किये गये उनके साचिक विवरण हमें उपलब्ध न होते तो उनके सम्बन्ध में सम्बन्ध जानकारी प्राप्त करने में वही कठिनाई होती। कानिष्ठम्, गल्मीन, इवोस, विनोद्द स्मिष्य, हैरेस, जौन याङ्गोन, पर्सी झाडम, स्टेना कैमरिन आदि विद्वानों के हम जानकारी है जिन्होंने भारतीय स्थापत्य का अध्ययन-विवेचन किया। किन्तु इन विद्वानों की कृतियों ने दो विशेष कमियां दृष्टिमोदर होती हैं: 'पहस्ती वह कि अधिकांश पास्त्रालय

विद्वानों से प्राचीन वास्तु पर लिखते समय भारतीय साहित्य तथा परम्परा के प्रति उपेक्षा दिलायी है। प्राचीन भारतीय साहित्य में वास्तु-सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध है, परन्तु उसका उपयोग उक्त तथा अन्य सभ्याओं लेखकों ने बहुत कम किया है। कई सेवकों ने तो इस ओर विलक्षण ध्यान नहीं दिया। दूसरी बात पूर्वोपर्याप्त की है, जिससे हुवेल-जैसे कलिपय विद्वानों को छोड़कर अधिकांश विदेशी लेखक अपने को मुक्त नहीं कर सके। भारतीय वास्तु के उद्भव और विकास में भी वे भारत के स्वतन्त्र चिन्तन को कोई महत्व न देकर उसमें विदेशी अनुकरण ही ढूँढते हैं।

उक्त दोनों मुख्य कारणों से प्राचीन भारतीय स्थापत्य का सही रूप हमारे सामने उपस्थित न हो सका। प्रस्त्राता की बात है कि पी० के० आचार्य, आमन्दकुमारत्रिमी, वासुदेव गृष्ण अध्यात्म, कृष्णदेव, के० आर० श्रीनिवासन्, के० वी० सोदरराजन्, मधुमूदित डाकी जादि के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय वास्तु का सही तथा सांगोपाग परिचय हमारे सामने आया है। इन विद्वानों ने निररोध विज्ञानिक दण का अवलम्बन कर भारतीय वास्तु का अध्ययन यहाँ की समृद्ध साहित्यिक परम्परा की पृष्ठभूमि में करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राचीनतम बात से लेकर १३वीं शती के अन्त तक के भारतीय वास्तु का इतिहास दिया गया है। पुस्तक १० अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में भारतीय वास्तु की धार्मिक और लौकिक पृष्ठभूमि का विस्तृण है। दूसरे अध्याय से लेकर नवे अध्याय तक कालक्रमानुसार भारतीय वास्तु का विवरण दिया गया है। प्राचीन भारत के इस लम्बे इतिहास में देश के विभिन्न भेदों में वास्तु की अनेक विधाओं को मूर्त्त कर मिला। इनका सोवाहरण विवेचन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। विषम औ ठोक प्रकार से समझने के लिए वास्तु के विविध न्वलों के चित्र दिये गये हैं। भारतीय वास्तु का विदेशी में जो प्रसार हुआ उसका संक्षिप्त विवरण अन्तिम अध्याय में है दिया गया है। विदेशी में भारतीय धर्मों के साप स्थापत्य एवं मूर्तिकला के प्रसार की धीरघमय गाथा को घिन्नभूत नहीं किया जा सकता।

इस ग्रन्थ में जाधारभूत साहित्यिक तथा पूर्व-जात पुरातत्त्वों स्मृतों का जाधार लिया गया है। इसके अतिरिक्त हाल में किये गये भारतीय पुरातत्त्वों जॉडों से प्राप्त सामग्री का भी संक्षेपस्थक उपयोग किया गया है।

जिन विद्वानों के दर्शनों तथा लेखों से इस ग्रन्थ में सहायता की गयी है उनके प्रति मैं जाऊंगी हूँ। मेरे भारतीय मित्र डा० वासुदेवलाल जगद्वाल भारतीय कला के मरमेज वे। उन्होंने प्राचीन स्थापत्य तथा मूर्तिकला के विषय में अनेक वौलिक उद्भावनाएँ की।

मूल अवलोक्तों को साहित्य के साथ देखने-प्रशंसने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। इस गम्य के अध्याय ५, ६ तथा ७ में मैंने उनके अनेक विवरणों तथा निष्कार्यों का विशेष रूप से उपरोक्त किया है। अमेरिकन लकादमी, बनारस तथा उसके एक विद्वान् अधिकारी थी नवमूदन दाकी के प्रति मैं अनुगृहीत हूँ, जिनसे मूँझे स्थापत्य के विषय में अनेक उपयोगी मुद्रायां मिले। यस्य में उपपुक्त चिक्कों के लिए मैं केन्द्रीय पुस्तकालय विभाग का आभारी हूँ। हिन्दी भभिति के कमठ मचिच भी बीलाधर शर्मी 'गवेतीय' नाम से विशेष धन्यवाद देता हूँ। वे इस पुस्तक को पूर्ण करने को प्रेरणा मूँझे निरन्तर देते रहे। गम्य के मुद्रण-कार्य में नक्किय सहयोग देने के लिए भी अनन्तप्रसाद विद्वार्यों का मैं जत्यन्त आभारी हूँ। श्री कृष्णकुमार विपाठो ने पुस्तक का टकन-कार्य बड़े धम से पूरा किया। चित्रकार भी कोठारी ने अपने संघर्ष से मूँझे स्थापत्य-सम्बन्धी कई चित्र दिये। इन दोनों के प्रति भी मैं आभार अद्वक्त करता हूँ।

—कृष्णदत्त वाङ्पेयी

विषय सूची

	पृष्ठ
१— धार्मिक तथा लौकिक पृष्ठ-भूमि	१-३
धार्मिक वास्तु	२
लौकिक वास्तु	५
२— हड्डिया-सम्बन्धितायुग	१०-२८
हड्डिया-सम्बन्धिता के प्रमुख लेन्ड तथा स्पारक	१२-२८
हड्डिया	१२
माहेनजोदहो	१६
चमहुदहो	२५
नोबत	२६
३— वैदिक वास्तु	३०-३८
४— प्राक्-भौर्य तथा भौर्यकाल	४०-५१
प्राक्-भौर्यकालीन वास्तु (५० पृ० ५००-५० पृ० ३२५)	४१
स्पारक	४५
भौर्यकालीन वास्तु	४६
५— सुग-सातवाहन युग	५२-८०
स्तूप निर्माण	५५
महास्तूप की तकनीक	५६
भ्रह्मत	५७
सांची	५८
बोधगया	५८
मधुरा	५९
६— गुहा वास्तु	६१-८५
उदयगिरि खण्डगिरि गुहाएँ	६१
परिचम भारत की बोंड गुहाएँ	८२
भाजा	८३
कोंडाले—भीतलखोरा	८४
अबन्ता	८५
बेदसा	८०

नासिक		८१
जुमार		८०
काले		८३
कन्हेरो		८५
७— यांधार तथा बेगी वास्तु		८६-९०३
यांधार वास्तु		८६
बेगी लोत		८६
गृटपल्ले		८८
गोती—भट्टियोदू—वाटवाल		८८
जगयापेटट—अमरावती		९००
नागार्जुनीकोडा		९०१
८— गुप्तकाल		९०४-९१५
मुहा-न्याय		९०५
एरण		९०६
देवगढ़		९०७
नवना-भूमरा		९०८
भीतर गोव मन्दिर		९०९
स्त्रूप तथा विहार		९१०
९— मध्यकाल (६००-१३०० ई०)		९१६-९३३
मन्दिर वास्तु का लैली विभाजन		९१७
चंद्राहो मन्दिर		९२३
कलिश मन्दिर समूह		९२६
चाहूरम लैली		९२७
पल्लव वास्तु		९२८
बोल वास्तु		९३०
राष्ट्रकूट ग्रैली		९३२
१०— भारतीय वास्तु का विवेशों में प्रसार		९३४-९३६
महायक घट सूची		९४०-९४३
वास्तुकलाणी		९४५-९५८
चित्र कलक		९-३२

धार्मिक तथा लौकिक पृष्ठभूमि

स्वापत्र या बास्तु को एक लौलित करा माना गया है। चित्रकाला, मूर्तिकाला, साहित्य तथा भाषण अन्य मुख्य लौलित कलाएँ हैं। भारतीय परम्परा में बास्तु को वैदिक से समृद्धभूत कहा गया है। इसका विशेष सम्बन्ध ज्योतिष तथा कल्प के माध्य जोड़ा गया है। स्वापत्र को कुछ लेखकों ने भार उपचेदों से से एक स्वीकार किया है।

स्वापत्र भवन-गिरिण कला है। प्रार्थितिहासिक युग से मानव को जीवन-रक्षा के लिए, किसी आश्रय की आवश्यकता पड़ी। आरम्भ में तबभूत, उनकी आखारी अवस्था पर्वतों की कन्दराएँ आदिम जन के आश्रय बने। इनमें पहाड़ की नुफार (जिताधर्म) अधिक सुविधावलक थी। अधिकांश नुफार प्राकृतिक थी। जातान्त्रर में मानव द्वारा पहाड़ को हाड़-चाटकर निवास के लिए नुफार बनायी जाने लगी। जिताधर्म में रहने वाले लोग कभी-कभी नुफारों को भीतरी छतों और दीवारों पर अनेक डग की रोकक चिह्न-रचना करते थे। उनके द्वारा बनाये गये चित्र भारत में सबसे अधिक लघ्य प्रदेश में आप्त हुए हैं। भद्रलोह, भरुसिंहगढ़, सीहोर, रायसेन, होशंगाबाद, सामर, पसा, रीवा, अमिकामुर तथा रामगढ़ चित्रों के अनेक स्थानों में इन आदिम जनों के निवास के अवशेष मिलते हैं। इनमें पश्चिम के अनेक प्रकार के जीजार तथा मिट्टी के बर्तन भी हैं। उन लोगों के बनाये हुए चित्रों में से बहुत में भाज भी उनके द्वारा सेकड़ों वर्ष पूर्व आवासित गुफाओं में सुरक्षित है। उनका प्रदेश के मित्रपुर तथा बीदा चित्रों के कई गवेंदीय स्थानों में भी ऐसे अनेक गुफान-चित्र मिलते हैं।

अधिकांश गुफान-चित्रों में लाल, सफेद, काला, भौंका या पीला रंग प्रयोग में लाया गया। कई जगह चित्रियों पर पहले भाज या सफेद रंग की पृष्ठभूमि रेकर उपर पर चित्र उत्थें रहते। प्राचीन गुफान-चित्रों में वही निवास करने वाले लोगों की जीवन-चर्चा तथा रुचि का यतानताहै। मूल्यवान यो दृश्य इन चित्रों में मिलते हैं, जैसे—चित्रित नादुओं से पश्च-पलिया का चिकार, जानवरों की लड़ाई, मानवों में पारम्परिक घड़, पश्चों पर सवारी, गीत, नृत्य, पूजन, मधु-संचय तथा घरेलू जीवन-सम्बन्धी अनेक रूप। लोगों

के जीवन-निवास का मुख्य साधन शिकार था। भला शिकार के विविध दृश्य मिलते हैं।

भास्तु-सम्पत्ति के विकास के साथ निवास में भी परिवर्तन आया। आचेट के स्थान पर कुपि तथा पण्डि-गालन जीविका के मुख्य साधन बने। जिलाग्रामों को छोड़कर मानव समतल भूमि पर आ चला। अपने रहने के लिए उसने परधार, मिट्टी और लकड़ी के मालबम से घर बनाये। संघटित जीवन की परमार्थ प्रारम्भ हुई, जिसने गाँवों, गुरुओं और नगरों को जन्म दिया। महानिर्माण विकसित सम्पत्ति का एक प्रमुख अंग बन गया। प्राम तथा नगर-निवेश के विविध ब्रग-उगांग अस्तित्व में आने लगे और भवन-निर्माण में भू-चयन, मापन, संस्कार आदि तत्त्व विकसित हुए।

जीरे-जीरे आध्यय या निवास के अतिरिक्त पूजा-अचाने के लिए भी भवनों की जाग्रत्तमता पड़ी। हड्ड्या-संस्कृति में, जिसे आयो-अन्तामो या देवों-लक्ष्मी की संस्कृति कहना युक्तिसंगत होगा, धार्मिकता के आरम्भिक तत्त्व मिलने लगते हैं।

ज्ञायेद प्रथम यन्त्र है जिसमें अचान-वास्तु (वास्ताला, बेदी आदि) तथा लौकिक वास्तु (गृह, तुर आदि का निर्माण) वर्णित है। कुछ पास्तात्प विद्वानों का यह विचार युक्तिसंगत नहीं है कि वैदिक साहित्य में स्वापत्य-विषयक विवरणीय जानकारी नहीं मिलती। वास्तव में ज्ञायेद तथा परवर्ती वैदिक साहित्य में प्रभूत सामग्री उपलब्ध है जिससे उक्त दोनों प्रकार के स्वापत्य पर रोचक प्रकाश पड़ता है। सायारण भरों तथा वहे भवनों के अतिरिक्त इस साहित्य में विभूमिक प्रासाद, साहूम सतम्भ एवं गहृत द्वारों वाले सभाकाळ आदि का उल्लेख मिलता है। नगर-निवेश का विवरण भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध है।

सम्पूर्ण वैदिक वास्तव्य को देखने से जात होता है कि भारतीय कला वही एक और धार्मिक संस्कारों से अनुप्राप्ति है वही दूसरी ओर सौन्दर्य तथा भास्तुन्द के उत्तरों से पूर्ण है। कलाकारों ने भारतीय शिल्प के विभिन्न अंगों को उत्पन्ना ढाय वास्तव से मान्यता किया।

धार्मिक वास्तु

वैदिक स्वापत्य के विविध तत्त्वों को हम परवर्ती भारतीय वास्तु में उपवृहित पाते हैं। इनमें विषय-वस्तु के अतिरिक्त अनेक प्रतीक एवं जलकरण की विधाएँ सम्मिलित हैं। वैदिक साहित्य में भवित या उपासना का जो मूल वीज निहित था उसका यत्नवन परवर्ती भारतीय साहित्य और कला में मिलता है। आगमों-गुरुणों की उपासना-पद्धति ने विष्णु, सूर्य, लिंग आदि देवों की अचान-पूजा को बत दिया। उससे मूलियों तथा भान्दरों का बड़े रूप में निर्माण होने लगा। मन्दिर धार्मिक वास्तु के मुख्य प्रतीक बन गये।

भारतीय मन्दिर-वास्तु का इतिहास अत्यन्त रोमांच है। इस देश में मन्दिरों के निर्माण-सम्बन्धीय विविध उल्लेख प्राचीन साहित्य में उपलब्ध है। पुरातत्त्वीय वृत्तियों में मन्दिरों के स्वरूप प्राचीन मूर्तियों, शिल्पों, मुद्राओं आदि में देखने को मिलते हैं। इन स्वरूपों को देखने से जात होता है कि प्राचीन में मन्दिर या देवाष्टान सीधे साथे रूप में बनाये जाते थे। पहुँच भूमि से कुछ ऊँचे स्थान पर प्रतिमा स्थापित की जाती थी। उसके बारे और वेदिका या बाहे का निर्माण होता था। बाद में वेदिका को ऊपर से भी आकाशदित कर देते थे। प्राचीन आहत सिफको तथा बीड़ुम्बरों, पक्षालों आदि की मुद्राओं में मन्दिर का गही साथ कप देखने को मिलता है। मधुरा, विद्युता, मध्यमिका आदि अनेक प्राचीन नगरों में संकरण, वासुदेव आदि के देवमन्दिरों का यही रूप था। जैन तीर्थकरों, पक्षों तथा नागों के लिए भी प्राचीनक मन्दिरों का भी निर्माण हुआ उनका स्वरूप उक्त मन्दिर जैसा था।

प्रारम्भिक मन्दिरों के आकार-प्रकार हेतु मानव-जारीर, वृक्ष तथा पर्वत-शिखर प्रेरणालोक रहे। आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दृष्टि से मन्दिरों के मूल रूप में इन खोलों का निरूपण प्राचीन भारतीय परम्परा में मिलता है। जारीरखारी समुद्रात्मक देवता के लिए मानव रूप से प्रेरणा ग्रहण करता स्वाभाविक था। परिकल्पना के प्रतिनिधि-रूप में कठिपय वृक्षों तथा पर्वत-शिखरों को भी मन्दिर-निर्माण के प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया गया।

कलानितर में कलात्मक रूप में अभियुक्ति के साथ-साथ मन्दिर-वास्तु का स्वरूप भी सबदित होता था। मूर्ति-स्थापना के स्थल पर गर्भगृह को परिवेशित करने के बतारिका उसके बाहर चारों ओर प्रदधिणा-नथ की उद्भावना हुई। गर्भगृह के बाहर आकाशदित प्रबंध-द्वारा या सूच-मण्डप का निर्माण हुआ। सुपाकाल तक मन्दिर-वास्तु के व्यापक जास्त का निर्माण हो गया। उसके आधार पर मन्दिर के विभिन्न लग-उपाय निर्माणित हुए। धीरे-धीरे गर्भगृह के ऊपर शिखर तथा बाहर मण्डप, अद्यमण्डप, महामण्डप आदि पर विधान हुआ। मन्दिर-वास्तु की जास्त के आधार पर अत्यन्त विकसित रूप प्रदान किया गया। इसी छोटी जाती से लेकर मुगलकाल तक भारत के विभिन्न भागों में विविध रूपों से सम्बन्धित मन्दिरों की रचना हुई। समप तथा स्थान के आधार पर इन मन्दिरों की जैलियों में भेद-भेद होने स्वाभाविक थे।

मन्दिर-निर्माण के उद्भव में धार्मिक कारण प्रधान था। इसके मूल में प्रतिमा-पूजन था। इष्ट देवों, मृत राजाओं तथा ऐसे कुटुम्बियों की मूर्तियों सुरक्षित रखने के लिए मन्दिरों की रचना की गयी। मन्दिरों में लोग अपने इष्ट या प्रेमी के प्रति एकान्त

में अद्वा-नमूमन भवा सकते थे। अकेले या सामृहिक स्पृ में प्राप्तेना करने के लिए यहाँ स्थान को अपेक्षा जावेदित या परिवृत्त स्थान अधिक उपयुक्त था।

शूद्रवेद में प्रतिमा-सम्बन्धी कुछ उल्लेख मिलते हैं, परन्तु उनके आधार पर प्रारम्भिक वैदिक जाति में प्रतिमा-पूजन का प्रथालन नहीं मिल होता। पूर्ववैदिक काल में देव-मन्दिरों के स्थान उल्लेख नहीं मिलते। उत्तरवैदिक तथा उपनिषद्-काल में प्रतिमाओं के उल्लेख मिलते हैं। इ० पूर्व चारों जाति से मन्दिरों का निर्माण मिलने लगता है।

बौद्धों के स्तूप शीतम बूद्ध के बाद बनने लगे। प्रतीत होता है कि बैन-स्तूपों का निर्माण बौद्ध स्तूपों से पहले प्रारम्भ हुआ। चौथे सत्तार्द अशोक (२७२-२३२ ई० प०) ने बड़ी संख्या में देश भर में बौद्ध स्तूप बनवाये। उसके बाद स्तूप-निर्माण की प्रगति बहुत बढ़ी। भरहुत, सीधी, अमरावती, भारतार्थ, तक्षशिला आदि के प्राचीन स्तूप उल्लेखनीय हैं। गुण-काल तथा मध्य-युग में भारत के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में बैन और बौद्ध स्तूपों तथा विहारों का निर्माण हुआ।

मन्दिर-निर्माण करते समय पहली बात यह आती थी कि किस प्रकार की भूमि पर देवालय की रचना की जाए। गृहमूलों में इसे 'भूपरीका' कहा गया है। इन सभी तथा बाद के पौराणिक एवं वास्तुग्रन्थों में कहा गया है कि मन्दिर के लिए उसम स्थान प्राप्त: समृद्ध-नट, सरिता-नट, मुल्दर उपवन तथा पवंतीम प्रयोग है। ये स्थान भननेहर तथा पवित्र होने के साथ-साथ बास्तु-वातावरण लाने होते थे। अतः वे मन्दिर-रचना के लिए विशेष उपयुक्त होते थे। नगरों, दामों तथा अन्य साधारण स्थानों में वहि देवालय बनाना आवश्यक होता था तो अपेक्षित भूमि को नजादि डारा बूद करके तथ उस पर मन्दिर-रचना की जाती थी।

मन्दिर-निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री तथा निर्माता कारीगरों के भी वर्णन 'मानसार', 'जिल्हरत्न', 'काश्यप गिर्ल' आदि वास्तु-वास्त्रीय फूलों में मिलते हैं। मन्दिर देवताओं के निवास-स्थान होते थे, अतः सर्व-भाद्यारण नोमों के निवास-मृहों की अण्डा देवालयों के सौंदर्य तथा उनकी दृढ़ता भर अधिक ध्यान देना आवश्यक समझा जाता था, जिससे वे विस्तारी रहें। मन्दिर में दृढ़ पत्तरों या हृदों का प्रयोग बाल्लनीय समझा जाता था। कभी-कभी छोटे मन्दिरों को तावे, चाढ़ी या गोमे से निर्मित किया जाता था। मध्यकाल में उत्तर भारत के प्रसिद्ध मन्दिर, गुजरात में सोमनाथ आदि के मन्दिर तथा दक्षिण के अनेक मन्दिर ऐसे ही थे। प्राचीन भारत में मन्दिरों को दो मूर्त्य जीतियाँ—नामर तथा इत्तिह-मिलती हैं। पहली का सम्बन्ध उत्तर तथा दूसरी का दक्षिण भारत से था। इन दोनों

मौलियों के कठिपय तत्त्वों के मिश्रण से एक तीसरी तीसरी बेसर (इयश) का उपय हुआ। दोनों मूल तीनियों पर आधित होने के कारण उसका यह नाम साधक हुआ।

नागर तीसरी के मूल भावाये शंभु, मग, अवि, बाहिष्ठ, परावार, बृहद्रथ, विश्वकर्मा तथा वास्तुवैद कहे गये हैं। वैक्षणी परम्परा तीसरी इविड तीसरी का भावाये ब्रह्म, लक्ष्मा, मय, मातृत्व, भूम्, कामप आदि को कहा गया है।^१ इनमें से अनेक भावाये विभिन्न शास्त्रों के लेखक लेहे गये हैं।

वास्तुवास्तव के उद्भावकों में विश्वकर्मा तथा मय के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। विश्वकर्मा को देवी का स्थापित या देव-वास्तु-प्रशर्तक माना गया। मय असुर-वास्तु-प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि मुमेच तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों में बसे दूर सूरों तथा असुरों में अन्य वातों के साथ स्वापत्य के विषय में भी कठिपय भिन्न धारणाएँ स्थापित हो गयी थीं। ये विचार उनके द्वारा उन लोकों में भी ले जाये गये जहाँ से कालाल्लार में पहुँचे। भास्त्र में स्वापत्य-विषयक दोनों धारणाएँ साथ-साथ विकसित होती रही। धीरे-धीरे उनके अनेक तत्त्व एक-दूसरे में घुल-मिल गये। परन्तु कठिपय मौलिक भेद बहुत समय बाद तक विद्यमान रहे। स्वामीय विशेषताओं का भी उनमें थोड़ा-बहुत योग होता रहा।

वास्तुवास्तव-विषयक शब्दों की सूची विस्तृत है। लास्ट्रीय शब्दों के अतिरिक्त वैदिक माहित्य, रामायण, महाभारत, वृषभायामी, अर्चवास्तव, जैन तथा लौह धन्व, आगम, तेव, पूराण एवं बृहत्सहित आदि शब्दों में वास्तु-विषयक प्रमूल सामग्री उपलब्ध है।

उसरी परम्परा के मूल वास्तुवास्तीय शब्द 'मूखवारमहन', 'विश्वकर्मप्रकाश', 'समरपणसूचवार', 'वास्तुवरनावली' आदि हैं। वैक्षणी वास्तु-परम्परा के शब्दों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

'विश्वकर्मीय जिल्ल', 'मध्यभूत', 'मानसार', 'काश्यप जिल्ल', 'अगस्त्य सकलाधिकार', 'जिल्ल संघर्ष', 'जिल्लरत्न' तथा 'विजयवर्ष'।

इन शब्दों द्वारा के अतिरिक्त वास्तुवास्तव पर अन्य कितने ही शब्दों का प्रयोग हुआ। उनमें से अनेक ज्ञात उपचार हैं। कितने ही शब्दों के नामोल्लेख अन्यत भिजते हैं। वास्तुविषयक इस विज्ञान माहित्य को तत्त्व नहीं होने से बच गये रमारकों एवं प्राचीन मूर्तिकला आदि में मुरझित वास्तु-आहूतियों को देखने से पता चलता है कि स्वापत्य-तत्त्वनीक का कितना अधिक विकास प्रार्थित भारत में हुआ था।

१. इष्टाद्य हिंदूवेदनाम शुल्क, भारतीय वास्तुवास्तव, पृ० १६-२०।

स्थपति की योग्यता

स्थपति या भवन-निर्माता का व्यवसाय समाज में सम्मानित माना जाता था। जीवन की व्यवस्थित एवं कलात्मक बनाने में उसका बहु योग था। उसमें निवास-गृह सुख-समृद्धि का बाहक माना जाता था। स्थपति अपनी कुलालता से भवन को ऐसा रूप देता था कि उसमें निवास करने वालों को आनन्द और आनंद मिले। वास्तु के अनेक ग्रासतों में स्थपति के गुणों का कथन किया गया है। मालबा के प्रसिद्ध शासक भोज परमार ने ग्यारहवीं शती के आरम्भ में लिखित आगे द्वान्व 'समरांगनसूत्रधार' में स्थपति की योग्यता बताते हुए लिखा है कि स्थपति को शास्त्र का ज्ञाता तथा व्यावहारिक कर्म में कृशम होना चाहिए। उसे प्रजावान् तथा गीलवान् होना जावलयक है। लक्षणों के महित वास्तु विषय का सम्पूर्ण ज्ञान उसके लिए अपेक्षित है।^१ इसके बाद लिखा है कि स्थपति की सामृद्धिक, मणित, ज्योतिष, छद्म आदि का भी ज्ञान होना चाहिए।

'समरांगनसूत्रधार' में भवन-निर्माण के क्रिया-पद्धति पर विशेष वक्त दिया गया है और लिखा है कि जो स्थपति वास्त्र का ज्ञान ली रखता है वह उसे क्रिया-रूप में परिणत करना चाही जानता वह क्रिया के समय उसी प्रकार असफल हो जाता है जिस प्रकार भीक व्यक्ति सामने लड़ाई जा जाने पर एकदम परहड़ा जाता है।^२

इसी प्रकार वास्तु-वास्त्र से व्यापरिचित, केवल क्रिया-पद्धति को जानने वाले गिल्ली को भी अपूर्ण ज्ञाता कहा गया है। इस द्वन्द्व में लिखियों में स्थपति की महसूस प्रतिशादित की गयी है। 'मानसार', 'भयमत' आदि ग्रन्थों से भी स्थपति की विडचा तथा उसकी द्वन्द्व सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।^३

लौकिक वास्तु

धार्मिक पक्ष के अलिंगिक भारतीय स्थानात्मक का इसका महत्वपूर्ण पक्ष लौकिक है। प्राचीन साहित्य तथा पुरातत्त्वीय अवलोकों में इसकी पूरिट होती है। यामों और पुरों

1. "शास्त्रं कर्मं तथा प्रजातीयं च क्रियमान्वितम् ।

तद्यमनशास्त्रमुक्तापंशास्त्रनिष्ठो नरो भवेत् ॥"

—समरां०, ४४, २ ।

2. "पस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्थपतिर्निष्ठितः ।

त तुहपति क्रियाकाले दृष्ट्वा भोवरिवाह्यम् ॥"

—वहो, ४४, २ ।

3. इ० विनोद विहारी वक्त, दातन प्राचीन इन ऐश्वर्य इतिहास, पृ० १३-१४ ।

का सचिवेश तथा विभिन्न प्रकार के अवनों, सहकारी, नुसों आदि के निर्माण लौकिक स्थापत्य के अन्तर्गत है।

'राजापत्र', 'भूताभास्त', बौद्ध और जैन माहित्य में तथा 'मानसार', 'मममत', 'ममरामगम्भीरधार' आदि शब्दों से नगर या नगर-निर्माण के विस्तृत विवरण मिलते हैं। नगर लौकिकता के विन मूल्य अनों की माहित्य में पच्ची मिलती है ये हैं—(१) भू-प्रीक्षा, (२) भूमि-संप्रह (जमीन का बुनाव), (३) दिक्षपरिच्छेद (विज्ञा-मिथिरिण), (४) पदविन्यास (सारी भूमि का वर्गीकरण वर्षों में विभाजन), (५) चलिकर्म-विधान (पूजन), (६) धार्म या नगर-विन्यास (गांव या नगर-वस्ती की सम्बन्ध-योजना), (७) भूमि-विधान (विभिन्न तल वाली डमारते), (८) गोप्य-विधान (डार-निर्माण), (९) गणपत-विधान (मन्दिर-निर्माण), तथा (१०) राजवेश-विधान (राजकीय धाराद या महत्व का निर्माण)।^१

नगर-सचिवेश—गुनिमोहित नगर बसाने का ज्ञान भारत में हठपार-मन्दूति-नुग जे मिलने लगता है। उत्तरवैदिक काल से नगरों की संख्या में कृदि होती रही। राज-नीतिक, व्यापारिक एवं धार्मिक कारणों से विभिन्न नगरों के बीच आवागमन की मुश्विधाएँ बढ़ी और बड़ी सहकारों का निर्माण हुआ। समृद्ध प्राचीन नगरों में पुष्टलाकाती, पुरुषपुर, तथागिरा, गाकल, इंद्रप्रस्त, हुलितनापुर, अहिल्लवा, कापित्य, काल्यकृष्ण, मधुरा, अदोल्ला, वाराणसी, खावस्ती, वैशाली, पाटलिपुत्र, राजगढ़, चंपा, तार्मनिपि, प्रयाग, कोशाम्बी, विदिशा, उत्तरपिनी, दग्गपुर, भृगुकल्प, वल्लभी, प्रतिष्ठान, काची, कावेरी-पट्टनम्, उत्तमपुर आदि उल्लेखनीय हैं।

इनमें से अनेक नगरों के विस्तार का वर्णन मिलता है। यूनानों ने इनके मेस्सेनीज के अनुसार पाटलिपुत्र नगर लगभग सभ्यों नो मील लम्बा तथा योंगे दो मील चौड़ा था। यींतों पाली हुएन-नाम ने काल्यकृष्ण (कलोल) की लम्बाई तीन मील तथा चौड़ाई एक मील लिखी है। उसने भृगुकल्प नगर की परिचि धार भी लगभग योंगे दो मील बतायी है।

मुरझा की दृष्टि से नगर के बारों और बाईं (परिवार) छोटी जाती थी, जिसमें प्रायः नदी का जल भरा रहता था। मेस्सेनीज ने पाटलिपुत्र की परिवार को ५०० फुट चौड़ी बताया है। परिवार को आकर्षक बनाने के लिए उसके जल से रंग-विरंगे फूल लगाये जाते थे। कुछ नगरों में एक से अधिक परिवार होती थी। नगर-रक्षा के लिए

दूसरा विषय नगर के चारों ओर दीवार (प्राकार) का था। प्राकार पत्थर, ईंट या कड़ी मिट्टी की बनायी जाती थी। कभी-कभी मिट्टी की जोड़ी दीवार के ऊपर पत्थर या पकी ईंटों की चुमाई की जाती थी। प्राकारों पर बोरो-बोरी दूर-पर बूँच (अड्डालक) बनाये जाते थे। इन अड्डालकों पर सैनिक नियुक्त रहते थे। नगर में प्रवेश के लिए कई मुख्य तथा गौण द्वार बनाये जाते थे। इन द्वारों पर भी रक्खक तीनात रखते थे। वे नगर में प्रवेश करने वालों तथा बाहर जाने वालों पर नियरानी रखते थे। प्रमुख द्वारों के नाम प्रायः देवताओं के नाम पर या उन नगरों के नाम पर रखे जाते थे जिनकी ओर उन द्वारों से होकर मार्ग जाते थे।

नगर के भीतर मार्गों की उचित व्यवस्था होती थी। मूख्य मार्ग एक-दूसरे को सम्बोध पर काटते थे। उनके द्वारा विभाजित क्षेत्रों में विभेद वर्गों के लोग बसाये जाते थे। राजप्रासाद नगर के प्रमुख स्थान पर बनाया जाता था। उदनुसार भवनों आदि का निर्माण किया जाता था। पक्की सड़कों (कुट्टिममार्ग) में पत्थर, ईंट और कंकन का प्रयोग किया जाता था। नालियों की ठीक व्यवस्था नगर-बोरियां पर महत्वपूर्ण थीं। दृश्या, मोहनबोरियों, लोयल, कोणार्की, विषुरी आदि प्राचीन नगरों की चुनाइयों से इसकी पुष्टि हुई है।

राजमहल तथा बड़े भवनों में ही नहीं, सर्वसाधारण के भवानों में भी वायु तथा प्रकाश के आने का व्यापक रखा जाता था। इस हेतु द्वारों, गवालों आदि की उचित व्यवस्था की जाती थी। कड़ा-कलंट इकट्ठा करने वाला जल के निर्गमन की मुविधा प्रायः प्रत्येक घर में होती थी। गृहस्थी के विभिन्न कार्य मुममता से हो सके, इसके लिए परों में कठों की उदनुकूल व्यवस्था की जाती थी। भवनों की दीवारों पर सफेद सुधालेप लगाने के उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। इससे वे उचित विशायी देते थे। दीवालों की चुदाई में मिट्टी के गारे तथा विशेष प्रकार से बनाये गये चूले का प्रयोग होता था।

नगरों में सार्वजनिक उपयोग के लिए मन्दिर, स्तूप, जलाशय, उचान, विशालय, सुभास्थन, बालार, बारोम्याला आदि प्राचीन बनाये जाते थे। भारत का प्राचीन नागरिक जीवन ममृद और उभत हो सका, इसका एक मूल्य कारण नगर में आवश्यक मुविधाओं की व्यवस्था थी।^१

१. इस सम्बन्ध में विस्तार के लिए देखिए उदयनारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-बोरियां, (विशेषतः) अध्याय २, ३ तथा १०।

दुर्गे—उत्तर-साधित्येन मे दुर्ग का वर्णन वास्तु-वास्तव तथा अन्य भ्रमों मे मिलता है। चोड़ ने 'युक्तिकल्पतर' नामक ग्रन्थ मे दुर्ग के दो भूक्त भेद १—अकृतिम तथा २—कृतिम कहे हैं। जकृतिम दुर्ग वह भा जो जपनी प्राकृतिक स्थिति के कारण वालु-सेन्य को पहुँच के बाहर होता था। इस प्रकार के प्राकृतिक रूढ़ा-साधन मरुस्वल, शहरी नदी, घों वस्त, पर्वत आदि हैं। जहाँ इन साधनों का अभाव होता वहाँ कृतिम दुर्ग के निर्माण की अवस्था होती थी। उन्हें परिचा तथा प्राकार द्वारा सुरक्षित बनाया जाता था। 'मानसार' ग्रन्थ मे दुर्ग-तिभाजन विस्तार मे वर्णित है। दुर्गों को बाठ मूल्य भासा मे बाटा गया है—
 (१) लिखिर, (२) बाहिनीमुख, (३) स्वामीय, (४) द्रेणक, (५) संकिद (या तंडक), (६) कोमक, (७) निर्मल तथा (८) स्वधावार। यरन्तु इसी ग्रन्थ मे दुर्ग का दूसरा विभाजन मिलता है, जो दुर्गों को स्थिति के अनुसार बनाया गया है। पहला परिदुर्ग, दूसरा बनदुर्ग, तीसरा जलदुर्ग, चौथा येरिय (मरुस्वली) दुर्ग, पाँचवाँ देवदुर्ग, दूसरा बनदुर्ग, तीसरा जलदुर्ग, चौथा येरिय (मरुस्वली) दुर्ग, पाँचवाँ देवदुर्ग, छठा देवदुर्ग—इन प्राकृतिक सुरक्षा-साधनों मे युक्त होते हैं। पाँचवाँ देवदुर्ग^१ सम्मवत् इसलिए कहलाता था कि प्राकृतिक रूप से सुरक्षित होने के अतिरिक्त वह देवताओं का निवास-स्थल माना जाता था। उसकी दीवारों पर इन, वासुदेव, कुवेन, शिव आदि की मूर्तियाँ बनी रहती थीं। गात्रें 'मिथ दुर्ग' के निर्माण मे उच्च सुरक्षा-साधनों मे से अनेक का उपयोग किया जाता था। औटिस्ट के अधेशास्त्र, रामायण, युगलादि साहित्य मे भी दुर्गों के विवरण प्राप्त होते हैं। योगेन्द्रान से लेकर पूर्वे महायान तक दुर्ग-रजना की ओर विशेष ध्यान दिया जाता रहा। उत्तर-ग्रन्थकाल मे भी दुर्गों का महत्व बहुत रहा।^२

प्राचीन कलाकृतियों मे अनेक नगरों के चित्रण उपलब्ध है, जिनसे प्राचीन नागर-वास्तु पर प्रकाश पड़ता है। भरहुत, सोंखो, मधुरा, अमरावती, भाजा, काले, वेडमा, कोहाने, अजन्ता आदि की अनेक कलाकृतियों पर नगरों के विविध भागों के अक्षन मिलते हैं। उदाहरणार्थ, सच्ची के नोरणों पर चित्रित वस्तु, कुशीनगर, आवली, जेतुतर आदि नगरों के चित्र उपलब्ध हैं। भरहुत, मधुरा, अमरावती आदि की बाजा मे प्राकार, परिचा, प्रासाद, वासायन आदि के चित्रित भाग प्रवर्णित हैं। अनेक कृतियों पर प्राचीन पर्णशालाओं के रोचक इस्य अक्षित है। अनेक भारतीय मूराजों तथा जनपदीय सिन्हों पर अनिदरों के जो चित्रण मिलते हैं वे इन पर्णशालाओं से बहुत मिलते-जुलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन मन्दिर का स्वरूप इत पर्णशालाओं से उद्घावित हुआ।

१. 'शिल्परत्न' मे इसे 'दिव्य दुर्ग' कहा गया है।

२. द१० दस, वही, पृ० ३२-१०८; डिजेन्ड्रनाथ मुकुल, वही, पृष्ठ १२१-१३१।

हड्डपा-सम्भता युग

१९२१-२२ में सिन्धु घाटी के दो महत्वपूर्ण स्थानों की ओर से भारतीय सभ्यता की प्राचीनता पर यथा प्रकाश पड़ा। पहला स्थान विनिमी पंजाब के मांटपुरी जिले में स्थित हड्डपा था, जो गांवी नदी की पुरानी धारा के तट पर बसा था। इससे नगर सिन्धु प्रान्त के लखकामा जिले का मोहनजोदहो था। इन दोनों स्थानों के उत्कृष्टताओं से पता चला कि वहाँ ईसा से लगभग तीन सहस्र वर्षों पूर्व स्वर्णस्थित नगरों का निर्माण ही चुका था और एक विकसित सभ्यता वहाँ अस्तित्व में था गयी थी। यह भी जात हुआ कि विनिमी एशिया के साथ मारत के सम्बन्ध हैं। पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में स्थापित ही चुके थे।

हड्डपा और मोहनजोदहो के अतिरिक्त धीरे-धीरे बन्दूदहो, शाकुरदहो आदि अनेक स्थानों में इस प्राचीन सभ्यता के अवशेष मिले। हड्डपा नगर इस सभ्यता का केन्द्र था और इस सभ्यता के अधिकांश स्थान सिन्धु नदी की उपत्यका में मिले थे; लेकिन इस सभ्यता को 'सिन्धु-घाटी-(या सेधव) सभ्यता' कहा गया। कठिपण लिङ्गानों ने इसे 'हड्डपा-संस्कृति' कहना अधिक उपयुक्त समझा। कुछ समय बाद इस सभ्यता के महत्वपूर्ण अवशेष राजस्थान में प्राचीन सरस्वती-दुष्टिती नदियों के काठे में उपलब्ध हुए। फिर मूर्जरात-काठियावाह में रंगपुर, लोधल आदि स्थानों का पता चला, जहाँ हड्डपा-सभ्यता कूटी-कूटी थी। पूर्व में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में आलमगीरपुर नामक स्थान तक इस सभ्यता का विस्तार जात हुआ। इस विस्तृत क्षेत्र में केवल ही सभ्यता अपनी स्थानीय कलिपण विशेषताओं के बावजूद समान तर्जों काली थी। नीतिक जीवन के एक-दौसे उपकरण इन विभिन्न लोकों में प्रयुक्त होते थे। जातिक व्यवस्था एक-जैसी थी। एक नियम का प्रयोग होता था तथा धार्मिक मान्यताओं से भी प्रायः गुरुस्थिता थी। सम्बन्ध राज-नीतिक प्रकासन भी इस विस्तृत क्षेत्र में एक ही प्रकार का था।

नवे अन्वेषणों के कलस्वरूप यह निश्चित ही यथा है कि उक्त सभ्यता के बाल सिन्धु घाटी-तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उसका विस्तार उत्तरी पंजाब से लेकर काठियावाह

तक तथा बलविस्तार से लेकर पूर्व में गंगा-नदी तक या। कुछ विद्वानों ने इसे सिन्धु-सरस्वती-नांडि की सम्भवा कहना प्रारम्भ किया है। परन्तु इस संज्ञा से भी पूरे भौगोलिक लेख का लोधि नहीं होता। इस सम्भवा का युक्ति केवल हड्डिया या और वही इसका कई गतान्वितों तक विकास हुआ। किसी उपयुक्त लेखीय ताम के अभाव में इस सम्भवा को हड्डिया-सम्भवा कहना अधिक समीचीय होगा।

हड्डिया-सम्भवा के स्थापत्य को कुछ विविच्छिन्नताएँ हैं। कुछ बातों में वह बाद के भारतीय स्थापत्य से भिन्न है। युक्ति विवेचितार्थ इस प्रकार है—

- (१) हड्डिया-स्थापत्य को लूढ़ धार्मिक या जात्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। हड्डिया-संस्कृति के स्थलों से ऐसे भवनों के बबतों नहीं प्राप्त हुए जिन्हें निविलाद रूप से पूजा-गूह या मन्दिर की संज्ञा दी जा सके।
- (२) इस युग के स्थापत्य-कला में उपर्योगितावादी दृष्टिकोण का प्राध्याय है। सामान्यतया इसमें अलंकरण का अभाव है। इसमें ऐसे प्रभाग नहीं मिलते जिनके आश्राम पर यह कहा जा सके कि लकड़ी पर नकाशी करके, विभिन्न रंगों का अपील करके अपवा स्थापी प्रकार के गारे से दीवारों पर पलस्तर करके उनमें विभिन्न आङ्गूष्ठियों को उत्थापित भवनों की सुन्दर बनाने का कोई प्रयत्न किया जाता या। ही सकता है कि कुछ भवनों को अलाहूत किया जाय ही। और अलाहूत के चिह्न अब नहीं हो गये हों। पर सामान्यतः भवनों में अलंकरणों का अभाव रहता था।
- (३) नगरों में सड़कों तथा भवनों की स्थिति तथा उनकी सामान्य बोजना भी लगभग एक-सी थी। उसमें तकनीकी कुशलता तथा वैज्ञानिकता के बावजूद विविधता का अभाव था।
- (४) इस युग के भवनों के निर्माण में सामान्यतया पक्की ईटों का ही प्रयोग किया गया। उनकी जूँड़ाई भिट्ठी के गारे से की जाती थी। दीवारों का निर्माण करते समय ईटों को लगाया एक बार उनकी जूँड़ाई को सामने रखते हुए तथा दूसरी बार उनकी जूँड़ाई की दृष्टि में रखकर लगाया जाता था। इस प्रकार जूँड़ाई करते हुए इस बात का ध्यान रखा जाता था कि प्रत्येक दो ईटों के बीच का स्थान गारे से भर जाय, और ऊपर से वह किसी अन्य ईट से ढंग रहे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि तीव्रतया युग के कारीगर ईटों की जूँड़ाई की कला में पूर्णतया दबाये। उसे व्यवस्थाओं के निर्माण में

सभा बाद के भवनों की दीवारों में सामान्यतया कुछ कल्पी हेटों का प्रयोग भी किया जाता था ।

- (५) हड्ड्या तथा मोहेनजोदहो में एक में अधिक मंजिल के भवनों के चिह्न कम प्राप्त हुए हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश भवनों में एक में अधिक मंजिलें थीं। इनमें से भूमितल पर बनी प्रथम मंजिल तो हेटों की होती थी, किन्तु उसके ऊपर एक या उससे अधिक मंजिलों के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। उन दिनों सिन्धु-उपर्युक्त में जंगली के होने के कारण निर्माण-कार्य के लिए उपयोगी लकड़ी गुप्राप्त थी।
- (६) दरवाजों के ऊपर की पटाई अधिकांशतः लकड़ी के तचों या छाँटों की लहायता से की जाती थी। उहाँ किसी छाँटे स्थान को पाठना होता वहाँ हेटों का टोडेशार नेहराब बना दिया जाता था।

हड्ड्या-सम्बता के प्रमुख केन्द्र तथा स्मारक

इस सम्भता के चिह्न प्रारम्भ में हड्ड्या तथा मोहेनजोदहो नामक स्थानों में ही प्राप्त हुए थे। अतः अनेक विद्वानों की धारणा थी कि यह कुछ समय बाद सिन्धु-धाटी में ही समाप्त हो गये। ऐसा समझा जाता था कि इस सम्भता का वैदिककालीन सम्भता में कोई सम्बन्ध नहीं था।

बाद में हड्ड्या-सम्भता के अवशेष चन्द्रघटों आदि स्थानों में भी प्राप्त हुए। मोहेन-जोदहो से विभिन्न की ओर समधम ६० मील की दूरी पर चन्द्रघटों स्थित हैं। हाल में जो सबैक्षण तथा उत्तरान किये गये हैं उनमें यह बात निश्चित काम में जात हुई है कि यह सम्भता सिन्धु-धाटी में ही लूप नहीं हो गयी, बरन् उसका विस्तार एक बड़े क्षेत्र पर हुआ। यह सम्भता कई लातालियों तक विद्यमान रही। वास्तुकला के अध्ययन की दृष्टि से इस सम्भता के निम्नलिखित स्थानों के स्मारकों का अध्ययन उपयोगी होगा :

- (१) हड्ड्या, (२) मोहेनजोदहो, (३) चन्द्रघटो तथा (४) लोहल।

(१) हड्ड्या

आधुनिक हड्ड्या ग्राम परिवर्मी पंचायत के भाष्टगुमरी जिले में है। इसी के नीचे तथा आगपाम आचीन हड्ड्या नगर का पता उत्तरानन्दों से चला है। कुछ विद्वानों ने १. इच्छय वसी जातन, इच्छियन आकोटिक्ष्वर, पृष्ठ २; मेंके, कांदर एकसक्केवेशन्त ऐट मोहेनजोदहो, जिल्हा १, पृष्ठ १५२।

हड्डिया की प्रभिभाता 'हरि-पूरीया' में सिद्ध करते की चेष्टा थी है।^१ 'हरि-पूरीया' का उल्लेख एक बार ऋग्वेद (६, २७, ४) में हुआ है। इन चिदानंदों के अनुसार हड्डिया की समाता वैदिक सम्पत्ता ही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि हड्डिया-सम्पत्ता वैदिक धार्यों तथा अनायों की सम्बिलिष्ट समस्ति थी। आधुनिक जागरणों से इस बात की पुष्टि होती है।

हड्डिया के उत्तरनांदों से यह जात हुआ है कि यह नगर लयभग ३ मील के द्वेरे में बसा हुआ था। जो भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं उनमें श्वासपत्य-कला की दृष्टि से दुर्घे (कोटला) और रक्षा-प्राचीर के जटिलिका निवास-गृहों, चबूतरों तथा अग्नाशयों का विस्तृत महत्व है।

कोटला—नगर की रक्षा-हेतु हड्डिया-वासियों ने नगर के पश्चिम में एक दुर्घे या कोटला निर्मित किया था। उसका आकार समानगतर चतुर्भुज-जैसा है। उत्तर से दक्षिण की ओर उसकी लम्बाई ४६० यज्ञ तथा पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़ाई २१५ यज्ञ रही होगी। आवकल इसकी चौड़ाई लगभग ४० फुट है। इसका ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है। जिस दौले पर कोटला के व्यवस्था प्राप्त हुए हैं उसे चिदानंदों में 'ए-बी-टीस' कहा गया है।^२

कोटला के उत्तर-भूंडे में राजी नदी का क्रांति है। प्राचीन युग में यह नदी इसी स्थान से होकर बहती थी। आज नदी की धारा कोई ६ मील उत्तर की ओर हट गयी है। कोटला तथा कष्ठार के मध्य स्थित एक टीला (लंका एक) है। वहाँ किसे भये उत्तरनांदों से हड्डिया की उत्कृष्ट नगर-निर्माण योजना की जानकारी मिली है।

कोटला के ऊपर अन्दर की ओर लगभग २० फुट ऊंचा पिटौरी तथा कच्ची इंटों का बना एक चबूतरा है, जिस पर कुछ मकानों का निर्माण पक्की इंटों से किया गया था।

रक्षा-प्राचीर—कोटला की रक्षा के लिए एक प्राचीर (प्राकार) का निर्माण किया गया था। यह प्राचीर नीचे ४५ फुट ऊंची है। ऊपर की ओर उसकी चौड़ाई कम होती गयी है। उसके निर्माण से बाहर की ओर लगभग ४ फुट तक पक्की इंटों का और लेप भान्तरिक भाग में कच्ची इंटों का प्रयोग किया गया। अन्दर की ओर यह दीवार पहले कुछ ऊंचाई तक एकदम सीधी थी, किन्तु बाद में उसके घिरने का भय होने पर ऊपर का

१. दो० जरनल आफ दि बिहार एवं उडीसा रिसर्च सोसाइटी (पटना), मार्च, १९२८, पृष्ठ १२८-१३, तथा जरनल आफ दि बांग्ले बांग आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, जिल्ह २६ (१९४०), पृष्ठ ५६।

२. गुरुगढ़—दि इण्डस चिकित्सेशन, पृष्ठ १८।

भाग कुछ तिरछा बनाया गया। इसके निर्माण का समय लगभग यही है जो कोटला के ऊपर के बहुतरे का है।

रक्षा-प्राचीर के ऊपर योद्धा-घोड़ी दूरी पर बृंदियों का निर्माण किया गया था। कुछ बृंदियों की दीवारों के ऊपर उमरा मुक्का बनाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्राचीर का मुख्य प्रबल-द्वार उत्तर की ओर रहा होगा। भाजमण्डि से रक्षा की दृष्टि से पश्चिम की ओर रक्षा-प्राचीर को न्यून-कोणात्मक बनाया गया। वहाँ एक बूँद है, जहाँ रक्षा हेतु विशेष प्रबल बनाया गया होगा। रक्षा-प्राचीर के दक्षिणी सिरे पर कोटला तक चढ़ने के लिए सीढ़ियों बनायी गयी थी। इससे कहा जा सकता है कि प्राचीर इड्या-निवासी सीढ़ियों की निर्माण-विधि एवं उनकी उपयोगिता से परिचित थे।

निर्माण की दृष्टि से रक्षा-प्राचीर के तीन भिन्न चरणों का उल्लेख किया जा सकता है—प्राचीर के निचले भाग का निर्माण दूरी-न्यूटी ईंटों के टुकड़ों से किया गया। उनकी दूराई मुश्चिपुङ्ग इंग में नहीं की गयी। इसरे चरण में ऊपर के भाग में पुरी ईंटे लगायी गयी। उनकी दूराई भी पहिले की अपेक्षा अधिक अच्छी है। आजकल प्राचीर का यही सुनिश्चित भाग ऊपर दिखायी देता है। इसे पश्चिम की ओर, जहाँ प्राचीर में न्यून-कोणात्मक पुमाद है, स्पष्टतया देखा जा सकता है। तीसरे पा अन्तिम चरण को उत्तर-पश्चिम की ओर देखा जा सकता है, जहाँ बाद में रक्षा-प्राचीर को और बढ़ा किया गया। अन्तिम निर्माण सबसे अधिक परिष्कृत है।

गृह—इड्या में योहेनघोदडी की भाँति विशाल भवनों के अवशेष नहीं प्राप्त हुए। आधुनिक हड्डियाँ-निवासियों के पूर्वज बहुत दिनों तक अपने मकानों के निर्माण हेतु इंटे प्राचीर नगर के स्मारकों से उत्ताह-उत्ताह कर ले जाते रहे। जिस समय लाहौर-मुस्लिम रेतवे जाइन बनो उस समय भी इस स्थान को पर्याप्त जलि पहुँची। इन्हीं कारणों से जाल अनेक प्राचीर भवनों के अस्तित्व के प्रमाण ही नहीं हो गये हैं।

कोटला के ऊपर के बहुतरों पर गृहों के जो अवशेष मिले हैं उनसे प्राचीर स्थापत्य पर कोई उल्लेखनीय प्रकाश नहीं पड़ता, क्योंकि अधिक भग्न होने के कारण आज वे ईंटों के ढेर-सदृश हैं। प्रतीत होता है कि इस स्थान की बस्ती बहुत बड़ी थी।

कोटला के उत्तर में स्थित 'एक' संचाक टौने की दूराई में जो भग्नावशेष मिले हैं वे मुहों, बहुतरों तथा बगायारों के हैं। यह टीना लगभग २० फीट लंबा है। इसी पर दक्षिण की ओर कोटला के समीक्षा दो भिन्न पश्चिमों में कुछ छोटे-छोटे गृह थे। उनमें से उत्तरों पश्चिम में सात तथा दक्षिणी पश्चिम में लाठ गृहों के अवशेष स्पष्टतया देखे जा सकते हैं। इन गृहों के आकार से ऐसा प्रतीत होता है कि वे श्रमिकों के लिए बनाये गये थे।

इन गृहों में से प्रत्येक की लम्बाई-चौड़ाई कुल मिलाकर 5.6×2.7 फुट है। प्रत्येक पर में दो कमरे होते थे, अबका एक कमरा तथा एक बागन हीता था। उनकी काँची पर कुछ दूर तक इंटे लगी भिसों हैं। शेष काँचों की इंट सम्मवतः बाव के लोगों द्वारा उचाई सी मर्यादा। दीवारों की चुनाई मिट्टी के नारे से की गयी है, किन्तु काँचों की इंटों को जोड़ने में विभिन्न का प्रयोग किया गया। इन मकानों के मुख्यवस्थित दर्श को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक विशेष गोलांके अनुसार बनाये गये थे।

हड्डपा के इन गृहों में, मैलेनबोदडो के मकानों की भाँति, कुएं नहीं मिले। हड्डपा के उत्तरनालों में कतिपय बड़े कुओं के अवशेष मिले हैं। प्रतीत होता है कि वे मावेलनिक कुएं हैं। उनका उपयोग केवल पीने का धारी प्राप्त करने के लिए किया जाता था, शेष काँचों के लिए पानी राबी नदी से प्राप्त होता था।^३ इन कुओं में दोनों की चुनाई बड़ी सफाई में की गयी है। उनकी दृष्टि को देखकर आज भी आश्चर्य होता है।

चबूतरे—मकानों के उत्तर की ओर १७ चबूतरे बते हैं। उनसे कुछ दूरी पर एक अन्य चबूतरे के अवशेष 1.9×1.6 में प्राप्त हुए। ये चबूतरे आकार में गोल हैं तथा उनके बाहरी किनारे और काँच पक्की इंटों के बते हैं। इन सभी चबूतरों के मध्य एक बड़ा छेद है, जिसमें लकड़ी लगी रहती थी। इन छेदों को ओखलों की तरह प्रयुक्त किया जाता था। उनमें लकड़ी के भूसलों से अम्ब कूटा जाता था। यही कहीं-कहीं भूसी, जल हुए, मैं तथा जी के दामे पाए गये हैं।

ब्रागार—चबूतरों से लगभग 1.0×0.7 फूट उत्तर की ओर ब्रागारों की दो पर्सियाँ मिली हैं। प्रत्येक पर्सिया में छह ब्रागारों के अवशेष मिले हैं, जिनकी लम्बाई-चौड़ाई कुल मिलाकर 4.0×2.0 फुट है। ब्रागारों की दोनों पर्सियों के बीच 2.3 फुट छोड़ रहा रहता है। ब्रागारों का निमोन चार-चार फुट ऊंचे चबूतरों पर किया गया था। इन सभी के दरखाजे उत्तराभिमुख नदी की ओर हैं, जिससे जलभाग द्वारा विभिन्न स्थानों का अम्ब भेजने में सुविधा रहती होगी।

'एफ-टोला' के में छोटे-छोटे गृह, चबूतरे तथा ब्रागार यह सूचित करते हैं कि इस स्थान पर मुख्यतया अभिको की बसती थी। प्राचीन हड्डपा के इन गृहों में तथा प्राचीन मिल के धारीण गृहों में कुछ समानता दिखायी देती है। दोनों स्थानों के गृह आकार में छोटे होते हैं। वे लगभग एक ही भाँति के होते हैं तथा उनके बारों ओर एक बीचार रहती थी। परन्तु प्राचीन मिल के गोल नगरों की सीमाओं से पर्याप्त दूर होते हैं। हड्डपा

१. माध्यम स्वरूप बत्स, एकसक्केशन्स ऐट हरता, विल्ड १, पृष्ठ १३-१४।

के वर्मिकों की उपर्युक्त बस्ती हड्डपा नगर की ही एक जानकारी भाग थी। इन वर्मिकों का कोटला पर निवास करने वाले प्रमुखों से सम्बन्ध रहा होगा।

(२) मोहेनजोदहो

प्राचीन मोहेनजोदहो नगर सिन्धु नदी के ऊपर का निवास स्थल अन्त के लकड़ियां जिनमें सिन्धु नदी के ऊपर स्थित था। यहाँ के अवधारणा हड्डपा के अवशेषों की अपेक्षा अधिक मुराखित जबला में मिले हैं। उसका भूलूल भी सिन्धुवर्मीन स्मारकों में विशिष्ट है। कोटला का निर्माण यहाँ भी किया गया था। मोहेनजोदहो को यूरोप में कुछ स्मारक कोटला के ऊपर मिले हैं। अन्य उसके पूर्वी ओर के निचले भैंड में उपलब्ध हुए हैं। स्थापत्य की दृष्टि से इन दोनों बगों का अध्ययन आवश्यक है।

(क) कोटला के ऊपर के स्मारक

हड्डपा की ओर मोहेनजोदहो के प्राचीन निवासियों ने नगर के पश्चिम की ओर एक कोटला (झुंग) का निर्माण किया था। वह एक छोड़े दीले के ऊपर बनाया गया था। यह दीला वर्तिय की ओर २० फुट तथा उत्तर की ओर ४० फुट कंचा है। सिन्धु नदी की बाहु के दायी ने इसके बीच के कुछ हिस्से को काढ़ कर एक प्रकार से इसे दो भागों में विभक्त कर दिया है। आज सिन्धु नदी इस दीले से पूर्व की ओर कोई तीन मील दूर बहती है। किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि प्राचीन काल में इस नदी की एक धारा कोटला के पूर्व किनारे पर भी अवश्य रही तोगो।^१

उपर्युक्त दीले का निर्माण कल्पी इटों तथा मिट्टी से किया गया। १२५० के उत्तरानन्द के वर्षनात्मक विद्वानोंने यह विकार-व्यक्त किया कि उसकी रचना हड्डपा-सभ्यता के 'माध्यमिक काल' में हुई। कोटला के ऊपर के कुछ प्रमुख भवन उसके लाद बने। अनुमान होता है कि इस दीले के भीचे अन्य प्राचीन भवनावशेष दबे होंगे। बाक में इस दीले को रखा के लिए उसके किनारे ४३ फुट लंबड़ा मिट्टी का बांध बनाया गया था। इसके अंतिमित कोटला के भीचे पक्की इटों की एक चौड़ी नाली भी बनायी गयी थी, जिससे वह याइ के पासों को बाहर निकाल सके। प्रतिवर्ष याइ की छोड़ी हुई मिट्टी के कारण याँ-याँ भास-पास की भूमि का स्तर ऊँचा होना गया त्वयोन्यो इस नाली को भी ऊँचा किया जाता रहा।

कोटला पर जो उत्तरानन्द-कार्य हुआ है उसमें उसके भीचे सभ्यता की सात सतहें प्रकाश में आयी हैं। यह उत्तरानन्द-कार्य कोटला पर लिप्त परलटीं पुग के बीड़ विहार के बास-

१. मेंके, फरवर एससे केशनन्द ऐट मोहेनजोदहो, निल्ब १, मुफ्त २।

किया गया था। कोटला की ऊपरी सतह पर जो अन्य स्मारक मिले हैं उनमें विशाल स्नानागार, विद्यालय, जलाशायार, सभा-भवन तथा कोटला के दक्षिण में बनी बूँदियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जाता है—

विशाल स्नानागार—कोटला के ऊपरी सतह के स्मारकों में स्नानागार सर्वोच्चिक भूमत्वपूर्ण है। उत्तर से दक्षिण की ओर इसकी लम्बाई ३८ फुट तथा पूर्व से पश्चिम की ओर ऊँचाई २३ फुट है। यह ८ फुट गहरा है। नीचे तक पहुँचने के लिए इसमें उत्तर तथा दक्षिण की ओर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ये सीढ़ियाँ पक्की इंटों की हैं। उनके ऊपर लकड़ी की पटिया बैठायी गयी थी। उत्तर की ओर सीढ़ियों के अन्त में एक छोटा बहुतरा था।

स्नानागार का फैले मुन्द्र पक्की इंटों का बना है। उसकी ऊँचाई में विषयम का प्रयोग किया गया था। फैले के आम-पास की दीवारों की ऊँचाई भी जिप्पम से की गयी। सामने की इंट की परत के पीछे विट्मन का एक छोटा पलस्तर है। उसके बाद की परत की इंट भी विट्मन से ही लूटी है। यह कठिनाई से प्राप्त हीमें बाला जुड़ाई करने का पदार्थ था। इसकी दुखभता के कारण विट्मन का प्रयोग नोहेनजोद्दो में बहुत कम हुआ है। मुंबर तथा बैरीलीन में इसका प्रयोग बहुतायत से साधारण पलस्तर की तरह मिला है।

इस स्नानागार का फैले दक्षिण-पश्चिम की ओर ढलुका बनाया गया था। इसी दिशा में १ फुट १ इक्की तथा ६ फुट ८ इक्की गहरी एक नाली बनी थी, जो सम्मवतः कोटला के पश्चिम की ओर तक गयी थी। आवश्यकता पड़ने पर इसी नाली से स्नानागार का पानी बाहर निकाल दिया जाता था।

स्नानागार के ऊपरी ओर प्रकोण्ड के बाद छोटे-छोटे कमरों की एक पसित है। दक्षिण की ओर के प्रकोण्ड के दोनों ओर दो छोटे-छोटे कमरे हैं। उत्तर की ओर के कमरे बड़े हैं। इन कमरों के आगे ८ छोटे-छोटे कमरे दो पसितियों में बने हैं, जिनके बीच से एक रास्ता जाता था, जिसमें एक नाली भी बनी थी। इन कमरों का उपयोग भी स्नान के लिए ही किया जाता रहा हीगा। पश्चिम की ओर कोई कमरा नहीं है। कमरों में स्वान-स्वान पर नल भी नहीं हुए हैं, जिससे होमर सम्मवतः बरस पानी जाता था। सभी कमरों की दीवारें बहुत मजबूत हैं। वे ४ फुट से ५ फुट तक मोटी हैं। प्रायः बाहर की ओर एकी इंटों की ओर बीच में कच्ची इंटों की जुड़ाई की गयी है। कमरों में सीढ़ियाँ भी बनी हैं। मोटी दीवारों तथा सीढ़ियों से यह ननुमान लगाया जा सकता है कि इन कमरों के ऊपर दूसरी संरचना भी रही हीगी।

यह विज्ञाल स्नानागार सांबेनिक उपयोग में आता रहा होगा। ऐसा कोई पुष्ट प्रमाण अभी तक नहीं मिला जिससे यह कहा जा सके कि इस स्नानागार के बलाशय का किसी प्रमंगिलोप से सम्बन्ध था।

विचालय—स्नानागार के उत्तर-नूरों की ओर एक विचाल भवन है, जिसकी लम्बाई २३० फुट तथा चौड़ाई ०८ फुट है। उसकी बाहरी दीवारें ६ फुट दूर इच्छतक भीटी हैं। यैके का विचार है कि यह किसी बड़े उच्च बधिकारी, सम्बवतः वहे पुरोहित, का निवास पा जथवा पुरोहितों का विद्यालय था।^१ इसमें ३३ फुट लम्बा-चौड़ा बगीकार अधिन है, जीव बड़े-बड़े बरामदे हैं तथा उनके पीछे कई छोटे-छोटे कमरे हैं। इसमें पहले कधी पूर्वी छोटी गली की ओर ५ दरवाजे रहे होंगे। दक्षिण तथा पश्चिम की ओर भी एक-एक द्वार था। बाद के लोगोंने आवश्यकतानुसार उसमें अनेक परिवर्तन भी किये। इसके कई कमरों के फर्शों पर इंट बूझ लुट्ठ है। कम से कम दो कमरों में सीढ़ियाँ भी मिली हैं। स्नानागार पास होने के कारण ही इस इमारत के निकट कोई कुब्बा नहीं बनाया गया था।

अभ्यासार—स्नानागार के ठीक पश्चिम में एक अन्य भवन के अवशेष प्राप्त हुए हैं। पहले इसे स्नानागार का ही एक भाग माना जाता था। १८५० ई० के दूसरे दशकों के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि ये अवशेष एक विचाल अभ्यासार के हैं। आरम्भ में यून से पश्चिम की ओर इसकी लम्बाई १५० फुट तथा उत्तर से दक्षिण की ओर चौड़ाई ०५ फुट थी। शीघ्र ही दक्षिण की ओर उसका और अधिक विस्तार किया गया होगा। इस अभ्यासार का निर्माण स्नानागार के निर्माण के कुछ ममव पूर्व हो गया प्रतीत होता है। अभ्यासार में ईंटों के बने हुए अलंक प्रकोष्ठ मिले हैं। गड़ी लकड़ी का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। अभ्यासार में प्रत्येक स्थान पर हृषा जाने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था। उसके उत्तर की ओर एक चबूतरा है, जिसको आवश्यकता अनुकूल रखने या निकालने के लिए पड़ती होगी।

सभा-भवन—कोटला के दक्षिणी भाग में एक अन्य भवन के अवशेष मिले हैं। यह ८० फुट लम्बा-चौरा एक बगीकार भवन था। इसमें ईंटों के बने २० चौकोर स्तम्भों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सम्भवतः इन्हीं स्तम्भों के ऊपर छत रही होगी। इस प्रकार यह सभा-भवन प्रतीत होता है, जो सभ्यों पर टिका था। भवन के बग्गे ५ परितमों में ही, प्रत्येक परितम में ५ खम्मे हैं। भवन के अन्दर बैठने के लिए चीकियाँ पही रहती होगी,

१. फर्दर एक्सक्युवेशन्स एट नोटेनजोइड्स, लिल्ड १, पृष्ठ १०।

जो आज भाष्ट हो चुकी है। इस भवन का उपयोग सांबेदरिक सभाओं और वादि के लिए होता होगा। मैंके का बहुमान है कि यही कोई बाजार लगता रहा होगा।

इस भवन के परिसरमें एक अन्य इमारत के अवसेष मिले हैं। सम्बन्धित वह भी स्तम्भों पर आधारित थी। जाकार में वह भवाभवन से छोटी इमारत थी।

कुछ चिदानंदों का मत है कि परवर्ती काल में स्तम्भों वाले भवन बनाने की कला भारतीयोंने दैरानियों से ली चुकी। इ० प०० चीची-तीसरी शती में बौद्ध-साम्राज्योंने पाटलिपुत्र में बहुसंख्यक स्तम्भों वाले भवन का निर्माण कराया था, जिसके अवशेष आधुनिक उत्कलनमें मिले हैं। मोहनजोदहो में प्राप्त ऊर्ध्वकल स्मारक स्तम्भाधारित भवनों के ही माने जाते हैं। वैदिक साहित्य में सहस्र स्तम्भों वाले भवनों के विवरण उल्लङ्घ हैं। इस आधारपर स्तम्भों वाले भवनों के निर्माण की परम्परा भारत में बहुत पुरानी ठहरती है।

बृंदियों—कोटला के ऊपर दक्षिण-पूर्वी किनारे पर इन्हों का देर तथा अन्य चिह्न बापत हुए हैं। वे अवशेष बृंदियों के हैं। इस स्थान पर सम्बन्धित उत्कलनमें ही सकने के कारण बृंदियों के स्वरूप के विषय में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, बृंदियों का निर्माण प्रक्रीये इन्हों के बने दृढ़ आधारों पर किया गया था। उनमें लकड़ी का प्रमोग भी किया गया था। बाद में सकनों के लट्ठों के नष्ट होने पर बृंदियों को अति पहुंची और उनकी स्मरणमत की गयी। इसीलिए बाद में इस प्रकार के निर्माण-कार्य में लकड़ी का प्रयोग बन्द कर दिया गया। कोटला के परिसरमें आग में जलायार के इविष्य में भी १० पूट लंबों एक दूरी के अवसेष मिले हैं। इन सभी बृंदियों का निर्माण रक्षात्मक दृष्टि से किया गया था।

पुरातत्ववेदाओं का मत है कि कोटला के ऊपर अभी अधिक उत्कलन की आवश्यकता है। तो भी इस लेक में जो अवसेष मिले हैं वे भारतीय स्थापत्य के प्राचीनतम् स्वरूप की जानकारी के लिए बहुमूल्य हैं।

(३) निचले नगर के अवशेष

कोटला के पूर्व में स्थित निचले खेत में उत्कलनों के परिणामस्वरूप जो अवशेष मिले हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः इस खेत में प्राचीन मोहनजोदहो की परिष्कृत समर-निर्याण-योजना का परिचय मिला है। इस योजना में एक नवीनता है। स्मारकों भाँडि के अध्ययन से वह निश्चित कर से जात हुआ है कि निचले नगर का निर्माण सुनियोजित अवस्था के बाहर पर किया गया। वही सड़कों तथा गतियों की विस्तृत योजना है, जिनके द्वारा सकारात्मक बनाये गये थे। सड़कों के किनारे-किनारे नालियों का भी निर्माण

पिया गया था। पूरी निर्माण-प्रोजेक्शन को स्पष्ट कर समझने के लिए मह आधिक है कि यहाँ की सड़कों, उनके बीच बने भवनों तथा नालियों के विषय में विस्तृत जानकारी दी जाए।

सड़के—दस ब्लैक के उत्तरनग में कई सड़के मिलते हैं। ये सड़कें उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम जाती हैं और एक-दूसरी को सम्पर्क पर काटती है। इस प्रकार सड़कों के बीच-बीच में लगभग समानाकार छोटे खण्ड (मोहल्ले) बन गये हैं, जिनकी सामान्यता लम्बाई (पूर्व-पश्चिम) १,२०० फुट तथा चौड़ाई (उत्तर-दक्षिण) =३० फुट है। प्रत्येक मोहल्ले के अन्तर्गत कई मकान हैं। बड़ी सड़कों के अतिरिक्त उत्तरनग में अनेक छोटी-छोटी गलियों या बीमियों निकलती हैं। उत्तरनगों के परिणामस्वरूप इमारतों के जो अवलोक भिले हैं उनसे ६ या ७ मोहल्लों का स्पष्ट आभास मिलता है।^१

मुख्य सड़कों में से प्रत्येक की चौड़ाई लगभग ३० फुट है। गलियाँ ५ से १० फुट तक चौड़ी हैं। उत्तर से दक्षिण की ओर जाती हुई मोहल्लों और दो एक मुख्य सड़क को राखपर माना गया है। कहीं-कहीं मह सड़क २३ फुट तक चौड़ी है।

मोहल्लों और दो एक मुख्य सड़कों की चौड़ी तथा सीधी तो है, किन्तु उन पर इंटे आदि नहीं विलायी गयीं। उनके किनारे नालियों बनो होने के कारण वर्षों में सड़कों पर अधिक समय पानी नहीं ठहरता होता। किर भी कच्ची होने के कारण में सड़कों वर्षों में कठप्रद हो जाती रही होंगी। एक सड़क के कुछ भाग पर गिरियाँ पड़ी हुई मिलती थीं। सगता है कि सड़कों पर यहले गिरियों विलाने की बात सोची गयी, बाद में किन्हीं अवात कारणों से इस घोड़ना को स्पाग दिया गया।

एक सड़क के दोनों ओर चबूतरे बने हुए मिलते हैं। इनका उपयोग राति में सोने के लिए अवधार दिन में छोटा-ना बाजार जगाने के लिए होता होता। सड़कों पर सफाई बनाये रखने की दृष्टि से उनके किनारे कूड़ाभरों का भी निर्माण किया गया था। हड्डियाँ में कूड़ाभर जमीन को खोदकर बनाये गये थे।

गृह—सड़कों तथा गलियों के बीच-बीच लगभग समानाकार छोड़ों में निर्मित गृहों के अवलोक भिले हैं। इन गृहों के दार मुख्य सड़कों की ओर से होकर गलियों की ओर धूलते थे। गिरिकियों के जिह रहीं-कहीं भिले हैं। प्रतीत होता है कि बड़ी गिरिकियों की अपेक्षा छोटों या मध्यमों को अधिक प्रसन्न लिया जाता था। उनसे पर्याप्त हवा तथा

१. मासंत, मोहेनजोदहो ऐण्ड इफडस सिविलिजेशन, जिल्ड २, पृ० ४६५।

प्रकाश भिन जाते हैं। साथ ही वाहरी लोगों से बाद भी रहती थी। प्रत्येक घर में एक अंगन होता था, जिसके बारों और कमरे बने होते थे।

मोहेनजोदहो के इन मकानों के स्वरूप का ज्ञान वहीं प्राप्त एक गृह-विशेष के वर्णन से किया जा सकता है। पर्याप्त मुराखित वस्त्रमा में इस प्रकार का एक गृह, सं० ८ ('एच-आर-लैट', विभाग 'ए')^१ है। इसका प्रवेश-द्वार एक गली की ओर है, जो ५ फुट चौड़ी है। इस गृह में प्रवेश करते ही पहले छोटा दालान विलता है। वहीं पास में एक छोटा कमरा है, जो सम्मवत् सेवक के निवास के लिए रखा होगा। यहीं से एक संकरे गलियारे से होकर, जिसके दक्षिण की ओर एक कुबी बना है, मुख्य बांगन के लिए रास्ता मिया है। यह अंगन पूरी तरह बूला था। बाइंद में उसके कुछ भाग को पाट दिया गया। कुण्ड के पास स्नान करने के लिए एक पृथक् कमरा बना है, जिसके फले पर ईंटों की सफाई के साथ जीड़ा गया है। इसके पूर्व में एक कमरा और है। अंगन के पूर्व में कई लोटे-लोटे कमरे बने हैं। उन्हीं में एक बी दीवार पर बड़ी नाली बनी है, जिसमें ऊपर बी उत्तर व्रश्चित्र का गानी बहकर सड़क की नाली में चला जाता था। अंगन के उत्तर की ओर ऊपर जाने के लिये ईंटों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दीवार की मोटाई तथा सीढ़ियाँ से ऐसा लगता है कि इस गृह में ऊपर की सजिल भी रखी होगी।

बड़े मकानों के जो अवलोक प्राप्त हुए हैं उनमें नवाचा उपयुक्त गृह के मकानों से प्राप्त मिलता-जुलता है। 'बी-आर-लैट' के दक्षिण की ओर २५० फुट लम्बे एक भवन के अवलोक मिलते हैं। पहले उसे किसी सार्वजनिक भवन का एक भाग माना जाता था। बाद के निरीक्षणों से पता चला कि वह एक महान् है। इस महान् की वाहरी दीवार, जो उत्तर की ओर है, कहाँ-कहाँ ३ फुट तक चौड़ी है। उसमें एक के स्थान पर दो अंगन हैं। नीलरंग के कमरे तथा गोदाम भी बने हैं। उसमें दो कुण्ड भी बैंगनी हैं। परवर्ती युग में इस महान् के अवलोकों के ऊपर इमारतें बनायी गयीं। उनकी रचना-वैज्ञानिक साधारण कोटि की है।

'बी-आर-लैट' में बड़ी सड़क पर ही एक अन्य गृह के अवलोक उल्लेखनीय है। यह गृह ५७ फुट लम्बा और १५ फुट चौड़ा है। इसके बीच में अंगन तथा बारों और कमरे तो हैं ही, सड़क की ओर तीन देसे कमरे भी हैं जिनके फले पर सफाई के साथ ईंटे बड़ी हुई हैं। कलों पर कुछ गढ़े हैं, जिन पर थड़े रखे जाते होंगे। पास ही एक कुबी बना हुआ है। इस प्रकार यह गृह एक सार्वजनिक गानधूरा या प्रतीत होता है।

१. मासैल, मोहेनजोदहो पेंड इक्स सिविलियेशन, विल्व २, पृष्ठ ४५५।

एक अन्य लेख में दो पक्षितयों में बने १६ छोटे-छोटे गृहों के अवलोक भिजे हैं। प्रत्येक में केवल दो-दो कमरे हैं। शामने का कमरा कुछ बड़ा है, पीछे का छोटा। यह अभियांकों की बस्ती रही होगी, जैसी कि हड्डपा में भिजी है।

इन सभी गृहों की दीवारों में पक्षी ईंटों का प्रयोग हुआ था। कच्ची ईंटों का इस्तेमाल केवल गृहों के अन्दर कमरों तथा आगनों के पाणी की आवश्यकतानुसार केवल करने के लिए किया गया है। इन प्रयोजन के लिए पक्षी ईंटों का भी प्रयोग किया गया है, पर कम। दीवारों नीं चुनाई करते समय ईंटों को पहले लम्बाई के आधार पर, किरणोंहाई के आधार पर लोड किया गया है। चुनाई की इस प्रकाली को 'इलिज बॉड' कहते हैं। दीवारों पर अन्दर की ओर भिट्ठी के गाँठ का पलस्तर किया गया है। दीवारों पर बाहर भी इस प्रकार का पलस्तर होता था, वह नहीं कहा जा सकता। अनुमान है कि ऊपर की मरिलों के निर्माण में लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता था। सहारा देसे के लिए जहाँ कहीं वस्तों की आवश्यकता नहीं थी वहाँ भी लकड़ी का प्रयोग किया जाता रहा होगा। जिन पक्षी हुई ईंटों का प्रयोग होता था उनकी नाप साक्षात्कारणतः $11'' \times 4\frac{1}{2}'' \times 2\frac{1}{2}''$ है। अब तक प्राप्त सभी वहीं ईंट की नाप $2\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}'' \times 2\frac{1}{2}''$ तथा सभी छाँटी ईंट की $2\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}'' \times 2''$ है। कच्ची ईंटों का आकार सामान्यतया $1\frac{1}{2}'' \times 3\frac{1}{2}'' \times 3\frac{1}{2}''$ से लेकर $1\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}'' \times 3\frac{1}{2}''$ तक है। ये ईंट सफाई से बनायी गयी हैं।

१८२० से १८३१ के बीच हुए उत्तराखण्ड में अनेक दीवारों को साफ करके निकाला गया। उनकी कुछ विवेचनीय हैं। वासनाम के गृहों की बाहरी दीवारें भी एक-दूसरी से भिजी हुई नहीं थीं। उनमें नीचे जो अन्तर है वह ऊनाई की बुद्धि के साथ-साथ दीवारों के तिरछों होने के कारण बढ़ता गया। कहाँ-कहाँ इस प्रकार दो दीवारों के बीच रिक्त स्थान को दूटी-भूटी ईंटों या कत्तलों से भर दिया गया है। किन्तु अधिकतर गृहों में इस रिक्त स्थान को दोमों किनारों की ओर ही भरा गया है, बीच के स्थान की ओर ही छोड़ दिया गया है। इसके साथ ही वह भी उत्तराखण्डीय है कि बाद के दूसरे में जो दीवारें बनायी गयीं वे प्रायः पहले की बनी हुई औही दीवारों के ऊपर बनी। उनमें दोनों ओर तो पूरी-भूरी ईंटों का प्रयोग किया गया, किन्तु बीच-बीच में पूरासी ईंटों के दुख़े भर दिये गये। किसी-किसी गृह में कच्ची-भूरी दोमों प्रकार की ईंटें कमज़ोर, एक के बाद एक करके लगायी गयी हैं। मित्रवित्ता की दृष्टि से ही ऐसा किया गया होगा। बाद के दूसरे में जनी दीवारें उत्तरी मुद्रङ्ग एवं मुन्दर नहीं हैं जितनों प्रारम्भिक युग की दीवारें।

आरम्भिक-पुरोगीम दीवारों के ऊपर जब बाद की दीवारें बड़ी करने की आवश्यकता हुई तब पहले की दीवारों को साफ करके हमेशा बना दिया गया था। बाद के युग की

दीवारें अपेक्षाकृत कम चोरी हैं। जिस स्तर से उनका निर्माण आरम्भ हुआ था उस पर पुरानी दीवारों के मिरों को दोगो और मिलता हुआ देखा जा सकता है। इस प्रकार अनन्त पुरानी दीवारों का उपयोग परवर्ती युग में नीचे के वर्ष में किया गया। परवर्ती दीवारों में पहले की ईटों का भी भूविधाननुसार प्रयोग किया गया। दोनों युगों की ईटों के आकार में अनन्त होने के कारण परवर्ती दीवारों की चूनाई में 'इमिलिं बांड' चिह्न का निर्बाह पूर्णतया नहीं हो सका। कई स्थानों पर लगातार एक से अधिक ईटों को चौड़ाई के आधार पर ही लोड दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया होगा कि दो चिह्न स्तरों की ईटों के जोड़ एक-दूसरे के ऊपर न आ जायें।¹ मिरों की आलंका से प्रायः बाहरी दीवारों में, जो अधिक ऊँची होती थीं, बाहर की ओर कम्बी या पक्की ईटों की एक प्रतिरक्षा लोकार भी बना दी जाती थी।

मोहनजोड़ों के मकानों के द्वार सामान्यतया सवा तीन कुट चोड़े हैं। परन्तु विशिष्ट हारों के आकार में पोहो-बहुत अनन्त मिलता है। दरवाजों में लकड़ी की लौखट की संगती जाती थी, यह बताना कठिन है, क्योंकि दीवारों पर लौखटों के लगाने के बोई सम्पर्क चिह्न प्राप्त नहीं हुए। हो सकता है लौखट दीवारों के ठोक बीच में न लगाकर उनके पीछे लगायी गयी हों। यह भी सम्भव है कि ऊपर चौड़ाई की लकड़ी से ही किवाह बने रखे हों। किवाहों में कुछदी की संगती थी, यह भी जात नहीं हो सका। परवर्ती युग के एक कम्बरे के द्वार के ऊपर एक छेद है। सम्भवतः उसी में किसी विशेष प्रकार की कुण्डी लगायी जाती थी। ताकालीन लोगों को गोल मेहराबों का मान नहीं था। छोटे-छोटे निकत स्थानों की पुति ईटों की टोड़े-दार मेहराबों (चाप) से की जाती थी। दरवाजों आदि के द्वार के बीड़े स्थान लकड़ी के बड़ों की सहायता से पाट दिये जाते थे।

छते प्रायः समतल आकार की रही होंगी। दूरीमय से यिसी भी मकान की छत के अवशेष नहीं प्राप्त हो सके। छतों को बनाते समय पहले लकड़ी के गहरीओं को बोड़े-धोड़े अनन्त से दीवारों पर बिलाया जाता था। फिर गहरीओं के ऊपर सरकाहों को बिछाकर उन्हें रसी से गवाहुत बोध दिया जाता था। बावजूद सरकाहों के ऊपर मिट्टी की मोटी तह आसकर छत तैयार कर ली जाती थी। एक स्थान पर सरकाहों के निशानों से दूर गिरु मिलती है। उससे उक्त अनुमान की पूर्णता होती है। इन मकानों की समतल छत मिमियों में सोने के लिए उपयोगी रही होंगी।

१. कठें एकसंकेतसम्म ऐट मोहनजोड़ो, जिस्ट १, पृष्ठ १६३।

अधिकांश गृहों में स्नानगृह के पास शौचालय मिला है। कुछ मकानों में इसका निर्माण ऊपर की मजिल में भी किया गया था। भन के निष्कासन हेतु शीवारों की मोटाई में ही ईंटों को विश्रित और कर नालियों बनायी गयी थीं। कहीं-कहीं इसके लिए मिट्टी के पाइपों (प्रणालिकों) को भी लगाया गया था।

कुछ मृहों के अन्दर शीवारों से बाहर निकले हुए ईंटों के टोड़े बने हैं। उनमें ईंटों के ऊपरी हिस्से समतल नहीं हैं। उनमें गहड़े भी बने हैं। इन टोड़ों का उपयोग दीपकों के रखने के लिए किया जाता रहा होगा।

कुछ मकानों के सामान्य स्तर की ढंगों करते के लिए अनुमानित चाढ़ की ढंगाई से कुछ अधिक ऊपर बढ़तरों का निर्माण किया गया था। ये कच्ची ईंटों से बनाये गये थे तथा उनकी जुड़ाई भी मिट्टी के गारे से की गयी थी। इन ईंटों का आकार $9\frac{1}{2}'' \times 5'' \times 3\frac{1}{2}''$ या इससे कुछ कम है।

नालियों—नालियों की दौसी मुन्द्र अवस्था भी हेनबोद्डो में मिली है वैसी तत्कालीन किसी सभ्य देश में नहीं पायी गयी। सभी प्रमुख तहकों तथा प्रायः सभी चौकी नालियों के दोनों ओर एकी ईंटों की नालियों वसी हुई थीं। इन नालियों के बीच-बीच में गहड़े बने हुए थे, जिनमें पानी के साथ बहकर आगा हुआ कूड़ा एकल ही जाया करता था। इन गहड़ों की निर्धारित रक्षाई की जाती रही होगी। अधिकतर नालियों पर्याप्त गहड़े तथा टंड़न तक चौकी मिलती हैं।¹ ये सभी नालियों ऊपर ईंटों अथवा पत्थरों से छोड़े थीं। चौकी सहकों की बड़ी-बड़ी नालियों में गलियों की छोटी नालियों आकर मिलती रहती थीं।

मकानों में भी नालियों बनी होती थीं, जिनमें से हीकर गन्दा पानी नालियों की नालियों में जाता था। प्रायः स्नानगृह तथा कुर्ये सड़कों की ओर होते थे। इन्हीं स्थानों में कठों के किनारे पक्की ईंटों की नालियों बनायी जाती थीं। कहीं-कहीं इस उद्देश्य के लिए मिट्टी के पाइपों का भी इस्तेमाल किया जाता था। दूसरी मजिल की छतों के पानी को बाहर निकालने के लिए प्रायः शीवारों पर ही बाहरी ओर नालियों बनायी जाती थीं। कठों-कठों बहाव के बेग को जल करते तथा सहक पर पानी को फिलने से रोकते के लिए इन नालियों को थोड़ा ढंगा-भीचा करके इसकी बना दिया जाता था। इस प्रकार की नालियों में भी कहीं-कहीं मिट्टी के पाइपों का प्रयोग किया गया था।

१. डै० सतीशचन्द्र काला, तिरु-सम्पत्ति, पृष्ठ ८८।

कहो-कहो इन नालियों में भिट्ठी के पातस्तर के चिह्न भी मिले हैं। सामाजिकता सभी वही नालियों में विषय तथा घूसे के स्थिरण का पातस्तर मिलता है। बाद के सुग की बनी कुछ नालियों में केवल घूसे का प्रयोग किया गया।

(३) चन्द्रदण्डी

मोहेनजोदहो से दक्षिण लगभग २० मील की दूरी पर सह्नून्द के पास तीन प्राचीन टीले हैं। इन टीलों में प्राचीन चन्द्रदण्डी के अवशेष मिले हैं। ये टीले पहले एक-दूसरे से मिले हुए रहे होंगे। बाद में सिन्धु नदी द्वारा कटाव के बारम्ब प्राचीन टीला तीन भागों में विभक्त हो गया। अब सिन्धु नदी इस स्थान से लगभग १२ मील दूर बहती है।

इस खेत में १६३१ई० में उत्कर्षन कार्य किया गया था। उसके परिणामस्थल वही हड्डपा-कालीन तथा बाद के दूसरी संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए। १६३५-३६ में इस स्थान पर पुनः उत्कर्षन किया गया।

उत्कर्षनों में प्राप्त विभिन्न स्तरों के अवशेषों का वर्णकरण निम्न^१ द्वारा इस प्रकार किया गया है—

चन्द्रदण्डी, प्रथम स्तर	(क)
" " "	{ (ख) }
" " "	{ (ग) }

चन्द्रदण्डी, द्वितीय स्तर — शूकर संस्कृति

चन्द्रदण्डी, तृतीय स्तर — शंखर संस्कृति

टीला सं० २ में हड्डपा-कालीन तीनों स्तरों का विशेष अध्ययन किया गया। प्रतीत होता है कि इस स्थान पर दो बार निर्माण-कार्य हुआ और दोनों ही बार बाद ने सब कुछ नष्ट कर दिया। उसके बाद यही नये मिरे से निर्माण हुआ।

सबसे नीचे के स्तर पर दृटों के बने तीन या चार गूहों के अवशेष देखे गये। इसके ऊपर के स्तर में प्राप्त कुछ अवशेष उत्तोलनीय हैं। लगभग २५ कुठ छोड़ी एक सहक मिली है, जिसे समकोण पर खाटी हुई कई गलियाँ हैं। हड्डपा-तथा मोहेनजोदहो की भाँति यहाँ भी इन गलियों तथा सहक के दोनों ओर नालियों थीं। सहक के आम-नाम कुछ ऐसे नकालों के अवशेष मिले हैं जिनके जावार पर इसे कारीमरों की बस्ती कहा जा सकता है। इसके ऊपर की सतह पर केवल कुछ दीवारों के अवशेष बचे हैं। दीवारों के आकार से लगता है कि इस स्तर पर किसी विशेष महत्व के विशाल भवन नहीं थे।

१. प्रीहिस्टोरिक हड्डपा, पृष्ठ २२२।

इस टीले के वधिण-गतिचम में स्थित दोला सं० १ के उत्तरनामों में भी हडप्पाकालीन अवशेष मिलते हैं। यहाँ भी महारे, मकान एवं नामियाँ भोजेनजोड़ों की तरह की हैं। यहाँ लगभग ५ फुट लौड़ी तथा २० फुट लम्बी एक दोबार के अवशेष भी मिलते हैं। इस दोबार का बाहरी भाग मुद्रर ढंग से ईंटों का बना है। अन्दर के भाग में उत्तरी सफाई एवं मुद्ररता नहीं है।

दोला सं० २ पर हडप्पा-दूग के बाद के अवशेष भी मिलते हैं। इस स्तर पर सम्भवतः शूकर-संस्कृति के लोग आकर इस गये थे। उनमें से वधिकांश ने तिख्ले स्तरों के गूहों की दोबारों को ही कुछ ऊंचा करके अपने रहने का प्रयत्न कर लिया था। बाद के दूग के बगे इन गूहों में पुरानी ईंटों का ही प्रयोग किया गया और उनकी जूलाई भी अचार्यस्थित ढंग से की गयी। इस स्तर पर कुछ लोग ग्रोपड़े बनाकर भी रहने लगे थे। वे अपने ज़हर औषधों के बाहर बनाते थे और हवा के जांकों से बचने के लिए जूलों के पास कल्पी-पत्ती ईंटों की एक छोटी दोबार बना लेते थे।

दोला सं० २ पर अगर-संस्कृति वाले जो लोग आकर बसे थे उनके बनाये मिट्टी के बरतनों के कुछ दृश्य हैं। किन्तु उनके मकानों का कोई अवशेष नहीं मिलता। आएव उन्हें स्वातंत्र्य का कितना जान था, वह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

(४) लोथल

लोथल नामक दोला मुजरात के बिला अहमदाबाद में सरगवल प्राम के पास स्थित है। यह लगभग १,६०० फुट लम्बा, १,००० फुट लौड़ा तथा २० फुट ऊँचा है। टीले के कल्पर प्रायः कुछ प्राचीन बस्तुएँ महत्वपूर्ण समझी गयी। जल्द यहाँ उत्तरनामावे केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा किया गया। उसके परिणामस्वरूप यहाँ पर भी हडप्पाकालीन सम्भता के अवशेष मिलते हैं। पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि इस स्थान पर तीन विभिन्न कालों की सम्भता थी।^१ बाद के उत्तरनामों से यहा जब्ता कि यहाँ छः विभिन्न कालों की सम्भता के अवशेष हैं।^२

चूनरा तथा रक्षा-प्राचीर—लोथल की प्राचीन बस्तों भी भवतो तथा सावरमती नदियों के बीच स्थित थी। जारम्ब में वहाँ के निवासियों को इन नदियों की बाहु का सामना करना पड़ा होगा, जिससे उन्हें पर्याप्त धर्ति पहुँची होगी। इसी कारण उन्होंने इस क्षेत्र में कल्पी ईंटों का एक विशाल बवृत्तरा निर्मित किया और उसके कल्पर अपने मकानों

१. इण्डियन आर्कोलॉजी—ए रिव्यू (१८५४-५५), पृष्ठ १२।

२. वही, (१८५६-५७), पृष्ठ १५।

का निर्माण किया। परलाली युगों में जैसे-जैसे उन्हें बाहु से वचाव की आवश्यकता का अनुभव हुआ उन्होंने इस चबूतरे को भी अधिक ढेखा किया। इस प्रकार इस चबूतरे को पाँच विभिन्न कालों में निर्मित किया गया। इसके अतिरिक्त इसी चबूतरे पर मिट्टी की एक रक्षा-द्वारीर का भी निर्माण किया गया। प्राचीर ३५-फुट ऊँची तथा ८ फुट ऊँची है। इसे बाहु से रक्षा की दृष्टि से ही बनाया गया था। बाद में इसमें जो डरारे पहुँच उसकी सम्मत भी की जाती रही। उसर की ओर ऐसी एक दरार की ठीक करते समय बाहर की ओर इंटों से इसे पुक्का बनाया गया। अनंदर की ओर भी एक सहायक दीवार बना दी गयी तथा बीच के भाग का भराव मिट्टी से किया गया।

१८५७ के उत्तरान्तरों में प्राचीन वस्ती के बारों और एक बाहरी चबूतरे के अवशेष मिले।^१ यह चबूतरा कच्ची इंटों का बना है। उस समय इसे दक्षिण की ओर ६-८ फुट तक तथा पूर्व की ओर ३५० फुट तक देखा जा सका। परिष्वेत की ओर भी एक चबूतरे के अवशेष मिले। वह सम्मत चबूतरे का ही एक भाग था।

सहके—लोधील में भोहेनजोदहो की भाँति विस्तृत सड़कें नहीं मिलती। दोनों के उत्तर की ओर १२ फुट ऊँची एक सड़क मिलती है, जिसके दोनों ओर भकानों का निर्माण किया गया था। यह सड़क द्वितीय काल में बनी प्रतीत होती है। एक बाय यहाँ दोनों ओर से दक्षिण-पश्चिमी लोड में मिलती है, जो पूर्व से पश्चिम को जाती है। उसके दोनों ओर भी भकान बने हुए थे, जिनके अवशेष उत्तरान्तरों में प्राप्त हुए हैं। इस सड़क का निर्माण यहाँ तृतीय काल में हुआ तथा उसका अस्तित्व चतुर्थ काल में भी जाना रखा। वे सड़क कच्ची थीं, किन्तु उसके किसारे-किसारे नालियाँ बनायी गयी थीं।

गह—लोधील के गह भोहेनजोदहो के भकानों की भाँति सुन्दर और बहु नहीं थे। १८५५ के उत्तरान्तरों में प्राप्त १५५ छाँटे से भकान के अवशेष विशेष उल्लेखनीय हैं। उसमें एक स्नानगृह तथा रसोइचर भी मिला। भकान के बाहर यामी निकालने के लिए नालियाँ बनी हुई थीं। एक अन्य स्नान पर एक ही पक्किल में बने कई मुहों के अवशेष मिलते हैं। उसमें स्नानगृह है तथा बाहर की ओर एक-दूसरे से मिलती हुई नालियाँ भी बनी हैं। इनके अतिरिक्त एक स्नान पर कई गृह या घोंगों में बड़ी हुए पास-नास मिलते हैं। उनके बीच में एक संकरा मार्ग है। ऊपर कच्ची इंटे भी हुई हैं। नधिकांश गृहों के भन्दर कच्ची या पत्ती इंटों के थोन थेरे बने हुए हैं। उसमें गूरियाँ, जामबरों की बलों हड्डियाँ तथा मिट्टी के बरतानों के टुकड़े मिलते हैं। १८५३ के उत्तरान्तरों में दो भकानों के अवशेष भी मिले।

में कच्ची ईंटों के बने हैं। एक पर के नियामी गुरिया बनाने का व्यवसाय करते रहे होंगे, कियोंकि बहुत सी गुरियाँ इस पर के बांधन के बहुतरे पर मिली हैं। यह अग्रम १२ फुट लम्बा तथा ६ फुट ऊँचा है। अग्रम में बहुतरे के गांठ एक भट्ठी जौँड़ी हुई है। बरामदे की ओर ही छुलने वाले इस पर में छः कामरे हैं।

लोधल के खगधग सभी घरों में पक्की ईंटों के कर्ण बाले एक या दो बहुतरे मिलते हैं, जिनका उपयोग स्नान आदि के लिए होता होगा। इन बहुतरों के कलाँ तथा नालियों के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानों पर कच्ची ईंटों का ही प्रयोग किया गया है। अतः मोहेनजोदहो की अपेक्षा लोधल के पर निर्माण की दृष्टि से निम्नकोटि के हैं। गहरों के घरों में तीसरे और चौथे काल में जैसे घर कुछ अच्छे हैं। परवर्ती कालों में गहरों का निर्माण अधिकतर पहले की टूटी-फूटी ईंटों से किया गया।

भट्ठे—रक्षा-प्राप्तीर के पास एक अन्य छोटा टीका है। १८५५ में इस स्थान पर जो उत्खनन-कार्य हुआ उसमें एक बड़े भट्ठे के अवशेष मिले। यह ५४ फुट लम्बा तथा ४५ फुट ऊँचा है और उसके कर्ण की ऊँचाई ५ फुट है। कर्ण पर कच्ची ईंट लगी है। कच्ची ईंटों के द्वारा ही उसे १२ आयताकार भागों में विभक्त किया गया। प्रत्येक भाग के बीच में सबा तीन फुट से लेकर पाँच लाख फुट तक जौँड़े जाने वाले गलियारे बने हैं, जो परस्पर एक-दूसरे से मिलते हैं। भट्ठे की बाहरी ओर मिट्टी का पालस्तर भी है। उसके कर्ण की ईंट कई स्थानों पर, अत्यधिक पकाई है, लाल है। बीच-बीच में राख तथा जली हुई लकड़ी के अवशेष मिलते हैं, जिससे जास हुआ है कि यह एक भट्ठा ही था।

१८५७ के उत्खननों के परिणामस्वरूप तुल भट्ठों के अवशेष लोधल में प्राप्त हुए हैं। इन भट्ठों में मिट्टी के बत्तें, ईंट, मिट्टी की गुरियों आदि जाकरी जाती थी। इस प्रकार के भट्ठों की प्राप्ति लोधल की एक विशेषता है। हड्डिया तथा मोहेनजोदहो में निचले स्तरों से ऐसे भट्ठों के अवशेष नहीं मिले। जो मिले भी हैं वे लाद के लुग के हैं, जब सिध्ध जन्मता का पतन आरम्भ हो जूका था।

नालियाँ—लोधल के घरों, बहुतरे आदि के निर्माण में प्रणपि कच्ची ईंटों का प्रयोग किया गया, पर वही भीतर-बाहर की नालियों पक्की ईंटों की ही जनाली गयी। घरों में अधिकांशतः स्नानागारों तथा रसोइयों में नालियों बनायी जाती थी। उन्हें बाहर की ओर बने हुए गहरों से मिला दिया जाता था, जो पानी को सोख लेते थे। ऐसी अनेक नालियों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जो एक-दूसरे से मिली हुई थीं।^१

१. इण्डियन आर्कोलॉजी—ए रिव्यू (१८५६-५७), पृष्ठ १५।

लीथित से प्राप्त उक्त अवलोग वह महत्व के है। वही तथा रंगपुर में किये गये उत्तरनाम ने मह लिद्ध कर दिया है कि हड्डपा-संस्कृति का प्रसार गुजरात-नाथियामाह तक हुआ। लीथित में जहांगी की शोधी का पता चला है, जिससे इस प्राचीन नगर के व्यापारिक महत्व पर तथा समुद्री-नावानात पर प्रभुत प्रकाश पड़ा है।

उक्त बारों स्थानों के अतिरिक्त हड्डपा-नाम्भवता के अवलोग पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, राजस्थान, गुजरात तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई दोली में मिलते हैं। स्थापत्य की दृष्टि से इन स्थानों के अवलोग रूपरूपों में साम्य के कई उत्तर दृष्टिगोचर होते हैं, परम्परा विभिन्न दोलों में अन्य बातों की तरह स्थापत्य में भी स्थानीय विशेषताएँ मिलती हैं।

हड्डपा-संस्कृति के स्थापत्य या विवरण देने के बाबत् इस कह सकते हैं कि यह स्थापत्य उपरोक्ता तथा नाश्ता—इन दोनों दृष्टियों से उच्चकोटि का है। मानव-सम्भवता के इतने ग्रामीणक दाल में भवन-निर्माण की परिणृत बणती तथा नगर-निर्माण पोर्कना का वैसानिक एवं सुविकसित रूप देखकर आश्चर्य होता है। हड्डपा-संस्कृति के जनों का ऐहिक जीवन के प्रति अनुराग तथा उसे यथासम्भव अवलिप्त बनाने का जपक्रम वस्तुतः सराहनीय है। इन नगरों की स्थापत्य-कला के सम्बन्ध में रोलेंड की यह धारणा मुकितंगत लगती है कि इन नगरों के निवासियों का जीवन ग्रामीन भिन्न तथा मेसो-पोटामिया को राजधानियों के जीवन की अपेक्षा अधिक सुखार था।^१

१. बेझ्लामिन रोलेंड, दी आर्ट एण्ड भार्टिस्टर आर इण्डिया, पृष्ठ १५।

वैदिक वास्तु

भारतीय साहित्य में शूर्णवेद सबसे अधिक प्राचीन है। उसमें स्थापत्य-सम्बन्धी क्षितिश्च उल्लेख मिलते हैं। उनसे पता चलता है कि ईसवी पूर्व वितीय सहायात्री के पहले भारतीयों को भवन-निर्माण की ज़ल्दी जानकारी हो गयी थी। शूर्णवेद के अतिरिक्त यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में तथा ग्रन्थवर्ती वैदिक साहित्य में ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं कि स्थापत्य के क्षितिश्च अंगों पर प्रकाश लालते हैं। विशेषतः शूर्णवेद तथा अथर्ववेद में भवन-विनायक का जीवन उपलब्ध है उसकी परम्परा भारत में बराबर जारी रही।

वैदिक भवनों के तीन मुख्य रूप थे। पहला भाग गृह-द्वार था, जिसमें सामने का अंगन या अंतर्गत भी सम्मिलित था। दूसरा अंग बैठक थी, जिसके नाम 'सभा' तथा बाद में 'आस्थान मण्डप' मिलते हैं। यहीं आगन्तुकों का स्वागत किया जाता था। तीसरा भाग 'पल्ली-सदन' था, जिसे 'अन्तःपुर' कहा जाता था। वार्षी लोग अग्नि-बाधान के हेतु भवन में एक कक्ष या आच्छादित स्थान को 'अग्निशाला' के रूप में रखते थे। विहित श्रोत कर्मों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था। वहे प्राचार्यों में इस पवित्र स्थान को 'देवगृह' कहा जाने लगा। कालान्तर में भी इसका उपयोग पूजा के कर्मरे के कार में होता रहा।

वैदिक साहित्य से पता चलता है कि भवन-निर्माण-कला में सादगी पूर्व सूर्याचि थी। नेतृत्व का जीवन लादा था, अतः निषास-गृहों में आदम्बर या दिवाधारा आकर्षक न समझा जाता था। सौन्दर्य-बोध वैदिक आदों में विद्यमान था, इसका पता शूर्णवेद एवं परवर्ती वैदिक साहित्य से चलता है।

शूर्णवेद (३, ३३, १३) में मान तथा विशिष्ट नामक दो शृणियों की घड़े से उत्पत्ति की कथा दी है। सामग्रे में 'मान' को बुम्बन (बगस्तर) का ही दूसरा नाम माना है। बगस्तर की उत्पत्ति पढ़े से हुई जानी जाती है। वाद के वास्तु-जास्त्रकारों ने अगस्तर को

वास्तु-विद्या का आत्मग्रंथ है। 'मान' का अर्थ मापन है। हो सकता है कि अगस्त्य का सम्बन्ध वैदिककालीन वास्तु-कला से रहा हो।^१

ऋग्वेद में कई स्थानों पर 'वास्तोस्पति' नामक देवता का उल्लेख है।^२ गृह-निर्माण के पूर्व इस देवता का जावाहन किया जाता था। एक स्थान (*८, १७, १४*) पर वास्तो-स्पति तथा इनको तथा अन्य *(५, ४१, ८)* वास्तोस्पति तथा त्वच्छुदा को एक ही माना गया है। बादके वास्तु-साहित्य में त्वच्छुदा को एक कुगल कारीपर कहा गया है।

ब्रह्मन-निर्माण में प्रायः चौरों का तथा अन्य लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। ये ब्रह्मुर्ति भूगमता में उपस्थित थीं। आच्छादन के लिए लकड़ी के अतिशिक्षित वास्तु-कुस तथा गत्तों का प्रयोग किया जाता था। छोरे-छीरे इठों का प्रयोग भी किया जाने लगा। ऋग्वेद में 'अग्नमधी' तथा 'आपसी' द्वारों के उल्लेख भी मिलते हैं। इससे पता चलता है कि द्वारों के निर्माण में पश्चर तथा धारु के उपयोग का पता ऋग्वेद के आदी को था।

प्राम—'प्राम' शब्द ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में बहुत मिलता है। 'प्राम' वर्तमान शब्द का योग्यक है। कुछ वैदिक ग्राम एक-नूसरे के निकट थे (*सत्पर्म जात्याग, १३, २, ४, २*)। कुछ हर-हर बसे थे तथा भड़कों के हारा एक दूसरे से सम्बद्ध थे (*सांवर्ण्य उपनिषद्, ८, ६, २*)। गाँव प्रामः चूले हुए होते थे। प्राम बसाते समय बूढ़ बल और बायु का ध्यान रखा जाता था। बड़े ग्रामों को 'महाप्राम' कहते थे।^३ हैवेल के मतानुसार ये ग्राम जावताकार होते थे तथा उनके चारों ओर एक-एक डार होता था।^४

पर्सी बाड़न का अनुभान है कि वैदिकग्रामों के चारों ओर लकड़ी की बाढ़ बनायी जाती थी, जैसी कि बाद में जैन-बौद्ध शूरुओं के चारों ओर मिलती है। बाड़ के चारों ओर एक-एक अधिक तोरण (झार) भी बनाये जाते थे।

पुर—''पुर' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद^५ में तथा वर्षतीर्ते वैदिक साहित्य^६ में अनेक स्थानों पर मिलता है। परस्ती तंस्तुल साहित्य में यह शब्द नगर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ

१. तारापद भट्टाचार्य, ए स्टडी ऑफ वास्तुविद्या, पृष्ठ १३।

२. उदाहरणार्थ ऋग्वेद, ७, ५४; ७, ५५; ८, १७, १४ जारि।

३. मिहाडोमल तथा कीर्ति, वैदिक दृष्टिकोण, जिल्ड १, पृष्ठ २४४-२५।

४. हैवेल, वि हिन्दू आप आर्यन कल इन इण्डिया, पृष्ठ २३-२४।

५. ऋग्वेद १, ५३, ५; १५८, ८; १, १३१, ५ जारि।

६. तेलरीय जात्याग, १, ३, ३, ५; ऐतरेय जात्याग १, २३; २, ११ जारि।

है। वैदिक माहित्य में 'पुर' का प्रयोग 'दुर्ग', 'गड़' या 'प्राकार' के लिए भी होता है।^१ ऋग्वेद में पुरों पर ऐरा बलने तथा उन्हें विनष्ट करने के उल्लेख मिलते हैं। प्रतीत होता है कि उस युग में पुरों की संख्या अधिक रही होगी। उनको रक्षा सुरक्षा से कर ली जाती रही होगी। प्रारम्भ में ये पुर मिठी के बनाये जाते रहे होंगे।^२

उक्त दुर्ग या यह वास्तों के अन्दर होते होंगे या उनके पास ही। पुरों के अन्दर किसी प्रकार की वस्ती का ढीक पता नहीं चलता। पुर यदि परवर्ती दुर्ग के रूप में प्रयुक्त होते तो उनके बारों और रक्षा-प्राचीर का निर्माण भी किया जाता रहा होगा। इन पुरों का निर्माण बाड़ तका बाहरी आकर्मणों से रक्षा के निर्माण भी होता था। पुरों के लिए एक स्थान पर विशेषण के रूप में 'भारदी' शब्द का प्रयोग होता है। 'भारदी' उन्हें इसी निए कहा गया होगा कि गरद शहर में बाहरी आकर्मणों से पुर की रक्षा देतु इनका विशेष रूप में उपयोग होता था।

ऋग्वेद में दीवारों वाले पुरों के उल्लेख मिलते हैं।^३ कुछ पुर बाकार में बड़े होते होंगे। एक पुर का उल्लेख करते हुए ऋग्वेद में उसे जीड़ा या विस्तृत कहा गया है। पश्चर के बने पुरों (आकर्मणीय पुर) का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है। कुछ में धातु का भी प्रयोग होता था। चतोरिसात, सिव्य तथा चालाक में हड्डियाँ-नूंद तथा हड्डियाँ-युगीन कई इनारते मिलती हैं, जिनमें पश्चर के प्रयोग का स्पष्ट पता चला है। एक स्थान पर पश्चों से घृता (गोभरी) पुर का भी उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चों के समूह को एक स्थान पर बांधने की व्यवस्था भी इन पुरों के भीतर थी।

मैकाडमिन तथा कीष का यह विचार है कि वैदिक पुर युक्ततः वासु आकर्मणों से रक्षा के साधन थे। वे यादि तथा 'मंडु' आदि से सुरक्षित और कही मिठी के प्राचीरों से युक्त होते थे।^४

भारत में अनेक प्राचीन नवर-स्थलों पर किये गये उल्लेखों से नगरों की रक्षा-रीकारे प्रकार में आयी है। मध्य प्रदेश के सामर जिले में एसण नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल की खुदाई में लगभग ५०० पूर्व १८०० में वही प्राकारयुक्त नगर बसने का प्रमाण मिला है। ताजाभ्यमयूगीन यह बस्ती एरज में ५० पूर्व ७०० तक कार्यम रही। नगर को

१. वैदिक इष्टोक्त, विलब १, पृष्ठ ५३८।

२. वि वैदिक एज, पृष्ठ ३८८।

३. ऋग्वेद, १.१६६.८; ७.१५.१४।

४. दै० वैदिक इष्टोक्त, विलब १, पृष्ठ ५३८-३९।

तोन और से भेजती हुई रक्षा-दीवार काली-नीली सस्ता मिट्टी की बनायी गयी थी। चौपी और बीमा नदी रक्षा-पर्सित का काम देती थी। प्राचीनतम् रक्षा-दीवार लगभग ३० मीटर लंबी थी, बाव में उसकी लंबाई ४५-४७ मीटर हो गयी। दीवार की लंबाई ६.५१ मीटर पायी गयी। इस दीवार से १६.४३ मीटर की दूरी पर परिवार या शाही थी, जिसमें बीमा नदी का जल भरा रहता था। इस शाही की लंबाई ३६.६० मीटर तथा गहराई ५.५८ मीटर थी।^१

महाराष्ट्र के दैमावाद नामक स्थान के उत्खनन में भी नगर-प्राकार मिलता है, जिसका निर्माण शृण के प्राकार के कुछ समय बाद हुआ।

मध्य प्रदेश के बरगोन जिला में १२५२ से १२५३ तक उत्खनन कराये गये। इन उत्खननों में जो सबसे महत्वपूर्ण बात जात हुई वह है तो आपसमें भी सम्भाला की जानकारी। यह सम्भाला वही नर्मदा के दोनों तटों पर लगभग ईसवी पूर्व १५०० से ईसवी पूर्व १००० तक विकसित होती रही। इस सम्भाला के लोग आपहीनुमा मिट्टी के घरों में रहते थे। ये घर आकार में छोड़ोर, गोल या आपताकार होते थे। उनकी छते सपाठ होती थीं। दीवारें तथा छतों वाले मिली हुई कही मिट्टी की बनायी जाती थीं। छतों की रोक के लिए बासों का प्रयोग होता था। दीवारों को सफेद मिट्टी या चूने से पोत दिया जाता था। कहाँ के बनाने में चूना और पीली या काली मिट्टी का इस्तेमाल किया जाता था। घरों के चूल्हों पर भी चूने का पलस्तर होता था।

पिछले एकीज वर्षों में कालीनगम और अहाड़ (राजस्थान), कल्प (पश्चात्), चुंडीम (काशीर), चिराद (विहार), कायवा (मध्य प्रदेश), लोधल (मुजरात), नेवासा (महाराष्ट्र), महिषदल (पूर्व बंगल), उत्तनूर (आनधि प्रदेश) तथा लंगनकल्यां एवं तकल्लकोटा (मेघर) आदि स्थलों पर जो उत्खनन हुए हैं उनमें आशेतिहासिक स्थापत्य पर प्रकाश भड़ा है।

मुह—ऋग्वेद में 'मृह' शब्द निवास जन्मया घर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।^२ ऋग्वेद तथा बाह्यण-ग्रन्थों में भी इसी अर्थ में यह शब्द गिलता है।^३ 'दम' 'पस्त्या' तथा 'हम्म' शब्दों का भी प्रयोग घर तथा उसमें सम्बन्धित पारिवारिक सम्पत्ति के अर्थ में हुआ है।

१. शृण-उत्खनन के संबंध में विस्तार के लिए दें १० कृष्णदत्त बालपेती, सागर चू. वि. एजेज, पृ० २६-३१

२. ऋग्वेद, ३,५३,६; ४,४८,६; ८,१०,१ आदि।

३. अथर्ववेद, ७,८३,१; १०,६,४; ऐतरेय बाह्यण, ८, २१ आदि।

वैदिककालीन कुछ मूरों में अनेक कामरे होते थे। घरों की सुरक्षा हेतु बन्द भी किया जा सकता था।^१ घरों को स्वच्छ-सुन्दर बनाने का विचार वैदिक आल से मिलता है। अथर्ववेद में एक स्थान पर गृह की उपमा अनेकत हृषिनी से दी गयी है।^२ हृषिनी की पीठ की तरह वैदिक घरों की छतें होलाकार होती थीं। घरों की बाहरी तथा भीतरी दीवारों पर विविध प्रकार के आकर्षक चित्र बनाये जाते थे। सुन्दर घर की तुलना मुसान्नित वधु से की गयी है।^३ पर को पवित्रता, समृद्धि, सौन्दर्य तथा आनन्द का सेन्द्र माना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में पर के विभिन्न कार्यों का रोचक वर्णन मिलता है।^४

ऋग्वेद में निवास-स्थानों तथा उनके विविध उपांगों के लिए भगवत्तमीस शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'शरदी' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है, जिसका तात्पर्य सम्मवतः सकान की छत से था। 'दुरोण' तथा 'दुर्यनु' शब्दों से ज्ञात होता है कि वैदिक मूरों में ढार होते थे। कई स्थानों पर मूरों के लिए 'पृष्ठ', 'साम्याप्त', 'माहो', 'वृहत्', 'क्षर', 'वीर्य', 'मधीर'-जैसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है, जिससे कुछ उड़े आकार वाले मूरों का ज्ञात होता है। वर्णन के मूह को अस्यन्ता विस्तृत एवं सहस्र द्वारों वाला (सहस्र-द्वारम्, छ० ३,८८,५) कहा गया है। एक अस्य स्थान पर मित्र एवं वरण के गृह को दृक् (ध्रुव) एवं सहस्र स्तम्भों वाला ('सहस्रस्मृत') कहा गया है। भाज-गृह की तुलना तालाब से की गयी है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर पर्वत की स्तुति करते हुए उसमें 'शरण' एवं 'जामे' प्रवान करते की प्रारंभिक की गयी है। 'जामे' के लिए 'विद्यातु' विशेषण का प्रयोग किया गया है। साम्यण के अनुसार 'जामे' का अर्थ 'गृह' अथवा 'प्रसभता' है। 'विद्यातु' का अर्थ 'तीन मवितों वाला' अथवा 'मानव गरीब के तीन तर्द्ध' है। एक अन्य स्थान पर साम्यण ने 'विद्यातु' का तात्पर्य 'तीन स्थानों पर निवास' बताया है।^५

वैदिककालीन कुछ भवन इनमें बड़े होते थे कि उनमें बड़े संग्रहत परिवार के लोग रह सकते थे। कुछ भवान कई तरफों के होते थे। मुख्य भवन से जुड़ा वा उसके नामीण पशुओं के लिए बाहा (मोऽऽ) होता था। कभी-कभी पर के लोडे अधिन में निजी पशुओं

१. ऋग्वेद, ३,८५,६।

२. अथर्व०, ८,३,१७।

३. अथर्व०, ८,३,२४।

४. शतपथ०, ३,५,१,१।

५. देव भट्टाचार्य, बहो, पृष्ठ १०-११।

का स्वान होता था। यह का एक भाग जिम (गाइफरय) के लिए मुरदित रखा जाता था। तीतरीय आरथक में 'प्रनश्चानी' शब्द भिजता है।^१ यह एक किंगोप्रकार का काम रहता होगा जिसका उपयोग 'कोपामार' के काम में होता होगा। अर्थवेद में 'पत्नीता सदन' का उल्लेख है, जिसमें गृहों में स्त्रियों के विशेष कल का बोध होता है।^२

वैदिककालीन गृहों के निर्माण में किस पदार्थों का प्रयोग होता था, इस विषय में वैदिक भास्तुत्य में मनोरंजक उल्लेख थाप्ता हीते हैं। आव: मिट्टी, पत्ताएँ, लकड़ी तथा बांसों का प्रयोग गृह-निर्माण में होता था। वरों की नोबे बहुत दृढ़ ('ध्रुव') बनायी जाती थी। दीवारों के ऊपर पहले कोरे बांस जड़े-तिरछे बिछा दिये जाते थे। उनके ऊपर भीर हुए बांसों को रखा जाता था। फिर मजबूत रस्सियों से बै कस दिये जाते थे, जिससे छत पर की बिछावन हिले-झुले नहीं। बांसों की यह बिछावन 'आपाम' कहनाती थी। उसपर तृण तथा फलों की तहे बिछायी जाती थी। इन तहों को 'बहण' कहते थे। इस बिछावन के ऊपर बांस की खपच्छियों की तह लगायी जाती थी। उसे भी मजबूती से बचते थे। इस प्रकार छत तैयार हो जाती थी। भरपत, बांस आदि की पत्ताकार से छाये गये यह भर भाज तक भारत के विभिन्न भागों में बनते हैं।

ऋग्वेद में त्वक्षटा तथा उभु को कुराल कारीगर बताया गया है। उन्होंने इन्द्र के लिए कई वस्तुओं का निर्माण किया। इनमें तीण वय भी था।^३ वैदिक 'तज्ज' शब्द से 'तज्जक' बना। इस शब्द का प्रयोग ऐसे अचित के लिए किया गया जो लकड़ी, पत्तर या टेंटों को भवन-निर्माण हेतु मोटे या पतले आकार में काटता था। वैदिक मृग में और उसके बाद लकड़ी ही प्राप्त, भवन-निर्माण-कार्य के लिए प्रयुक्त होती थी, परंतु अन्य पदार्थों का प्रयोग भी कुछ सीमा तक होता था।^४

पर्सी वादन ने वैदिक गृहों की अनुमानित लंबरेखा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार प्रारम्भिक अवस्था में वैदिक गृह शीघ्रहियों या पांचशालाओं के लग में थे। ये शीघ्रहियों विभिन्न आकृतियों की होती रही हैंगी। जारम्भ में मानव की सचि योत आकार की ओर अधिक थी, अतः वादन के अनुसार वैदिक शीघ्रहियों का आकार भी योत रहा होगा।

१. तीतरीय आरथक, १०,६७।

२. तारापद भट्टाचार्य 'ए हठों जान वास्तु विद्या', पृष्ठ १३-१४।

३. अर्थवेद, १,३२,२।

४. वैदिक एत, पृष्ठ ४६२।

वैदिक शोपहियों मधु-मक्षियों के छतों-बेसों थीं। उनकी दीवारें भीज थीं, जिनका निर्माण बासों की लकड़ी की दहनियों से बांधकर किया जाता था। इन गोल दीवारों के ऊपर पस्तों की सहायता से मूस्वदाकार छत बनायी जाती थी अथवा उनके ऊपर खास का छप्पर बनाया जाता था। बारावर की पहाड़ी से मूस्वामा नामक गृह इस प्रकार की शोपहियों का सुन्दर नमूना है। उसमें बासों की शोपही के स्वरूप की पत्थर पर ज्वों का त्वय बनाने का प्रयत्न किया गया है। बाद में जब इस प्रकार की शोपहियों का स्वरूप विकसित हुआ तो उन्हें गोल त बनाकर अण्डाकार बनाया जाने लगा। अब उनके ऊपर मुड़े बासों की ढालकर ढोखाकार छप्पर बनाने लगे। इसके बाद जो स्थिति आयी उसमें गीन-नार शोपहियों को पास-पास बनाकर उनके बीच एक अंगन-नार निकाला जाने लगा। उनकी छत कमशः लकड़ी के तख्तों या खपरेलों की बनायी जाने लगी। गृहों का निर्माण सुन्दर होने लगा। घरों की दीवारें भाव: कल्पी इटों की बनायी जाती थीं। उसमें चौकोट दरवाजे भी बनाये जाने लगे और दो किलाड़ी के लगाने का भी प्रचलन हुआ। दोल के आकार की छतों से ही आगे चलकर 'अख-नार' आकार बाले चाप का विकास हुआ।^१

पर्मी बाउन का यह विचार युक्तिसंगत है कि भारतीय स्थापत्य वैदिक धर्म से विभिन्न चरणों से गुजरते हुए विकसित हो रहा था। वस्तुतः वास्तु-तकनीक का जो सूर हमें उत्तर-वैदिक धर्म में मिलता है उसमें परवती भारतीय स्थापत्य को बहुत प्रभावित किया।

वैदिका तथा तोरण—मींव, जुग तथा शक-नातवाहनों के जासन में स्तूप के चारों ओर बेष्टी या वैदिका का निर्माण किया जाने लगा, जिसके प्रवेश-न्द्वारों पर अलंकृत तोरण-द्वार बनाये जाते थे। भारतीय वास्तु के इस तत्त्व का खोल हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। वैदिक काल में भवनों, पवित्र स्थलों, कुहों आदि की रक्खा-हेतु उन्हें जारों ओर से बेष्टित कर देते थे। इसके लिए लकड़ी के मीठे इटों (धर्म) की भूमि पर गाह देते थे। फिर लकड़ी या बास की उसमें जाहा बांधकर खेरा या बाड़ बना देते थे। यही बाड़, बेष्टी या वैदिका कहलायी। बाड़ में प्रेषण के लिए अधिक द्वार बनाये जाते थे। इसके लिए आरम्भ में दो बड़े-बड़े बासों को कुछ अन्तर से जमीन में गाह दिया जाता था। उनके ऊपर द्वार का रूप देने के लिए, एक या अधिक बास आड़े बीधि दिये जाते थे। इस प्रकार के द्वार ने हो बाद में अलंकृत तोरणों के स्वरूप-निर्धारण में मोग दिया।

१. दै० पस्तो बाउन, इंडियन आर्कोटेक्नर (युथिस्ट एंड शिल्प), पृ० ३-४।

यूप—वैदिक साहित्य में 'स्तम्भ' (स्तम्भ) तथा 'यूप' शब्द यमों के लिए मिलते हैं। अहंकार में इन्होंने सर्वोभ्युप स्तम्भ बाला देव बहा माया है।^१ यूप का विशेष धार्मिक महत्व पाया। यूप को भूमि पर वडा करने के पूर्व उसकी स्तुति में कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जाता था। इन मन्त्रों से यूप के आकार आदि के विषय में कुछ बातें जात होती हैं। उसकी 'उन्नत्यति' से इस बात को व्योमित करती है कि यूप-निर्माण हेतु नक्षी किसी पेड़ से भी जाती थी। यूप की स्वागता बन्नी को बेदी (चिति) के पूर्व की ओर की जाती थी। आद्यात्मन्त्रों में यूपों की ऊँचाई आदि के विषय में भी उल्लेख मिलते हैं, जिससे जात होता है कि यूपों की ताप आदि के सम्बन्ध में निर्धारित नियमों का विधिवत् गालन किया जाता था। एक से अधिक यूप को पंकितबद्ध स्थापित किया जाता था। यूप के ऊपर पृथ्वी-मालाएँ टौरी जाती थीं। निचले भाग में नक्षी के छोले हुए, छोटे-छोटे टुकड़ों की रसी से बैठव दिया जाता था। यूप के शीर्ष ('छापाल') को कुछ वक्त रखते थे। इस 'छापाल' से परवतीं पाण्डाण-यूपों का स्वरूप निर्धारित हुआ। लाद्यात्मन्त्रों में आठ पहले बाले यूपों के उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं यूपों से बाद में आठ किनारी बाले तथा अन्य प्रकार के प्रस्तर-स्तम्भों का विकास हुआ। मधुरा नगर के सामने यमुना तट पर स्थित ईसापुर नामक गांव से पत्तर के दो विशाल यूप-स्तम्भ मिले थे, जो अठगहल हैं। उनमें से एक पर कुण्डा-शासक वासिङ्क के समय का बाहुदी लेख उल्लिखित है। इस लेख से पता चलता है कि शक-सं २० = (१०५ ई०) में, उक्त स्थल पर 'डादवारात्र' नामक वैदिक यज्ञ किया गया था।^२ अहंकार तथा परवर्ती वैदिक साहित्य में यूप के विशेष प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। ऐसे यूपों में उन यमों को बौधा जाता था जिनको यज्ञ में बल दी जाती थी।^३

वैदिक यूपों की परम्परा एक दीर्घकाल तक मिलती है। यूप-काल तथा उसके पहले के अनेक यूप भारत के विभिन्न धरानों (मधुरा, नावसा, कोटा, बड़वा आदि) से निले हैं। इनमें से कुछ पर उल्लिखित लेखों से पता चलता है कि वैदिक यज्ञ सम्बन्धी समय तक जारी रहे। जयोत्स्ना, कौलाम्बी आदि के बहुसंख्यक जनपदीय मिक्कों तथा समुद्रगृज और कुमारगृह प्रथम के सिक्कों पर भी यूप के चंकन मिलते हैं।

१. अहंकार, १०, ११, १५।

२. आरक्षोलालविकल सर्वे रिपोर्ट्स १८०६-७, पृष्ठ ११२ तथा आमे; बाजपेयी, ब्रज का इतिहास, आग २, पृष्ठ २६।

३. वैदिक इष्टोपत्त विलद २, पृष्ठ १८४।

हुण-वर्तुवेद में यूप से सम्बन्धित अनेक घटनाएँ हैं। एक घटना (६.३.४) में कहा गया है कि यूप का "जो भाग भूमि के अन्दर गड़ा होता है वह पितरों का होता है। भूमि के ऊपर मेघला तक का भाग मनुष्यों का, मेघला बाला भाग पौधों का, मेघला के ऊपर एवं गीर्ध के नीचे का भाग तभी देवताओं का होता है, जोपै इन्द्र का होता है, तथा यौप साथ्यों का होता है।" इस प्रकार की मान्यता ने स्तम्भों पर पितरों, मनुष्यों, पौधों, देवताओं आदि के चिह्नों या प्रतीकों को उत्कीर्ण करने की प्रथा को बन्द दिया होगा। विभिन्न प्राचीन स्मृतों से प्राप्त वहुसंख्यक स्तम्भों पर विविध प्रतीक उत्कीर्ण मिलते हैं।

वेदी—वर्षायेद में एक घटना (१०.११४.३) में वेदी का जो विवरण दिया हुआ है उससे जात होता है कि वेदी बर्गाकार बनायी जाती थी। इस घटना में प्रयुक्त 'सुपर्ण' शब्द वैदिक तथा परबर्ती धर्मों में प्रचलित इस प्रका की ओर संकेत करता है कि प्रशस्त वेदी शहद के आकार की ('ऐनलिटि') होनी चाहिए।

शतपथ वाह्याण (१.२.५) में वेदी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसे पूर्व की ओर तीन बालिङ्गत सम्बी बनाना चाहिए। पञ्चम की ओर उसकी चौड़ाई अधिक तथा बीच में उसका आकार संकरा होना चाहिए। इसका कारण बताये हुए कहा है कि ऐसे आकार बाली स्त्री प्रसंसनीय होती है।

चिति—चिति से अभिप्राप उन वैदिकों से है जिसमें अग्नि प्रज्ञवनित रखी जाती थी। शतपथ वाह्याण (८.१) में एक चिति का वर्णन है, जिसका निर्माण इंटों से किया गया था। चिति के निर्माण में गहने कच्ची इंटे प्रयोग में लायी जाती थीं। धोरे-धीरे इंटों के पकाने का ज्ञान हुआ होगा।

उमसान—वैदिक साहित्य में उमसान के उल्लेख मिलते हैं।^१ अथर्ववेद में यह शब्द कई स्थानों पर आमा है।^२ उमसान उस समाधि का दोलक या जिसके तीव्र मृत अवस्थयों की जस्तियों को रखा जाता था। शतपथ वाह्याण (१३.८.१.१) में इस शब्द का प्रयोग 'शवान्न' (शब का भोजन) अथवा 'उमसान्न' (पितरों का भोजन) के हेतु किया गया है। यात्मा ने 'निकात' (३.४) में इस शब्द का अर्थ 'शब-उमसान' (मृत का विचामन्पत्र) बताया है। वैदिक भूतानुसार इसका तात्पर्य 'अपमन्-उमसान' (पत्थर का बना विचाम-स्वल) है।^३ यह निर्विचल रूप से नहीं कहा जा सकता कि अपमन् में 'उमसान' के निर्माण

१. मैकाइल तथा कौव, वैदिक इष्टोवस्त, विल्ड २, पृ० ३२७।

२. अथर्ववेद, २.११.१७; ८.३३.६; १०.२३.१ आदि।

३. देविए, लेनीमाधव वरदा, भरहत, विल्ड ३, पृ० १६ तथा आगे।

में पत्तर का प्रयोग किया जाता था गा नहीं। भारत के अनेक स्थानों में जो महाश्म-चितियाँ (भेदालिष) मिली हैं उन्हें इमानान का ही रूप कहा जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण में इमानान निर्माण-सम्बन्धी कुछ नियम दिये हैं।^१ इमानान का निर्माण बस्तुतः मृत व्यक्ति हेतु आनिस्थल की रचना या स्थारक बनाना होता था। इसके लिए ऐसे स्थान को चुना जाता था जो मृत्यु और जान्म हो तथा बस्ती में दूर हो। जल्दी पर या ऐसे स्थानों पर जो पाम या बस्ती के अस्थन्त निकट होते, ऐसा निर्माण उपयुक्त नहीं समझा जाता था। स्थल को मिट्टी के बारे में कहा है कि वह ऐसी होती चाहिए जिसमें पाम-यींडे आदि उगते हों। पास में अस्थर्व या न्यायोध का बृक्ष होना प्रशंसन्मानन्द माना जाता था। इमानान को ठीक उत्तर-दक्षिण या पूर्व-दक्षिण अभिमुख से रखकर उसे विभिन्न दिशाओं के नामों में रखा जाता था। प्राप्ति सिर की ओर के नाम को दक्षिण-पूर्व की ओर रखा जाता था।^२

अभिनवित् (बेदी-निर्माण) इमानान का आकार अभिन की विच्छा-जैसी आकृति बनाता रहता था। उसको सम्भार्द्ध-बीड़ाई मृत व्यक्ति के आकार से कुछ ही बड़ी होती थी। जब अथवा अभिनयों को समाधिस्थ करने के लिए जो गद्दा चीदा जाता था उसकी महार्द्ध नमधग उत्तरी ही रखी जाती थी जिसने कि उसके ऊपर बनने वाले टीले की ढाँचाई निर्वारित होती थी। कालान्तर में विभिन्न रूपों के नामों के लिए विभिन्न प्रकार की ढाँचाइयाँ विहित भानी गयीं।

इमानान-निर्माण करने समय गहरे मृत व्यक्ति की अस्थियों को सरीर-रक्षा के अनुसार वयस्त्वान रखा जाता था। किर अस्थियों के ऊपर तेरह ईंट रखी जाती थीं। उनमें से एक ईंट बीच मे रखी जाती, गोप ईंटों को जारी और तीन-तीन के बगे में मिलाकर रखा जाता था। किर ऊपर मिट्टी का तुदा या ठीक्का बना दिया जाता था। उस पर यव के दाने जो दिये जाते थे, या दुर्बालगा दी जाती थी। इसी तूदे का परिचित रूप गरवती बोड़ एवं जैत स्तुपों में देखने को मिलता है।

१. शतपथ ब्राह्मण, १३.८, १-४।

२. बहुआ, बहो, जिल्ड ३, पृष्ठ १७।

प्राक्-सौर्य तथा सौर्यकाल

महात्मा बुद्ध तथा तीव्रकर महानीर के प्रादुर्भाव से भारतीय इतिहास में एक नये युग का आरम्भ होता है। इमें और दर्शन के द्वेष में ही नहीं, लखित कलाओं तथा लोककलावन में भी अब परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ने लगते हैं। इ० पू० छठों सती में साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक दोनों प्रकार के इतिहास-साधन अधिक परिमाण में उपलब्ध होने लगते हैं। मीमण्डु में हम और अधिक स्थिर भूमि पर आ जाते हैं। इन सबके आधार पर विवेच्य युग के स्थापन को समझने में पूर्ववर्ती पृष्ठों की अपेक्षा मुश्किला प्राप्त होती है।

साहित्यिक साधनों में शालिनि की अष्टाव्यायी, वाल्मीकीय ग्रनायण, महाभास्त, बौद्ध जातक तथा अर्थोन्नत विशेष महत्वपूर्ण हैं। पुरातात्त्विक साधनों में राजगृह, लोटिया-नन्दनगढ़ आदि के प्राचीन स्मारकों, कुमरहार, वैशाली, भावती, कोणार्की आदि के उत्थननों से प्राप्त अवशेष, तथा सआट् अग्रोक डारा बनवाये गये स्तम्भ, स्तुप एवं गुफाएँ उल्लेखनीय हैं। मेघस्थनीज तथा कुछ यूनानी याकियों के विवरण भी रोचक सामग्री प्रदान करते हैं।

इस युग के स्थापन का भूलक्षण इसलिए विशेष है कि अब इमारतों के निर्माण में पत्थर और इंट का प्रयोग अधिक होने लगा। सैन्धव युग में उनका उपयोग सीमित कृषि में होता था। वैदिक युग में, जैसा निचले अध्याय में हम देख सकते हैं, इमारतों के निर्माण में प्राम-लकड़ी या बीतों का प्रयोग होता था। विवेच्यकाल में यथापि इमारतों के लिए लकड़ी प्रयुक्त होती रही, किन्तु उसके साथ उन्हें स्थायित्व प्रदान करने के लिए पत्थर और इंट का भी इस्तेमाल होने लगा। राजगृह की विशाल रक्षा-प्राचीरों का निर्माण बड़े-बड़े पत्थरों से किया गया। हाल में कोणार्की के उत्थनन से भी मीमण्डु के पूर्व की रक्षा-दोकार के बंग निकले हैं, जो गड़े हुए पत्थरों के बने हैं। सआट् अग्रोक के प्रस्तर-नलम्ब अपनी उत्कृष्ट कला के कारण विक्षण हैं।

इस युग में बोड एवं जैन धर्मों के विकास के साथ-साथ वास्तु कला का भी विकास हुआ। मीर्य-सच्चाट अशोक ने जब बोड धर्म को अपमानकर उसके व्यापक प्रसार के प्रतिक्रिये तब स्थापत्य और मृत्तिकला की उभयति दृढ़प्रति से हुई। इस प्रकार स्थापत्य के विकास में धर्म का योग विशेष रूप में इस युग में प्राक्-मीर्य हुआ, जो परकर्त्ता युगों में भी जारी रहा।

अष्टव्यायन की मुविद्धा के लिए प्राक्-मीर्य कालीन तथा मीर्यकालीन स्थापत्य का विवरण यही क्रमज्ञ प्रस्तुत किया जायगा।

प्राक्-मीर्यकालीन वास्तु

(ई० ५० ५००—ई० ५० ३०५)

प्राक्-मीर्य कला के अनेक अवधीय विभिन्न स्थानों पर मिले हैं। साथ ही अनेक प्रन्थों से इस युग के स्थापत्य के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। इन प्रन्थों के बुद्ध समर्पण का संक्षिप्त उल्लेख यही किया जाता है:

अष्टाव्यायो—प्रसिद्ध व्याकरण-प्रन्थ 'अष्टाव्यायी' की रचना पाणिनि द्वारा ई० ५० वर्ष पूर्वी जाती में की गयी। इस प्रन्थ में कापिकी, तात्त्विकी, हानिनपुर, माकाय्य, कार्पिल्य आदि कई प्रमुख नामों का उल्लेख मिलता है।^१ प्रतीत होता है कि पाणिनि के समय तक वास्तु-विद्या तथा नगर-कोङ्कन में पर्याप्त प्रभाव हो चुकी थी। नगर के निर्माण के पूर्व जिस-जिस स्थानों पर बाई (परिवार), रक्षा-प्राचीर, डार या राजप्रासाद बनाने होते थे उन-उन स्थानों पर चिह्न नगर लिये जाते थे। इनका निर्माण पराक्रम किया जाता था।

'अष्टाव्यायी' में 'प्राकार' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। किन्तु कालव्यायन में 'प्राकारीय देश' (वह भूमि जिस पर प्राकार का निर्माण किया जाय) तथा 'प्राकारीय इष्टका' (प्राकार-निर्माण में प्रयुक्त इट) — ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। पाणिनि में 'देशपथ' शब्द का प्रयोग किया है। 'अष्टाव्याय' के तुलनात्मक अष्टव्यायन से जात होता है कि देशपथ उस प्रशस्त ऊने मार्गों को कहते हैं, जो रक्षा-प्राचीर के ऊपर कंगरों के पीछे निर्मित किया जाता था।^२

१. वासुदेवव्याकरण अप्रवास, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, ५०-५५।

२. वही, ५० १४४-४५।

रक्षा-प्राचीरों के बीच में द्वार भी होते थे। पाणिनि ने इनके नामकरण के विषय में इस प्रकार लिखा है : "अभिनिष्ठाभिति द्वारम्" (अष्टा० ४,३,२६)। जबकि द्वार का नामकरण उस नगर के नाम पर होता जाहिए जिसकी ओर वह खड़ता हो। उदाहरणार्थ, 'मायूर काम्यकुब्जद्वारम्'; यह नाम काम्यकुब्ज नगर के उस द्वार को दिया जाना जाहिए जो मधुरा नगर की ओर अधिमूल हो।^१ यह परम्परा भारत में अठारहवीं शती तक जारी रही।

रक्षा-प्राचीरों, नगर-द्वारों तथा बड़े प्राचारों के अतिरिक्त नगर में अन्य कई प्रकार की इमारतें भी होती थीं। उनमें से कुछ का जान पाणिनि द्वारा प्राप्त 'कोष्ठामार', 'भण्डामार' (४,४,३०), 'राजनसभा', 'आपण' (३,३,११६) — ऐसे नामों से होता है। सड़कों के लिए पाणिनि ने 'संचर' (३,३,११६) शब्द का प्रयोग किया है।

पासों के गृह (कुटीर) लकड़ी के बड़ों तथा घरों-कुम्ह ('आदिगेम तुण'-५,१,१३) से बनाये जाते थे।

रामायण— बालभीकीय रामायण के मूल्य भाग का रखना-नाल १० तुर्जे ५०० के नगरभय माना जाता है। इस यन्त्र के कुछ अन्य इस काल के बहुत बाद में जोड़े गये। इस यन्त्र में 'स्वरपति', 'कर्षकि', 'तक्षक', 'सुवधार' आदि शब्द मिलते हैं। भारतीय वास्तुशास्त्रों में इन शब्दों का प्रयोग विभिन्न कोटियों के कारीगरों के लिए किया गया है। रामायण में 'अनेक भूमि' (५,३३) 'सत्पभूमि' (५,२,४६) प्रभूति शब्दों से अनेक मत्रिल वाले भवनों का पता चलता है। भवनों को उनकी विशेषताओं के आधार पर चित्र-भित्र कोटियों के अन्तर्गत रखा जाता था, यथा—जु़गाला, पथ, स्वर्णितक, कर्षेमान आदि। इसी प्रकार 'प्रासाद', 'विमान', 'हर्म्य', 'सौव' आदि शब्दों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के रामप्राचारों के लिए हुआ है।

बालभीकि रामायण में हमें चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख मिलता है: (१) तारेय (नवी दुर्ग), (२) पार्वता (मिरि दुर्ग), (३) बन्ना (बन दुर्ग), तथा (४) कुतिम (मानव निर्मित दुर्ग)।^२ अयोध्या, किष्किन्धा, लक्ष्मा-जैसे नगरों के बर्णनों से पहली भी स्पष्ट हो जाता है कि नगरों दुर्गों तथा अन्तःपुरों की रक्षा हेतु दृढ़ रक्षा-प्राचीरों का निर्माण किया जाता था। उनके चारों ओर गहरी खाइयाँ खोदी जाती थीं। लक्ष्मों के चारों

१. वही, पृ० १४५।

२. रामायण, ६, ३।

ओर द्वार (गोपुर) बनाये जाते थे। रथा-प्रासादों के ऊपर कुजे (बट्टालक) बनते थे। उनके ऊपर से ग़लूओं की गतिविधियों का निरीक्षण किया जा सकता था।^१

राज-प्रासादों की सघसे ऊपर की मविल पर विश्वरो, भगों एवं चन्द्रमालाओं का निरीक्षण किया जाता था। प्रासादों में ग़रोवे तथा विश्वकिंशु हृती थीं। कुछ विश्वकिंशों में सोने की जालियाँ (हेम-जाल) लगायी जाती थीं। प्रासादों को असंकृत करने के लिए उनमें बाहर की ओर विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ उकेरी जाती थीं। रथण का राज-प्रासाद विश्वियों, सर्पों, भज्वों आदि की रस्तजटित प्रतिमाओं से असंकृत बना रखा है।^२

साधारण भवनों तथा प्रासादों के अतिरिक्त रथावण में 'बेदी', 'देवामरण', 'युद्ध' प्रभूति जब्दों का उल्लेख हुआ है। 'सभा' (प्रजासाक्षाता) का विवरण भी मिलता है। उनका सम्बन्ध विश्विष्ट तथा सामान्य जन, दोनों जगों के धार्मिक जीवन से था।

रथावण में कुहों एवं प्रासादों के वर्णन में कहीं-कहीं अतिशयोक्ति मिलती है। रस्तजटित विश्वकिंशों, चमकोली कलों तथा सोनेन्दी की दीवारों के विवरण अनेक सभनों पर मिलते हैं। इसमें यह कहना कठिन है कि निर्माण-कार्य के लिए जिस सामग्री का प्रयोग किया जाता था। सभा-भवनों तथा वेदिकाओं के निर्माण में इन्हों का प्रयोग होता था। कुछ भवन-पत्थर के बने (शिलाग्रह) होते थे।^३ सभाओं के निर्माण में भी पत्थर का इस्तेमाल होता था।^४

महाभारत—वर्तमान युग में उपलब्ध महाभारत को विद्वान् द्व० दूसरी जारी में पूर्ण हुआ मानते हैं। इसके कुछ भंगों को विवेच्य युग में रचित कहा जा सकता है। महाभारत के अनेक संवर्भों से आजीन भारतीय स्वास्थ्य पर प्रभृत प्रकाश पड़ता है। इस युग तक 'बास्तु विद्या' का पर्याप्त विकास हो चुका था।^५ विश्वकर्मा तथा यम के नामों का उल्लेख करमांदेकाराओं तथा दानवों के कुसान कारीगरों के बीच में मिलता है। इन्द्रप्रस्थ समर के सम्बन्ध में जो विस्तृत विवरण महाभारत में^६ मिलते हैं वे नगर-निर्माण योजनाएँ और जल्दा प्रकाश होती हैं।

१. तारापद भट्टाचार्य, वहो, पृष्ठ ३७-३८।

२. रथावण, ५, ७, १२ तथा १४।

३. वहो, ५, १४ तथा ४१।

४. वहो, ७, १६।

५. महाभारत, १, ५१, १५।

६. आविष्यक, १८८, २७-३१।

महाभारत में उल्लेख हुआ है : (१) धन्व दुर्ग, (२) नहि दुर्ग, (३) गिरि दुर्ग, (४) मानस्य दुर्ग, (५) मद् दुर्ग तथा (६) चन दुर्ग । इस प्रक्षेत्र में उपक दुर्ग का उल्लेख नहीं मिलता । दुर्गों की ही भाँति लक्षणों के आधार पर वर्णिकत विभिन्न प्रकार के गृहों के नाम हमें महाभारत में मिलते हैं ।

सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गों के चारों ओर रक्षा-भासीर (प्राकार) का निर्माण किया जाता था और दुर्ग तथा नगरों के चारों ओर महसी शाइर्य (पश्चिमा) बोटी जाती थी, जिनमें जल भर्यां रहता था । अतिरिक्त सुरक्षा की दृष्टि से इन बाइबों में जातक जल-जन्मुओं को भी रखा जाता था । एक नगर की चौड़ी लाई की तुलना सामर से की गयी है ।^१

पालि साहित्य—बीढ़ जातकों तथा अन्यों में स्वापत्य-विषयक रोचक विवरण मिलते हैं । 'दीप निकाय' प्रथम में २५ मुख्य शिल्पों की वर्णा है । ऐसी दूसरी शृंखली 'बहुजात मूल' में है, जिसमें एक विषय 'बत्यु-विज्ञा' (वास्तु-विज्ञा) दिया गया है । इस शास्त्र के अन्तर्गत 'वत्यु कम्म' (इमरांसों का निर्माण) तथा 'बत्यु-वरिकम्म' (मृतियों, चिकित्सा आदि के अन्तर्करण) चे । 'दीपनिकाय' के महासुदस्यन मूल में चक्रवर्ती गासक का भव्य प्रासाद वर्णित है, जो २४,००० स्तम्भों तथा अन्य अनेक उपांगों से सुसज्जित कहा गया है । इस प्रण के महापरिगिवाण मूल में पाठलिपुत्र नगर की निर्माण-योजना वर्णित है ।

महाउभ्यमन नामक जातक में गंगा-नट एवं नियमित राज-प्रासाद का रोचक विवरण उपलब्ध है । यह प्रासाद अत्यन्त विशाल या और इसके चारों ओर प्राकार तथा परिवा नियमित है । प्राकार की ऊँचाई २० फुट भी और उसके द्वार पञ्चद्वारा दिया है । गंगा-नटवर्ती इस नगर में २० महाद्वार और ५० छोटे डार थे । महाउभ्यमन नामक प्रासाद में कुशल चिकित्सा डारा विविध प्रकार की चिकित्सारी की गयी थी । इन चिकित्साओं में प्रतीकों के लघ में सूर्य, चन्द्र, सामर, हिमवत, महादीप, देवसामा आदि का चिकित्सा था । जातक-नगर के जनुशार पूरे नगर का निर्माण ३०० बहुइयों द्वारा किया गया था ।

जातकों में अन्य अनेक प्रासादों के उल्लेख है । उन्हें 'विमान', 'राजमन्त्र', 'वासधर' आदि भी कहा गया है, जिनमें स्तम्भ, कूटामार, किकिणी-जाल, घरज, उदान, पुण्डरिपी, मुघर्मो-सभा आदि थी । एक या अनेक मविल के होने के कारण प्रासादों की सजा एक-

भूमिक, द्विभूमिक, त्रिभूमिक आदि थीं। साधारणतया प्रासाद तीन मंजिलों वाले होते थे।^१

जातकों में बास और घास-कूस की बनी पलोगालाओं के उल्लेख आये हैं।^२ इन पलोगालाओं के रूप होने वाली, भरहत, मधुरा आदि की भूतिकला में देखने का मिलते हैं। जातक-खन्दों में ईटों और पत्थरों के बने हुए दृढ़ भवनों की भी चर्चा मिलती है।

जातकों में 'विष्वकुल' तथा 'वित्ति' शब्द भी मिलते हैं। ये शब्द मन्दिरों या पूजास्थलों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

विष्वेष्य काल में बड़ई का व्यवसाय बहुत उम्रत हो गया था। जातकों में बड़इयों के शर्वों के उल्लेख मिलते हैं। बड़ई कथाओं में बड़ई के द्वारा ही सम्पूर्ण मृह अथवा उत्तर अधिकाम के निर्माण की जचों हैं।^३ साधारण नामस्त्रियों तथा धामवासियों के मकानों में मिट्टी, लकड़ी और तुष्ण-पत्थरों का प्रयोग होता है। ईटों के बने भवनों के उल्लेख मिलते हैं। स्तम्भों के निर्माण में पत्थर का भी इस्तेमाल होता था।

स्मारक

प्राह्न-मीर्यकाल के कुछ स्मारक राजगिरि, लौरिया-नन्दनगढ़ आदि स्थानों में प्राप्त हुए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है।

राजगिरि : जावृनिक राजगिरि (जिला पटना) का प्राचीन नाम राजगृह था। प्राह्न-मीर्य काल में वहाँ मगध की राजधानी थी। यह नगर पौन पहाड़ियों के बीच में स्थित था। जैन बन्ध 'विकिष्ठ तीर्थोकल्प' में इन पहाड़ियों के नाम इस प्रकार दिये हैं: (१) विष्वकुल मिरि (उत्तर), (२) रत्नमिरि (पूर्व), (३) उदयमिरि (दक्षिण-पूर्व), (४) सोनमिरि (दक्षिण-विश्वामित्र) तथा (५) वैभारमिरि (पश्चिम)। इस प्रकार प्रकृति द्वारा यह चारों ओर से सुरक्षित था। वहाँ प्राकृतिक पहाड़ियों मही वी वहाँ बड़े-बड़े पत्थरों से मुद्रुक प्राचीर का निर्माण किया गया था। राजगृह की विभागकाम प्रस्तर प्राचीर प्रसिद्ध है। जिस बड़े-बड़े प्रस्तर-खण्डों से इसका निर्माण किया गया उनकी लम्बाई ३ फुट से ५ फुट तक है। उनके बीच-बीच में छोटे-छोटे पत्थरों को भी लगाया गया है। बुहाई में कहीं पर गारे का प्रयोग नहीं है। कुछ स्थानों पर दीवारों

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य—वामुदेवसारण-अध्यात्म, हिंडियन आर्ट, वृष्ट ४८-५५।

२. जातक, संक्षय ४८८।

३. वही, संक्षय ३१, १२१, ३६६, ४१८, ४६५, ४६६ आदि।

की छोड़वाई १२ कुड़ तक है। उनमें बीच-बीच में द्वार भी रहे होंगे। दो भग्नावणियाँ द्वार आज भी विद्यमान हैं।

बाहरी विस्तृत प्राकार के भीतर साइं चार मील की परिधि की एक अन्य बीचार भी थी। उसका निर्माण पुलिन मिट्ठी और इंटों से किया गया था।

वैभारगिरि के पूर्वी दाल पर पर्यटकों का एक आमताकार चक्रतरा है। उसके चारों ओर विभिन्न आकारों की बोठरियाँ बनी हुई हैं। यह स्थल 'जरामंड' की बैठक कहलाता है। जीनी वातियों के अनुसार यह 'पिण्डल-प्रस्तर गृह' था।

राजगृह का सबसे महत्वपूर्ण स्थल 'सप्तपाणी गृह' माना जाता है। अनुशूति के आधार पर प्रथम बौद्ध मठीति का आयोजन यहाँ किया गया था। कानिष्ठम ने वैभारगिरि को पूर्वी दाल पर स्थित बोल-भक्तार गृह को सप्तपाणी गृह माना है। बेस्तर इसकी स्थिति 'पिण्डल प्रस्तर गृह' से दधिण-मन्दिर की ओर लगभग एक मील की दूरी पर बहाते हैं। इसे स्थानीय लोग 'बैंधरिया-बैंधरिया' कहते हैं। सर जॉरेल स्टाइल वैभारगिरि पर स्थित अदिनाख के बैन मन्दिर के नीचे की ओर बनी गुफाओं को सप्तपाणी गृह का स्थल मानते हैं। सर जॉरेल मार्गन का मत है कि सप्तपाणी कोई गृह न थी, बल्कि वह एक बड़ा सभान-भवन था। वे उसकी स्थिति वैभारगिरि के उत्तरी पासवें में पिण्डल प्रस्तर गृह से लगभग छह मील दूर मानते हैं।

रत्नगिरि (आधुनिक छत्तगिरि) के दक्षिणी पासवें में भी दो गृहकारे हैं। वहाँ कई छोटे बौद्ध स्मारक हैं। यह महात्मा बूद्ध का प्रिय निवास था, जो 'गुद्गकूट' नाम से प्रसिद्ध था।

राजगृह में गरम पानी का जल लोत है उससे गुद्गकूट की ओर जाने पर बीच में जीवक का आम्रपल तथा मट्टकुचिक विहार के स्थल मिलते हैं। छत्तगिरि पर छहते समय इंटों के बने दो स्तूपों के जवाहेर भी मिलते हैं। शुएन-सांघ के अमुसार बब सम्भाह विश्वसार राजगृह में महात्मा बूद्ध से मिलने आये थे, तब वे वहाँ रख से नीचे उतरे वहाँ पहला स्तूप बनाया गया। दूसरा उस स्थान पर बनाया गया वहाँ सम्भाट ने अपने साथ आ रहे लोगों को बापस बाने का आदेश दिया था।

पाटी के लगभग मध्य में एक अन्य स्मारक है, जिसे 'मणियार मठ' कहते हैं। इसकी बीचारे पांच कुड़ मीली हैं। इसके आकार के कारण मालांग ने इसे एक विशाल लिप्तिमग कहा है। किन्तु ३० लांचों के अनुसार यह मणिनामग का स्मारक है। मणिनामग प्राचीन राजगृह का कुलदेवता था।

धारी के मध्य में राजमहल के भवनावशेष हैं। यहाँ वह स्थान बताया जाता है जहाँ विभिन्न साहब को अपने पूर्व वर्जायतशासु द्वारा बन्दी बनाकर रखा गया था।

राजगृह नगर में दोनों पावाण-प्राचीनों के भीतर जो इमारतें प्राचीन काल से बनायी गयी थीं उनमें से बहुसंघक लकड़ी की थीं, जो नष्ट हो गयीं। हाएँ-नांग द्वारा राजगृह के बिस अग्निकाण्ड का उल्लेख किया गया है उसके कारण राजगृह नगर की इमारतों को पद्धोन्नति पहुँची होगी।^१ बीद साहित्य में महाराष्ट्रियन्द नामक कुशल शिल्पी का उल्लेख मिलता है, जिसने इ० पूर्व पौलकी जाती में राजगृह आदि अनेक बड़े नगरों की निर्माण-योजना प्रस्तुत की। उस समय के भवन-निर्माण में लकड़ी का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता था। नगर-नोजना आयोजकार या नर्माणकार रूप में होती थी। नगर के लिए निर्धारित धोका को, समकोण पर एक-दूसरे को काटते हुए दो मुख्य मार्गों द्वारा, चार बाहरी भागों में विभक्त किया जाता था। प्रलोक भाग में वर्गानुसार भिन्न-भिन्न बकार के भवनों आदि का निर्माण किया जाता था।

लोरिया-नन्दनगढ़—यह स्थान विहार के चम्पारन जिले में है। यहाँ मिट्टी के अनेक प्राचीन टीले हैं, जिनका निर्माण समाधियों के रूप में किया गया था। इन टीलों को बीद स्तुपों का पूर्ववर्ती रूप कहा जा सकता है। पाटलिपुत्र से लुम्बिनी जाने वाले भाग पर स्थित होने के कारण लोरिया-नन्दनगढ़ का विशेष महत्व था।

इन टीलों की ऊंचाई १५ फुट से लेकर ५० फुट तक है। इनकी संख्या १५ है और ये पांच-पाँच की तीन पक्षियों में बनायी गये थे। इनकी दो पक्षियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर एक-दूसरे के समानान्तर पर हैं। तीसरी समकोण बनाती हुई पक्षि पूर्व की ओर स्थित है। पहली पक्षि के बीचे टीले के स्थान पर मिट्टी के पांच थूँहे पास-नास बने हैं।

उक्त टीलों का निर्माण पीली मिट्टी से किया गया। यह मिट्टी वहाँ से १० मील दूर बहने वाली गण्डक नदी से लायी गयी होगी। टीलों के पास ईंटों के बने किलों स्तरान्कों के अवशेष हैं। इनमें प्रयुक्त ईंट लम्बाई २०३२ इच लम्बी और ४ इच मोटी है।

१६०५ में दा० अलौदि से कई टीलों का उत्थनन कराया। उसके अन्दर से कोपला मिलित जली हुई मानव-अस्थियाँ मिलीं। स्थल के दो ओरे पत्तर भी मिले थे। उन पर खड़ी हुई मातृदेवी की आकृति बनी है।^२ कुछ टीलों (संख्या १२, १३) में जली हुई

१. बील-बुद्धिस्त रेकाहैंस आफ हिन्दूस्टने बत्ते, जिल्द २, पृष्ठ १६५।
 २. आक्षोलोविकल सर्वे आफ इविया एनुआत रिपोर्ट, १६०५-७, पृष्ठ १२२, चित्र संख्या ४।

मानव-अस्थियों के नीचे सीधे गड़े हुए काण्डदण्डों के अवशेष दिले, जो 'चैत्र-सूर्य' के कल्प में गढ़े गये थे। कुछ टीलों के अन्दर से मानव अस्थियाँ भी प्राप्त हुए।

कनिधर्म ने उस टीलों को विजियों के अन्दर-स्मारक माना था। ज्ञात्व का यह मत कि ये वैदिक समाधियाँ थीं, अधिक उपयुक्त प्रतीक होता है।^१

सूर्य का उद्भव—तीर्त्यिवा-स्वदग्निः के इन टीलों में परवर्ती बोड एवं जैन स्तूपों का आदि रूप देखने को मिलता है। सूर्य (पाति 'पूर्व') बस्तुतः चिता-स्वतः पर निर्मित टीला होता था, जो प्राचीन में मिट्टी का बनाया जाता था। 'सूर्य' की दूसरी संभा इसीलिए 'चैत्र' हुई। उस स्वतः पर पीपल का बूझ लगाने की परिपादी भी हो गयी। मिट्टी के उक्त टीलों के पास चैत्र-सूर्य बनाया जाता था, जो प्रायः नक्की का होता था। मिट्टी के टीले को धीरे-धीरे इटों या पत्तियों से आच्छादित किया जाने लगा। भरहुत, सौंधी आदि के स्तूप इस प्रकार के आच्छादनों के उदाहरण हैं। 'सूर्य' शब्द शहवेद में दो बार आया है।^२ एक स्थान पर उसका प्रयोग अग्निशिखा की गाठ के लिए हुआ है। दूसरे स्थान पर वारों और फैलते हुए बूझ के आकार में उसकी तुलना की गयी है।^३ उद्ध के पूर्व, वैदिक साहित्य के अनुसार 'सूर्य' शब्द जिसी महापुराण के स्मारक का बोतक था।

बोद्ध साहित्य में 'सूर्य' शब्द का प्रयोग मृत अस्थियों पर बनायी जाने वाली समाधि के लिए हुआ है, जिसका आकार और कटोरे-मुख टीले-जैसा हो। बाद में 'सूर्य' शब्द उस स्मारकों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा जो बूझ या उसके उपासकों को स्मृति या किसी घटना-विघ्नेष की स्मृति हेतु बना दिये जाते थे।

ब्रह्मेनक विद्वानों ने पूर्व या तुम्ब की स्तूप का प्राचीनतम स्वरूप माना है।^४ उसका आकार धूहों-जैसा होता था, जिसके अन्दर शब्दों की विना जलाये दफनाया जाता था। विकास की दूसरी अवस्था में स्तूप जलायार (ज्वलान) का स्वरूप बहण करता है। ज्वलान का प्रारंभिक आकार धूहों-जैसा हो था, किन्तु उसके अन्दर शब्द की जली हुई अस्थियों को विधिकृत भरेज कर रखा जाता था। तीसरी स्तरिति का विवरण 'प्राचबन्नायम गृह्यसूत्र' में मिलता है। उसके अनुसार शब्द को जलाने के बाद अस्थियों को एक पात्र में एकत्रित कर पात्र को अन्दर रखा जाता था। जीवी स्तरिति का उल्लेख 'महा-

१. आर्कोलांजिकल सर्वे जाक इण्डिया एन्ड्रेज रिपोर्ट, १९०६-७।

२. शृण० ३, २, १; १, २४, ७; देव० वैदिक इण्डोवेस, जिल्द २, पृष्ठ ४०३।

३. देव० वासुदेववारच अथवाल, इतिहास आद०, पृ० १२०।

४. देव० वस्त्रा, भरहुत, जिल्द ३, पृ० ११।

परिविवान तूत में मिलता है, जिसके अनुसार उल्लेख से यही ही अस्थियों में से कुछ को ही स्तूप में दफनाया जाता था, सबको नहीं। विकास की अवित्तम अवस्था में तूप के बल समाधि ही नहीं रह गया, बरन् वह एक स्मारक भी बन गया। विकास का यह इम मीर्यकाल तक पूर्ण हो गया।

लौरिया-नन्दनगढ़ के उक्त दीले स्तूप के विकास की तीव्री अवस्था को सूचित करते हैं। गृहगृहों के विवरणों में जात होता है कि प्राष्टीन काल में अस्त्रीय विद्या में मूलपत्रों चार बातें होती थीं : (१) जन्म-दाह, (२) अस्त्र संचयन (जली ही अस्थियों की मिट्ठी के पात्र में एकब करना), (३) जानित-कर्म तथा (४) समशान चिता जपना सोष्ठ चिता (जबी ही अस्थियों के ऊपर समाधि-स्मारक का निर्माण)। इनमें से अवित्तम किया कुछ समय बाद की जाती थी। यात्र में संचित अस्थियों को कुछ दिनों तक छिती पैदा के नीचे रखा रहने दिया जाता था। उसके बाद अस्थियों को घोकर पवित्र किया जाता था तथा कुछ अन्य क्रियाएँ होती थीं। अनन्तः अस्त्रियों को भूमि पर रख दिया जाता था तभा उनके ऊपर मिट्ठी अववा इटों का स्मारक बना दिया जाता था।

लौरिया-नन्दनगढ़ के प्राह्न-मीर्यकालीन उक्त दीलों का विवेप महत्व है। उनमें बोद्ध स्तूप के उद्भव के सम्बन्ध में रोचक जानकारी उपलब्ध ही है।

इन स्थानों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलों से भी प्राह्न-मीर्यकालीन स्मारक प्राप्त हुए हैं। हाथ में बोधान्वी, राजपाट, एरण, निदिला आदि स्थानों में किंतु गमे उक्तस्थानों से मीर्यकाल के पहले के स्थापत्य के विषय में योहो-बहुत जानकारी प्राप्त ही है। उत्तर भैदेश के बस्ती जिले में स्थित पिप्रावा-नामक स्थान में प्राह्न-मीर्यकालीन स्तूप के अवित्तम का पता थोड़ी लेखी लेख भौमि पृष्ठ के कुछ पहले का भाना जाता है। पिप्रावा से सोने के पत्तर पर जाकीले एक स्त्री-प्रतिमा भी मिली है, जिसको आश्चर्य लौरिया-नन्दनगढ़ के स्थान-पत्तरों पर बोने स्त्री-प्रतिमा (मातृदेवी) से बहुत मिलती-जुलती है।

मौर्यकालीन वास्तु

प्राह्नमित्रक मीर्यकालीन स्थापत्य के सम्बन्ध में अग्रसरनीय के विवरणों से कुछ जानकारी मिलती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी इस दिया में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध १. उलू० सो० लेखी तथा ली० ए० स्त्रिय, 'दि पिप्रावा स्तूप', जर्सेल बाफ दि रायन एसियाटिक सोसाइटी, १८१५, कृष्ण प्र०३ तथा जामे।

होती है। इन विवरणों की अनेक बारे मुख्यविवाह तथा कुमरहार (पट्टा के समीप) में हुए उल्लंघनों से प्राप्त सामग्री से पृष्ठ हुई है।

नगर योजना—मेगस्थनीय के विवरण में भीयों को राजधानी गाढ़ियुल का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है:

"भारत का सबसे बड़ा नगर वह है जिसे पतिव्रोधा (गाढ़ियुल) कहते हैं। नगर की लम्बाई २० स्टैडिया (लगभग नाड़ी नीचे) तथा चौड़ाई १५ स्टैडिया (लगभग २ भील) है। इसके बारी और एक बाई है, जो ६०० फुट चौड़ी तथा ३० फुट गहरी है। नगर के बारों और लकड़ी की बनी हुई एक रखाप्राचीर है। उसमें १०० बुँद तथा ६४ छार हैं।"

प्राचीन भारत में यहे नगरों के बारे और परिवा तथा रक्षा-प्राचीर (प्राकार) बनाने की परम्परा थी। मेगस्थनीय के विवरण से इसकी पुष्टि होती है।

कोटिल्य के अर्थशास्त्र में स्थापत्य के सम्बन्ध में रोचक उल्लेख उपलब्ध है। कोटिल्य के अनुसार राजधानी को रक्षा के लिए प्राचीर या प्राकार के बाहर एक-दूसरे के समानान्तर तीन खाइयों (परिव्या) होनी चाहिए। प्रत्येक को पास की बाई से ६ फुट (१ दण्ड) दूर बनाया जाय। इन खाइयों की चौड़ाई क्रमांक: १५, १२ तथा १० दण्ड निश्चारित की गयी। उनकी गहराई, चौड़ाई की आदि अवधा तीन चौड़ाई होती थी। खाइयों नीचे की ओर संकरी होती थी। खाइयों के किनारों को इंटो या पत्थर से मजबूत बनाया जाता था।

अस्त्र की बाई से लगभग २४ फुट (५ दण्ड) की दूरी पर खाइयों से निकली हुई मिट्टी से चारदीवारी (पार्श्य या चब्य) का निर्माण किया जाता था। यह चारदीवारी लगभग ३६ फुट ऊँची होती थी। नीचे की ओर उसकी चौड़ाई, ऊँचाई की अपेक्षा दुगनी होती थी। इस चारदीवारी का आकार घड़े-पैसा होता था। उसके ऊपर रक्षा-प्राचीर का निर्माण किया जाता था।

अपेक्षास्त्र में इंटो या पत्थरों के प्राचीर-निर्माण का विवरण है। उसकी चौड़ाई १२ से २४ हाथ (१२ से ३६ फुट) तक होती थी। ऊँचाई, चौड़ाई से दुगनी होती थी। प्राकार के लिए 'रखवायी-सचारम्' विशेषण प्रयुक्त हुआ है, जिससे जात होता है कि प्राकार के ऊपर इतनी चौड़ी सड़क बनायी जाती थी कि उस पर रख आसानी से चल सके।

१. इष्टव्य विनोद विहारी दत्त, दात्रेय लालिङ्ग इन एस्प्रेट इण्डिया, पुस्तक ३२३।

रक्षा-प्राचीर में १२ द्वार होते थे, जिनमें से ४ प्रमुख थे। ये बाहर प्रभुवा द्वार (१) बाहर, (२) पेंड, (३) गाम्य तथा (४) सेनापति थे।^१

कोटिल्य के नमुसार रक्षा-प्राचीर बहुत दृढ़ होने चाहिए। लकड़ी की प्राचीर में दृढ़ता की कमी होती थी। पाटलिपुत्र के चारों ओर लकड़ी की रक्षा-प्राचीर का उल्लेख किया जा चुका है। इस नगर की स्थिति के कारण ऐसा ही सम्भव था। एरिपन द्वारा उद्धृत मेघन्धनीज के एक अन्य विवरण से ज्ञात होता है कि 'जी. नगर नदियों के किनारे या अन्यत्र निकली भूमि पर स्थित होते थे, वे लकड़ी के बनाये जाते थे। ऐसे महात्मपूर्ण स्थानों पर स्थित नगरों में जहाँ बाह का खतरा कम होता था, पुक्किल मिट्टी अथवा इंठों से भवन-निर्माण होता था।'^२ पाटलिपुत्र नगर भोग तथा गंगा के संगम पर बसा था और उसे बाह का खतरा रहता था। इसीलिए रक्षा-प्राचीर को व्यासाया बनाना उपयुक्त नहीं समझा गया। पाटलिपुत्र की इस भोगोत्तिक स्थिति के कारण ही कालांतर में उसके नियन पर अन्य नगरों को शालधानियों के रूप में विकसित किया गया।

पाटलिपुत्र की रक्षा-प्राचीर लकड़ी के मोटे लट्ठों से बनायी गयी थी। इस बात की पुष्टि बुलन्दीबाग के उत्तरगतों से हुई है। १६१५-१६ तथा १६२३ में यहाँ दो स्पूनर के निर्देशन में उत्तरगत-कार्य किया गया। दो स्पूनर को आरम्भ में यहाँ लगभग २४ फुट की गहराई में लकड़ी की बड़ी-बड़ी शहतीरों के अवशेष मिले, जो भूमि में तिरछे स्थित थे। शहतीरों के ऊपरी भाग भूमितल से केवल १० फुट भीचे थे। उत्तरगत में लकड़ी के मोटे लट्ठों से निर्मित, एक दूसरे के समानान्तर, दूसरे की ओर जाती हुई दो दीवारें मिली, जिनकी लम्बाई लगभग २४ फुट थी। दीवारों के बीच में लकड़ी का ही बना हुआ फल्गु मिला। फल्गु के निर्माण में जिन शहतीरों का अवशेष हुआ था उनके दोनों सिरे उत्तर दीवारों के सीधे खड़े लट्ठों में इन छिपों में पस्त थे। इन लट्ठों के नीमे लकड़ा का बना यज्ञद्वृत फल्गु मिला। इस कोकीरीली फल्गु का विस्तार पूर्व की ओर ३५० फुट तक देखा गया।

१६२३ के उत्तरगतों के वरिणामस्तवक्य ३५० फुट लम्बे लकड़ के इस फल्गु के पूर्वी द्वारे पर लकड़ी की दीवार के अवशेष पुनः मिले। इस स्थान पर फल्गु के शहतीरों को देखने लाइन की पटियों की तरह एक-न्दुसरे से मिलाकर बिछाया गया था। इन शहतीरों की ओरदाई लगभग १० इंच तथा लम्बाई १२-१३ फुट थी।

१. देव तारापद चट्टालवाये, वही, पृष्ठ ३० तथा आगे।

२. वही, पृष्ठ ३५ तथा आगे।

जिस महराई तर पे लट्ठे मिले तथा जिस सा मे दोबारों को पाया गया, उससे यह बत पृष्ठ ही गपी विस्तरी के ये अवलोग पाटलिपुत्र के चारों ओर उनी राजा-प्राचीर तथा लक्ष्मण भौमे के राजप्रासाद के ही हैं।^१

अन्य सार—विवेक्य युग मे पाटलिपुत्र की तरह बन्य वडे नगरों को भी बालु रहा होगा। नाराणसी, कौलाम्बी, आवस्ती, मधुरा, अहिन्दवा, विदिशा, उच्चाधिरी, प्रतिष्ठान आदि असेहा नगर इस युग मे प्रसिद्ध थे। उन नगरों के चारों ओर परिष्वेत तथा प्राकार की अवस्था थी। अनेक ग्रामों नगरों मे हाथ से किये गये उत्खननों मे इनके चिह्न मिले हैं। इस बात की पृष्ठ विभिन्न दोहर स्मारकों मे ग्राम उक्तीय लिखापट्टों से भी होती है। ये लिखापट्ट गर्वापि कुछ बात के बते हैं, पर उनमे से अनेक पर मीठाकालीन नगरों के स्वरूप अकित हैं। ददाहरणार्थ, सौधी के तोरणों पर पूजा-बच्चों, गोमा-याता, पूँछ आदि से सम्बन्धित दृश्य प्रदर्शित हैं। इन दृश्यों की पृष्ठभूमि मे नगरों को भी अकित किया गया है। जिन नगरों की राजा-प्राचीर, मूर्त्य-प्रवेश-द्वार या अन्य भाग इन लिखापट्टों पर उक्तीय हैं के कपिलसन्तु, राजगृह, कुर्गीनगर आदि हैं। मधुरा-कला मे गवाह, सारानमाने आदि से मुक्त भव्य हृष्ये विवित मिलते हैं। भरहुत, सौधी एवं मधुरा को अनेक कलाकृतियों पर असादों, साधारण भवनों, पर्णकालाङ्कों आदि को अकित किया गया है।

राज-प्रासाद—उन्नपृष्ठ का राज-प्रासाद मेघास्थनीय के कलमासुसार पाटलिपुत्र नगर के मध्य मे स्थित था। उसके चारों ओर एक मून्दर उद्यान था, जिसमे मछलियों से मुक्त सरोवर थे। यह प्रासाद, मेघास्थनीय के अनुसार, सुरा तथा एकवताना के राज-प्रासादों से भी अधिक मुन्दर था। उसके लकड़ी के घरमो पर सोने के पत्तर फड़ हुए थे। प्रासाद का आनंदिक कक्ष राजसिंहासन, पादधीरों तथा सोने-चाँदी की रत्नजटित करतुओं से सुसज्जित था।

'त्रिवेणीस्त' मे प्रासाद तथा उसके विभिन्न भागों के विवरण मिलते हैं। उसके अन्तःपुर की रक्षा हेतु कौटिल्य ने महल के घारों और खाई तथा प्राचीर कमाने का विद्याम किया है। राजा जहो दिन का अधिकांश समय अवैतीत करता था उस स्थान को भी पर्याप्त मुर्यकात रखने के लिए कहा गया है। प्रासाद मे उत्तरामे, अनेक मूर्त वक्त तथा गृह भासे बते होते हैं। लहीं-कहीं गढ़बांडों को घोड़े मे डालने और उन्हें पकड़ने के लिए गृह भव्य (अवशात) भी बते होते हैं।^२

१. अर्थोदीलालिकल सर्वे आज इतिहास, १८१२-१३ अप्रृष्ठ ७६।

२. तारापद भट्टाचार्य, बहों, पृष्ठ ७८ तथा आगे।

'पर्येशास्त्र' के विवरणों में जात होता है कि प्राचीनों की दीवारें इटों भी बनायी जाती थीं।^१ पहली विधान मिलता है कि अल्प-पुर की दीवारों को 'देहुत् भन्म' तथा कल्प-वारि के प्रयोग द्वारा अभिन्न से सुरक्षित कर देना जाहिए।

उत्तर विवरण से स्पष्ट है कि मौर्यकाल के अवधि में स्थापत्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। परन्तु इस कला का अधिक एवं व्यवस्थित विकास मौर्यवाह के तृतीय तंत्राद् वर्णोक के जासन-काल में हुआ। अशोक के प्रयोगों ने बीड़ वर्षे का इस देश में तथा विदेशों में व्यापक प्रसार हुआ। उसने बहुसंख्यक बौद्ध स्मारकों का निर्माण कराया। इमारतों के लिए गापाण का सौंदर्य प्रयोग अशोक के पहले भी मिलता है। परन्तु इसका प्रचूर प्रयोग अशोक के जासनकाल में हुआ। अशोक भी इसका भी कि उसके द्वारा उल्लेख कराये गये अभिलेख विवरणाती ('विलिंगिका') ही। जातः उसने उन्हें गवेषणा की चढ़ायी, जितस्तम्भों तथा गुप्ताओं में उल्लेख कराया। गापाण-बैसे स्थायी माझाम के कारण ही जात अशोककालीन स्थापत्य के अनेक उपाधारण उपलब्ध हो जाएं हैं।

अशोककालीन स्मारकों की तिमलिंगिक चार भागों में विभाजित किया जा सकता है:

- (१) स्तम्भ,
- (२) स्तूप,
- (३) राजप्रासाद तथा
- (४) गुहाएँ।

स्तम्भ—अशोक के समय के स्मारकों में उसके द्वारा बनवाये गये स्तम्भ विशेष गहराये हैं। उन्नार के गत्तर के बने में ठोक स्तम्भ ३० से ४० फुट तक ऊंचे हैं। वे मूलतः अम्बेप्रत्यार के उद्देश्य से बनवाये गये हैं। उन पर मुन्दर चमकीली ओव (पालिङ्ग) है। इन स्तम्भों को देश के विभिन्न भागों में स्थापित किया गया। इनमें से जो स्तम्भ आज दिल्ली, प्रयाग, लीरिया-आराराज, लीरिपालमनगढ़ तथा रमगुरुता में है उन पर अशोक के प्रमुख स्तम्भसंग्रह उल्लेख है। लुम्बिनी, लौकी, सारनाथ, कोलाम्बी आदि स्थानों पर प्राप्त स्तम्भों पर उनके अधूरे विलालेख मिलते हैं। इन विभिन्न स्तम्भों में से कोलहुआ वा बालारा के स्तम्भ तथा लोरिया-नगदलगड़ का स्तम्भ आज भी अपने स्थानों पर अपने के लिए बहुत लाज देने का प्रयत्न किया गया है।

१. अर्येशास्त्र, २, ५।

विशेषकालीन स्तम्भ को मुकाबला दो भागों में बांटा जा सकता है; पहला नीचे का दण्ड या लाठ तथा दूसरा ऊपर का शीर्ष या परवर्ता। सभी स्तम्भों का दण्ड गोलाकार है। वह नीचे की ओर अधिक मोटा है तथा ऊपर की ओर उसकी मोटाई धीरे-धीरे कम होती गयी है। इसके निर्माण में चूनार के लाल पत्थर के एक ही टुकड़े का उपयोग किया गया। गल्पर की सतह चिकनी है और उसके ऊपर मुन्द्र चमारीसी ओप (पालिण) है।

स्तम्भों का दूसरा भाग, जो दण्ड के ऊपर स्थित रहता है, 'शीर्ष' कहलाता है। शीर्ष पर दण्ड की अपेक्षा अधिक कलात्मकता मिलती है। शीर्ष के पाँच भाग है: (१) इकहारी या दुहरी पतली मेघाला जो लाठ के ढीक ऊपर आती है, (२) उसके ऊपर कमल-नवाहियों का अलंकरण, जो षटकृति-बैंसा है, (३) उसके ऊपर कठा, (४) गोल या चौथुर्थी चौकी, तथा (५) सिरे पर बैठे हुए एक या अधिक पशु। अब अलंकरणों में तो मुन्द्ररता ही ही, पर विशेष उल्लेखनीय पशुओं की आकृतियाँ हैं। इकहाराबाद और रमगढ़रवा के स्तम्भों के ऊपर बैलों की आकृतियाँ बनी हैं। नाय में कमल आदि जो अलंकरण लगे गये हैं वे भी अल्पत बनीज हो उठे हैं। शीर्ष के सिरे पर के जामवरों को जारों और से कोर कर गया गया है। ये जामवर मिह, हाथी, बैल और घोड़ा हैं। इन चारों का सम्बन्ध अगलान् दुड़ के साथ माना जाता है।

सारनाथ के शीर्ष या परगहा की चीज़ी सबसे मुन्द्र है। उस पर उस चारों जानवर चार पर्हियों के बीच उभारकर बनाये गये हैं। चारों पर्हिए धर्मचक्र को सूचित करते हैं, जिसका प्रवर्तन सबसे पहले भगवान् दुड़ डारा सारनाथ में किया गया। सिरे की चार मिहाकृतियों के ऊपर भी एक धर्मचक्र या, जिसके टुकड़े प्राप्त हुए हैं। इस धर्मचक्र का आस दो फुट भी इच्छा। सिरे पर के सिहों का लंकन अल्पत बनीज है। चारों को पीठ से पीठ भिताये हुए दिखाया गया है। उनके अंग-प्रत्यग गठीये ही और बड़ी सफाई से गढ़कर बनाये गये हैं। लहरदार बालों की जारीकी भी दर्शनोपय है। पहले इन मिहों भी आँखों में सम्प्रकृत, मणियाँ लहो हुई थीं। यह परगहा निस्संदेह भारतीय मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।^१ अशोक के समय की मूर्तिकला की यह विशेषता है कि उसमें सजीवता और निवारण मिलता है और वहाँ भी भद्री या चेहोल रखना नहीं मिलती।

मोर्यकालीन और परवर्ती भारतीय कला में इनके ऐसे अभिप्राय या अलंकरण मिलते हैं जो सुमेर, असीरिया, ईरान आदि की कलाओं में भी उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ हैं—

१. इसके अनुसरण पर साँचों, मधुरा आदि स्थानों में भी हिस-शीर्षों का निर्माण किया गया, पर उनकी कला मिस्म कोटि की है।

समय सिंह या वीत, नर-भक्त, नर-बद्ध, देव-भक्त, गव-भक्त, वृष-भक्त, सिंह-नारी आदि। इसके सम्बन्ध में कुछ गालिकाल विद्वानों को यह मान्यता रही है कि भारतीय कलाकारों ने उन्हें ईरान या अन्य किसी पश्चिमी देश से लिया। डॉ. बामनद कुमारस्वामी ने ऐसे अभिप्रायों की एक लम्बी शृणी दी है और अपना यह विचार अक्षत किया है कि भारत का ईरान तथा पश्चिमी (तप्त) एशिया में व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुरातन रहा है, यह इसमें कोई आवश्यक नहीं गढ़ जल्द घोरों की तरह कला के खेत में भी बहुत नीचे लाते एक दूसरे ने सामग्री लेनी हुई थायी जाए।^१ यामनद है कि उक्त असेकरणों का भारत तथा ईरान आदि देशों में आयात किसी एक स्थान से हुआ हो।^२

गरन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि अशोक के उक्त स्तम्भ विदेशी कला से प्रभावित हैं। उनका विचार है कि स्तम्भ-निर्माण की परम्परा भारत में विदेशों से आयी। विसेट स्मिथ स्तम्भों की शीर्ष पर ईरान तथा असीरिया की कला का प्रभाव तथा पश्चिमी की आकृतियों पर बहानी कला का प्रभाव मानते हैं।^३ इन स्तम्भों की उक्तीक पश्चिमी एशिया तथा ईरान की पूर्ववर्ती तकनीक से बहुत मिलती है। असीरिया तथा ईरान से हमारे सम्बन्ध होने के कारण वहाँ की संस्कृति के अनेक तथों का भारत में आया और पहाँ के कुछ तत्वों का पश्चिमी देशों में जाना स्वाभाविक था।

'धूप' के क्षय में स्तम्भों का निर्माण हमारे लहां वैदिक काल से प्रचलित था। शीर्ष के दूसरे भाग को पांचालव विद्वान घटालकरण मानते हैं। वह वास्तव में निम्नाभिमूख कमल है। वैतल-वैस कला-भर्मज ने भी इसे स्वीकार किया है। शीर्ष पर जिन पश्चिमों की आकृतियों मिलती है उनका सम्बन्ध वैदिक तथा पौराणिक मान्यताओं से है। गज पूर्व दिशा का, वृषभ पश्चिम का, जिह उत्तर का तथा अन्य दिशाएँ दिशा से सम्बन्धित हैं। इस पश्चिमों का प्रतीकात्मक कार में महात्मा बृद्ध के शीघ्रन से भी सम्बन्ध माना गया है। गज बृद्ध के जन्म का, वृषभ उनकी राजि का, जिह बृद्ध के 'ताप्त्यसिंह' होने का तथा अन्य उनके महाभिनिष्ठकमण का प्रतीक है।^४ सारनाथ-शीर्ष के पश्चिमों की तरह रम्पुराता, वचरा आदि के शीर्ष-पश्चिम भी दर्शनीय हैं।

१. बामनद के ० कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ ईरान एंड ईरोपेशियन आर्ट, पृ० ११-१४।
२. अशोक की कृतियों के वैतिरिक स्थूल, पट्टना आदि से जो विचालकाय वृष-प्रतिमाएँ मिली हैं वे विशद् भारतीय शैली की है। उनमें विदेशीयन नहीं है।
३. स्मिथ, अशोक, पृ० ११०-११।
४. डॉ. रोलेड, वि आर्ट एंड आर्किटेक्चर आफ ईरान, पृ० ४८-५३।

बलोक ने इन स्तम्भों को सुखपत्र अपने धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनवाया और उन्हे अपने सामाजिक के विभिन्न भागों में स्थापित कराया। बिहारीग स्तम्भों के पास स्ट्रॉफ या इसी प्रकार के बहुत स्मारक मिलते हैं। रमायाना, लौरिया-अराधार, लौरिया-नान्दनगढ़ तथा कोल्कुआ में जो स्तम्भ मिले हैं वे उस भाग पर लगवाये गये थे जो पाटलिपुत्र में बड़े के बन्धन-स्थान लग्नियाँ तक जाता था। हुएम-सांयं ने रावणगृह, पाटलिपुत्र, वैशाली, सारनाथ, कुणीनगर, कपिलवस्तु, वावस्ती तथा संकाश्य में बलोक के स्तम्भों की देखा था। कपिलवस्तु को छांडकर पे सभी स्थान पर्वी भास्तु से उत्तर-पश्चिम को जाने वाले बड़े राजमार्ग पर स्थित थे। कोशाम्बी, सौन्दरी, इन्द्रप्रस्थ आदि स्थान, भी जहाँ से बलोक के भन्न स्तम्भ मिले हैं, बड़े मार्गों पर स्थित थे। हाल में पटना भारा, कोसम आदि से बलोक के कुछ नये स्तम्भोंपर मिले हैं।

इन स्तम्भों से मीर्याकालीन तकाओं के उच्चलोठि के कोषत का पता जलता है। वास्तुपरक तकनीकी ज्ञान तथा कला में जाह्नव तत्त्व के बे मर्यादा थे। विजात स्तम्भों का निर्णय होने के बाद उन्हे सैकड़ों बीज दूर ने जाकर बड़ा करना साधारण कार्य नहीं था। १४वीं शती में फीरोजगाह तुगलक ने दोपरा (जिला अम्बाला) तथा मेरठ के स्तम्भों को दिल्ली में स्थानान्तरित कराया। दोपरा वाले स्तम्भ के स्पालानाराज में जो कठिनाई हुई थी उसका आमार एक समकालीन इतिहासकार (सम्ब-ए-सिराज) के विवरण में निजता है। विवरण के कुछ अंश इस प्रकार है:

“विजावाद, जो पहाड़ियों के पास है, दिल्ली से नज्दे (३०) कोस की दूरी पर है। वह मुलान (फीरोज) वहाँ आपा भीर उसने दोपरा साम में इस स्तम्भ को देखा, तो उसने उस दिल्ली ने जाने तथा वहाँ भाषी पीड़ियों के लिए उसे स्नारक-स्त्रा में बड़ा करने का निर्णय किया। स्तम्भ को नीचे गिराने के बड़से अच्छे तरीकों पर विजार कर तेने के बाद यह आज्ञा दी गयी कि दोबारे में और दोबारे के बाहर निकटवर्ती खेतों में इहने वाले सभी लोग तथा पराति एवं अधरीही सेना के सभी मैनिक वहाँ उपस्थित हों। उन्हे यह आज्ञा दी गयी कि वे उन सभी औनारों तथा सामग्रियों को साथ लाये जो इस कार्य हेतु उपयोगी हों। रेशम के पेड़ों से रुई के बण्डल ताने के आदेश दिये गये। इस रेशम की रुई के द्वेर स्तम्भ के बारों और रुई दिये गये। वह ब्रह्मों को नीचे को मिट्टी हठा दी गयी, तो वह इसी के लिए बनाये गये रुई के विस्तर पर संभालकर गिराया गया। उसके बाद बीड़-बोड़ा करके रुई को हठाया गया। स्तम्भ की नीच का निरीधारण करने पर उसमें स्तम्भ के आधार के रूप में एक बड़ा चौकोर पत्तर मिला, जिसको भी बाहर निकाल लिया गया। इसके बाद स्तम्भ के बारों और नीचे से ऊपर तक सरकारणों तथा विना-

पकाई खालों को लगेटा गया, जिससे उन्नें को पोई स्थिति न पहुँच सके। किर चयालों पर हियोंसे युक्त एक गाड़ी का निर्माण किया गया और प्रत्येक पहिये में रसाई की बीच गया। हर रसें पर हजारों लोगों को लगाया गया; तथा अल्पचिक परिवहन एवं कठिनाई के बाद स्तम्भ की उठाकर गाड़ी पर रखा जा सका। प्रत्येक पहिये से एक-एक भोटे रसें की बीच गया और इनमें से प्रत्येक रसें की दो-दो भी आशमियों ने बीच। इस प्रकार कई हजार लोगों ने एक शाष्य लक्षित लगाकर माड़ी की बीचा तथा उसे बे यमना के तट तक ले आये। यहाँ नृलोक स्थर्य इसे देखने आया। अनेक बड़ी-बड़ी लोकाओं को एकत्र कर लिया गया था, जिनमें से कुछ ५,००० और ३,००० यम, और यमसे बग २,००० यम जन्म ले जा सकती थीं। स्तम्भ की बड़ी मालवाली के साथ इन लोकाओं पर रखा गया, और तदन्तर उसे फिरोजाबाद (पुरानी दिल्ली) से जावा गया।”^१

स्तूप—उपर बताया जा चुका है कि वैदिक काल में समाधि-स्तूप युहा के बगाने की प्रथमता चल चुकी थी। उसी प्रथमता से कालान्तर में स्तूपों का जाविभाव हुआ। बोड स्तूपों का निर्माण निम्नलिखित उद्देश्यों से किया जाने लगा:

(१) बहात्तो बुद्ध तथा उनके अमर्त्य अनुपायियों के अवशेषों को सुरक्षित रखने के लिए।

(२) बुद्ध की पुरानी भग्न मृतियों पा चिह्नों के ऊपर मृति के प्रति सम्मान प्रकट करने हेतु। गौतम बुद्ध के दर्बरती बुद्धों के लिए भी ऐसे स्तूपों का निर्माण किया गया।

(३) बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं अथवा पवित्र स्थानों को पुरानीय धरने की दृष्टि से।

(४) संकलित स्तूप, जिनका निर्माण दामार्थ होता था। ये प्रायः बाकार में छोटे होते थे।

सभान् भगोक ने स्तूपों के निर्माण में बड़ी भवित थी। अनुभूतियों के अनुसार उसने भारत तथा बफलानिस्तान में ८५,००० स्तूपों का निर्माण करायाया। तदनिमा के धर्मराजिका स्तूप का निर्माण भगोक को ही माना जाता है।^२ कावुल-केलवर के बीच अमरहार नामक स्थान पर भगोक द्वारा निर्मित ३०० कुटुंबों स्तूप का उन्नेष्ठ हुएन-सोग ने किया है। उसने भगोक के अन्य कई स्तूपों को भी देखा था, जिनका उसने जिनरज सिद्धा है।

१. कार स्टोरेन, आकेलोलांबी आफ बेल्हो, पृ० १३१ पर उद्धृत।

२. दृष्टिक्षम इस तथा बाजपेयो, उत्तर प्रदेश में बोड धर्म का विकास, अध्याय १७।

अशोक के समय बनाये गये बहुसंख्यक स्तूप अब नष्ट हो चुके हैं। जिन स्तूपों के अवशेष आज बिल्डर हैं उनमें से दो विशेष उल्लेखनीय हैं: (१) सारनाथ का धर्मराजिका स्तूप, तथा (२) सौची का मूल स्तूप (सं० १)। सारनाथ के स्तूप का अब केवल तला बाया अवशिष्ट है। इंटों का बना यह भीताकार स्तूप लगभग ६० फुट ऊपर का रहा होगा। इस स्तूप के बीच में एक ही पत्थर को काटकर बनायी गयी बेदिका भी मिली है। उस पर मौर्यकालीन चमकीला ओप है। यह बेदिका आरम्भ में धर्मराजिका स्तूप की हमिका के कप में रही हीमी। कालान्तर में उसके गिर जाने पर उसे उठाकर अलग रख दिया गया होगा। धर्मराजिका स्तूप का पुनर्निर्माण प्रायः बारहवीं शती तक बनता रहा और अमराननुमार उसका आकार बढ़ता गया। छांदा ('अल्पेशाश्रय') वाद में बड़े ('महेशाश्रय') रूप में परिवर्तित हो गया। अन्ततः राजा ब्रह्मतर्जिह द्वारा अमानवल पह स्तूप नष्ट कर दिया गया।

सौची का मुख्य स्तूप इस समय अपनी विशालता एवं उसके बारों और बनाये गये मुन्द्र तोरण-द्वारों के कारण प्रसिद्ध है। उसमें वो प्रदर्शिणा-पथ है, जो बारों और बनी हुई पत्थर की मुन्द्र बेदिका से परिवर्तित है। स्तूप के तल का व्यास लगभग १२० फुट है तथा उसकी ऊँचाई ४५ फुट है। सारनाथ के धर्मराजिका स्तूप की तरह सौची के अशोककालीन स्तूप का भी समाकर बाद में होता रहा। इसके अनेक अवशेषों का निर्माण ग्रन-मात्रावाहन युग में अमान्त्र हुआ, और अशोक द्वारा बनवाया गया मूल स्तूप बाद के परिवर्द्धित स्तूप के नीचे दब गया। मर जाने मालौल के अनुसार इंटों के बगे अशोककालीन स्तूप का आकार परवर्ती पापाण स्तूप के आकार का लगभग जापा रहा होगा।

राजप्रासाद—मौर्यकालीन शिल्पियों ने उक्त राजकीय, धर्मिक स्थापत्य के निर्माण में अपनी दखता का परिचय दिया। जान ही उन्होंने विकास मौर्य-मानवान्ध को गरिमा के अनुरूप गाठविषुव में राजप्रासाद का निर्माण भी अल्पान्त निर्माणता में किया। इन पर्वतीय शती के आरम्भ में जब चीनी बाली कालान ने उस राज-प्रासाद को देखा तो उसने उसके निर्माण को मानव-शक्ति से परे माना। उसने किया है:

"नगर के भव्य में स्थित राज-प्रासाद तथा सभा-भवन" सभी उन देवात्माओं द्वारा निर्मित किये गये वे जिसको उसने (अशोक ने) निर्मृक्त कर रखा था। उन्होंने ही ऐसे दृश्य में पत्थर एकत्र किये, दीवानों तथा तोरणों को बढ़ा किया, विशाक्यंक मक्काली

को तथा मूलियों के उत्तीर्ण करने का कार्य किया। ऐसा इस संसार के कोई भी सानवीय हाथ नहीं कर सकते थे।^१

सातवीं शती में हुएन-सांग की चारत-वात्रा के समय तक यह राजप्रासाद नष्टप्राप्त हो चुका था। महल के निर्माण में लकड़ी का उपयोग बहुलता से किया गया था। गाढ़ा-जैसे स्वावी माध्यम को बहुत कम प्रयुक्त किया गया था। इस कारण भी यह प्रासाद अधिक समय तक न ठहर सका। महामारत (सभा पर्व, ३, ११) में युधिष्ठिर की सभा का विस्तृत विवरण मिलता है। भौतिकों के विस सभा-भवन के अवशेष पाटलियुक से मिले हैं जो महामारत के वर्णन से मेल खाते हैं।^२

कुमरद्वार नामक ग्राम आधुनिक पटना शहर के उत्तर में स्थित है। इसके पश्चिमी ओर एक तालाब है, जिसका स्थानीय नाम 'कटू' है। इस तालाब से विशिष्ट की ओर कुछ दूरी पर एक दूसरा तालाब है, जो 'नमन' तालाब कहलाता है। इन दोनों के बीच की धूमि आसपास की भूमि से ऊँची है। इसी स्थान पर की गयी चूदाई से भौतिकालीन राज-प्रासाद का सभा-भवन मिलता था।

उस स्थल की जम्बाई लगभग ३०० फुट तथा चूदाई २५० फुट है। बैठेल वैठेल ने यहाँ मोर्ट-बोर से युक्त पत्थर के कुछ टुकड़े पाये थे।^३ उसके बाद १८१३ में ज्ञान सूनर के निदेशन में यहाँ उत्खनन कराया गया। उसके परिणामस्वरूप युक्तकालीन प्राचीर के अवशेषों के नीचे लगभग एक फुट भौटी राता की तह मिली। इस तह के नीचे एक छड़े खेल में नीक १५-१५ फुट के अंतर पर औपचुक पत्थरों के सम्म उसे हुए मिले। प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई लगभग २१ फुट रही होगी। भवन-निर्माण के समय इन स्तम्भों को किसी दृढ़ आधार पर न टिकाहर लकड़ी की खोकियों पर बड़ा किया गया था, जो महीने नहीं थी। इस सभा-भवन में ऐसे ८० स्तम्भों को बड़ा किया गया था। दस-दस वर्षों आठ पंसियों में पूरब-यशिष्व लगाये गये थे। गूँही किनारे पर दो अन्य स्तम्भ सम्भवतः सभाहृ के राजसिंहासन को सेभासने के लिए लगाये गये थे। सभा-भवन का फर्ज तथा छत लकड़ी के बने हुए थे।

१. थी० ए० स्म॒, वही, पृष्ठ ८७ में उल्घृत।

२. देव० वासुदेववाटण अध्यवात, ईश्विन भार्द, पृ० ८५, ८८।

३. वैठेल, 'विस्तवरी आफ वि एक्सेंट साइट आफ अगोक्त वसासिक चैपिटल आफ पाटलियुक, कलकत्ता १८८३।

कुछ निहारी का अनुमान है कि यह सभा-भवन चन्द्रगृह मीरे के सभ्य बन चुका था।^३ परन्तु उसके अवशेषों को देखते हुए वह युक्तिलंबत लगता है कि उसका निर्माण सभाद वस्त्रोक के सभ्य में हुआ हो। वह सभा-भवन मीरे राज-प्रासाद का द्वितीय बंज था। ये दो वह वर्गों में से प्रथम वह जो जहो राजकीय वस्त्रवाला, हस्तिवाला तथा द्वार-रक्षकों का निवास था। तीसरा वह 'राजकुल' कहसाता था, जो सभाद का भूल्ल भहन वा और जिसमें अन्तर्गुर भाँटि करते थे।

भारतीय स्थापत्य के इतिहास में उक्त मीरकालीन सभा-भवन का अन्यता महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी विज्ञानता मीरों की गौरवपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करती है।

मुहारे—भारत में पर्वत-मुहारों (मील-गृहों) को परमारा बहुत पुरानी है। प्रार्थितिहासिक तथा भार्यतिहासिक काल की अनेक गुहाएँ मिली हैं जिनमें आदिम जन निवास करते थे। वस्त्रोक और उसके वंशज दशरथ ने अनेक मुहारों का निर्माण कराया। इन मील-गृहों की भीतरी दीवारों पर जगकोला बोप है। वस्त्रोक और दशरथ के सभ्य के सात मील-गृह मिले हैं। चार वारावर पहाड़ी में (गया में उत्तर १३ मील दूर) है। ये तीन नामार्जुनी पहाड़ी में हैं, जो वारावर में उत्तर-द्वारे समझन आया मील की दूरी पर है। इसके अतिरिक्त राजगृह में १३ मील दक्षिण मीतामड़ी नामक एक अन्य गुहा है, जो मीरकालीन मारी जाती है।

उक्त गुहाओं में वारावर पहाड़ी की दो गुहाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम लोमग अधिग मुहा है जिसका प्रवेश-द्वार दूसरी गुहा है। इसके निर्माण में विशेषताएँ नामकालीन-पर्यावासालों का अनुकरण लिया। दूसरी गुहामा मुहा है। उसके बालारिक भाग की देखते पर भी अनुकरण की उक्त प्रथाएँ का चौथा होता है। इसके अन्दर का सभा-भवन ३२ फुट दं इच लम्बा, १२ फुट ६ इच चौड़ा तथा १२ फुट ३ इच ऊँचा है। इसकी छत दीमाकार बनी है। नामार्जुनी पहाड़ी की गुहाओं में योपी मुहा सबसे छह है। उसका आकार एक चौड़ी मुरंग की तरह का है। उसकी लम्बाई ४४ फुट, चौड़ाई १६ फुट तथा ऊँचाई १० फुट है। उसके द्वार के ऊपर एक अभिलेख है, जिसमें बात होता है कि उसका निर्माण सभाद दशरथ की आज्ञा से हुआ था।

प्राचीन भारत में नमरों में कुछ दूर मीलगृहों का विशेष प्रयोजनों से निर्माण कराया जाता था। वे अधिग-मूलियों या भिक्षुओं के निवास तथा उपासना-गृह के रूप में प्रयुक्त

१. देव० अपवाल, वही, पृ० ८५-८६।

होते थे। बारावर की गुहाओं में जो अभिनव मिले हैं उनसे ज्ञात होता है कि उनका निर्माण आजीविक सभ्यताएँ के साथुओं के हेतु कराया गया था।^१

जन्म स्मारक—उक्त इमारतों के अतिरिक्त अलोक तथा उसके चलाओं के समय में असेह कोड विहार बनवाये गये। अनुश्रुति के अनुसार अलोक की रानी विदिशा-महारेणी द्वारा भौद्यी में एक विहार निर्मित करवाया गया। भौद्यकालीन विहारों की भारतवर्ष बाट में शताब्दियों तक जलती रही।

तप्पुर के निकट वैशाह के उत्तरानन से अलोककालीन बोद्ध मन्दिर या स्तुप-भवन के प्रबोध मिले थे। यह इंठ और तकड़ी का बनाया गया था। उसके निकट अलोक-कालीन विद्य-जन्मेष मिले थे। उसके बाझार पर इसे भौद्यकालीन जाना गया है। पह स्तुप-भवन ऐणीचढ़, भगवत् आलार बोगे, २६ बठ्ठाहलू जलडी के स्तुम्भों तथा बड़ी इटों की बड़ी ताजियों पर लागारित था। उसके बारे और प्रदक्षिणा-पथ था। पूर्व की ओर एक छीड़ा द्वार था, जिसमें हाथार अन्दर पहुँचा जाता था।^२

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भौद्यकाल से भारतीय स्थापत्य के इतिहास में एक नये पूर्व का आरम्भ होता है। इस समय से बड़ी भाला में काष्ठ तथा पाषाण का साथ-नाथ उपयोग इमारतों में किया जाने लगा। निर्माण-कार्ये हेतु अस्थायी पदार्थों को जमाने स्थानों एवं स्थायी पदार्थों का अपनाने की प्रवृत्ति का विकास इस समय में देखने की मिलता है।

१. उदाहरणार्थ बारावर का न्योदय गुहालेख—‘वाविना विवरसिमा दुवाडसवसा-मिसितिना इव निर्गीहकुभा दिना आजीविकेहि।’ हस्त, कार्पेस, विल १, दू०१-१।

२. पस्ती बाड़न, बही, पृष्ठ १५।

शुंग-सातवाहन युग

अन्तिम मौर्य-ग्रासक बृहदीश का अन्त उसके सेनापति पुष्यमित शुग द्वारा ई० पूर्व १०५ में किया गया। पुष्यमित का आधिपत्य मगध साम्राज्य के एक बड़े भाग पर स्थापित हो गया। वह तथा उसके ब्राह्मण वैदिक धर्म के अनुपाली थे। पुष्यमित के द्वारा दो अस्तमेव किये गये। उसके लंगजों का आर्यवित्त के विनियोगों पर अधिकार स्थापित हुआ। मगध के मूल धोख के अतिरिक्त घट्ट (राजधानी कोशाम्बी), कोसल (भौद्ध्या), गूरुलेन (मधुरा), गंचाल (अहिन्द्या) तथा दण्डाण (विदिशा) पर शुग-मित्र राजाओं के आधिपत्य का पता अनेक अभिलेखों तथा बहुसंख्यक सिक्कों से चला है। विदिशा में पुष्यमित का बड़ा पुत्र अग्निमित ग्रासक था। उसके बंग के नवे ग्रासक काशी-पुत्र मारगढ़ (भागवत) के ग्रासन-काल म तथागिला के यवनराज अन्तलिकित द्वारा ब्रेष्टित हेलियोदोर नामक राजदूत विदिशा गया। उसने वहाँ के प्राचीन विष्णु-भन्दिर के सामने एक 'महाइवर' स्थापित किया। इसका पता उस गहड़वड़-सम्ब पर छुड़े हुए चाहीं लेख से चला है।

लगभग ७३ ई० पूर्व में दण्डाण धोख में अग्निमित-बंग का अन्त हुआ। इस बंग के अन्तिम ग्रासक देवभूति को उसके अमात्य बसुदेव ने समाप्त कर दिया। काशी-बंग के बार ग्रासकों के नाम पुराणों में मिलते हैं और उन महाका कुल राज्य-काल ४५ वर्ष दिया है। कल्पों को ऋष्यवार्तीय सिद्धुक या लिमुक के द्वारा समाप्त किया गया।

अन्त्र या सातवाहन राज-वंश तथा उनके भूत्य-ग्रासकों ने कुल मिलाकर लगभग ४५० वर्ष सामन किया। उस बंग का आरम्भिक उदय बर्तमान आन्ध्रप्रदेश के लेंगगाना धोख में लगभग २२५ ई० पूर्व में हुआ। हैदराबाद के समीप कोलापुर नामक स्थान से कुछ वर्ष पूर्व तीव्रे के लेने सिक्के मिले थे जिनपर सातवाहन नामक राजा का नाम लिखा है। उसके कुछ सिक्के महाराष्ट्र के नेवाया नामक प्राचीन स्थल की खुदाई से भी मिले हैं। इसी राजा के नाम पर इस बंग का नाम 'सातवाहन बंग' प्रसिद्ध हुआ। बाद में अन्त्र-धोख के बड़े भाग पर इस बंग का आधिपत्य फैल जाने के कारण उसका नाम अग्न (या ब्राह्म)

वेंग भी ऐह हो गया। ध्रीरे-ध्रीरे सातवाहनों ने युद्ध दक्षिण के जल को छोड़कर प्राची मम्पुण-दक्षिण पर अपना अधिकार कर लिया। उसके नामान्वय में महाराष्ट्र तथा सुराष्ट्र गुजरात एवं बर्बात-दक्षिण खेत के कुछ जाग भी सम्मिलित हो गये। इसी दूसरी जाति में सातवाहनों को पश्चिमी भारत तथा मालवा में अपने प्रतिष्पट्टी खालिता एवं लक्ष्मणों से लोहा लेना पड़ा। लगभग दूसरी जाति के मध्य से सातवाहन-सत्ता मुख्य रूप से महाराष्ट्र के एक बड़े भाग तथा दक्षिण भारत यह काम रही। सातवाहन-वंशी जासक वैदिक मतावलम्बी थे। इस बात में सातकणि प्रथम, गोतमोपूत्र सातकणि, वासिष्ठीपूत्र पृथुमाचो, वज्रधी जासकणि आदि प्रसिद्ध जासक हुए।

आनन्दप्रदेश के बैगी खेत पर सातवाहनों को मत्ता का अनलहोने पर इच्छाकु-बंज का जासन स्वापित हुआ। इस बंज के जासक भी वैदिक मतावलम्बी थे। गुग, सातवाहन तथा इच्छाकु-बंज के जासक वैदिक प्रमर्दिलम्बी थे। उनके समय में वैदिक धर्म का अभ्यन्तरान तथा उससे सम्बन्धित कला-कृतियों का निर्माण हुआ। इस नीनों राज-वंशों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया। उनके जासन-काल में बीड़ तथा जैन धर्म की भी उप्रति हुई, जिसमें इन राजवंशों का बड़ा योग रहा। उक्त राजवंशों की अनेक राजिनी बीड़ धर्म के प्रति विशेष ध्यान देती थीं, जिसका पता अभिनेवह से जाता है। गुगों के जासन-काल में भरहुत, बोधगया और सांचों के प्रसिद्ध बीड़ स्तुपों का संस्कार हुआ। इन स्मारकों में कई नये अंगों का संयोगन हुआ। भरहुत (जिला सतना, मध्य प्रदेश) के स्तुप का तोरण-द्वार गुगों के जासन में ('गुगनरेज') कीलाम्बी के राजा धनभूति के समय में निर्मित हुआ, ऐसा तोरण पर उक्तीर्ण बाहुदीरेख ने जात हुआ है। कीलाम्बी, सारनगर, मधुरा, अहिजल्ला, विदिला आदि में वैदिक धर्म के साथ-साथ बीड़ एवं जैन धर्म का विकास हुआ। स्नापत्य तथा मूर्ति-कला की अनेक हस्तियाँ इन स्थानों ने निर्मित हुईं। वे इस बात का उद्घोष करते हैं कि गुग-मित्र जासक धर्म के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रखते हैं।

सातवाहनों के लम्बे जासन-काल में पश्चिम तथा दक्षिण भारत में कला का सर्वतोमुखी उन्मेष हुआ। पश्चिम भारत में काले, भाजा, नासिक, पितलखोरा, अजन्ता आदि जातियों में भैन-मृहों एवं मूर्तियों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। आनन्दप्रदेश के लम्बावर्ती, घटशाल, गोली-आदि स्थानों पर किशाल स्तुपों का निर्माण हुआ। इच्छाकु-बंजों के जासन-काल में यह प्रबृत्ति जारी रही और उन्होंने नामांवनी कोला, जगव्यन्दृ आदि स्थानों पर महास्तुप बनवाये।

इस समय भारत पर विदेशी आक्रमणों में बुद्धि हुई। योग-साम्राज्य के टूटने के बाद उत्तरी-पश्चिमी दरों से तथा बतोचिस्तान-सिन्ध मार्ग से विदेशियों का भारत में आगमन बढ़ गया। यूनानियों, अक्षों तथा पहल्वाओं ने भारत को गिरती हुई राजनीतिक शक्ति का लोभ उठाकर भारत के आञ्चलिक लोकों को हमेशा बुल कर दिया। शीघ्रान्त प्रदेश तथा पंजाब के एक बड़े भाग पर यूनानियों ने और उनके पश्चात् शक्ति-पहल्वाओं ने अपना अधिकार स्थापित किया, जो प्रायः ५० प्रथम शती के पूर्वार्ध तक जारी रहा। उसके बाद कुपाणों ने पश्चिमोत्तर भारत का एक बड़ा भाग अपने अधीन कर लिया। कुपाण साम्राट् कनिष्ठ प्रथम, हुविष्ठ तथा वासुदेव प्रथम के नामन-काल में कला की वृद्धि उत्पत्ति हुई। कनिष्ठ ने बीज घर्मे को शोत्साहन दिया। इसके फलस्वरूप कुपाण साम्राज्य में बीज-वास्तु तथा मूर्तिकला को शीघ्रबुद्धि हुई।

पश्चिम भारत पर याकों ने अपना आधिपत्य स्थापित किया। इसको पूर्व द्वितीय-प्रथम शती के अनेक शक-नामकों के सिवके उत्तरी और उसके समीपस्थ लोक से मिले हैं, जो इस बात के सूचक हैं कि तब तक इस भूभाग पर विदेशी लोकों का अधिकार ही नहीं था। द्वितीय शती के प्रारम्भ में कठियावाड़-मुजरात लोक पर अहरात-शक अधिकारारूप हुए। इस बीज के प्रसिद्ध सात्सक तहान को सातवाहन-नरेश गौतमीपुत्र सातकार्णि दे पराप्त किया। अहरातों के बाद शक-शत्रपों का नामन मुराराट्ट-मुकरात के अतिरिक्त पश्चिमी मालवा तथा राजस्थान एवं महाराष्ट्र के कुछ भाग पर फैल गया। शत्रपों का यह राज-वंश चट्टन-वंश कहलाता है। इसमें लद्दामा प्रथम प्रसिद्ध नास्तक हुआ। उसके नृतामड़ अभिनेत्र से जात होता है कि उसने अपने समकालीन सातवाहन-नरेश को पराप्त कर उसके राज्य के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था। शक-शत्रपों का नामन है० चीषी जाति के अन्त तक पश्चिमी भारत में चलता रहा। उनका उन्मूलन चन्द्रमूर्ति विक्रमादित्य के हारा किया गया।

विदेशी होते हुए भी शक-पहल्वाओं, कुपाणों, अहरातों तथा शत्रपों ने सलिल कलाओं की उत्पत्ति में योग दिया। वहीं तक स्थापत्य का सम्बन्ध है, उनके नामन में बहुतलोक मन्दिरों, चैत्यमूर्तियों, स्तूपों और निहारों का निर्माण हुआ। उक्त नरेशों की मुद्राओं पर अनेक भारतीय देवताओं के अतिरिक्त मेरु, सूर्य, चन्द्र, सरिता, वर, बाल आदि के अकाल प्राप्त हुए हैं। भारतीय संस्कृति का इन नामकों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा।

विदेश युग में भारत में विभिन्न व्यवसायों का विकास हुआ और व्यापार को विशेष शोत्साहन मिला। अनेक बड़े नामों का निर्माण हुआ, जो महत्वपूर्ण नगरों से होकर जाते

थे। तत्कालीन आधिक समृद्धि का प्रभाव अन्य देशों की भाँति ललित कलाओं पर भी पड़ा। पूर्ववर्ती दूसरों में बास्तु तथा मूर्तिकला के मूल भार्याम के स्वरूप में जकारी का प्रयोग होता था। अब उसका स्थान पत्तर और हैट ने ले लिया। अरहूत, सौन्हो, मधुरा, अमरावती, नागार्जुनोंकोंडा आदि स्थानों पर अनेक स्तूपों और भवित्रों का निर्माण इस काल में किया गया। उनमें पाषाण और हैट का प्रयोग अधिक मिलता है।

स्तूप-निर्माण

जिता या शरीर-सातु के ऊपर बनाये जाने वाले प्रारम्भिक स्तूपों का स्थान जब विशाल स्तूपों ने छोड़ा किया। देश के विभिन्न स्थानों पर सहास्त्रस्तूपों का निर्माण इस दृश्य की एक महत्वपूर्ण घटन है। ये स्तूप साधारण स्मारक न होकर पूजार्थ महाबैष्णो के स्वरूप में निर्मित हुए। इनमें विशालता के साथ-साथ चमत्कार की भावना दर्शनीय है। अनेक स्तूप यजित्र स्थानों पर बनाये गये। पर भरहूत-जैसे स्तूपों का निर्माण ऐसे स्थानों पर हुआ जिनका विशेष धार्मिक महत्व न था, बल्कि स्थानों के भौतिकीय भरहूत को देखते हुए उनका निर्माण किया गया। 'महापर्यनिष्ठान सूत' में चार प्रकार के स्तूप वर्णित हैं:

(१) तथाभृत गौतम बृद्ध के स्मारक, (२) प्रलोक तुङ्डी के स्मारक, (३) मूर्ख बौद्ध आदिकों के स्मारक, (४) चक्रवर्ती राजाओं के स्मारक।

इनमें से प्रथम तीनों तर्मे के स्तूप मुग्न-सातचाहन इस में निर्मित हुए। यह जावस्तक नहीं था कि सभी स्तूपों के नीचे शरीर-बवलों पर रखे जाएँ। अनेक स्तूपों में इसी प्रकार के घात-बवलों नहीं प्राप्त होते। ऐसे स्तूपों का निर्माण धर्मविदेश को जन्मप्रिय बनाने के लिए किया जाता था। उनमें धर्मविदेश की मानवताओं के अतिरिक्त लोक-जीवन के अनेक रोकक तत्वों का प्रदर्शन किया जाता था। इसी कारण विशाल स्तूपों के बलकरण में प्रकृति के अनेक रूपों के साथ-साथ लोकजीवन के मनोरूपक तत्व विविध कलाओं, प्रतीकों और अभिप्रायों के स्वरूप में उत्पन्न होते हैं। मुग्न-सातचाहन युग में बलकरण के स्वरूप में यज्ञ-वशी, नाग-नागी, धो-सधी, सुपां, किप्रर, अप्नारा, मंगल-पद, वेष्पित कलरवृक्ष, पुण्यवली, स्पस्तिक, त्रिरत्न, चक्र, वज्र आदि अभिप्राय प्राप्त होते हैं। इन अलंकरणों से मणित स्तूप मुख्य, विनाश, या निराजा के परिवापक न होकर आसदमय जीवन के प्रतीक बने। जीवन की आनन्द से पृथी भूमध्यस्थ देश के समान माना गया, जिसमें इसी प्रकार के त्रुट या निराजा की भावना न थी। स्तूपों के लोरण-डारों तथा विदिकालों पर जीवन के विस्तृत आनन्दमय पथ का असेक्षण भिजता है, जो बीत-वास, नृत्य, भौमा-पात्रा आदि के साथ में प्रस्तुटित

हुआ है। बौद्ध-साहित्य में कहा गया है कि तपामत के समान में ऐसे स्तूप का निर्माण किया जाता चाहिए जो किसी वर्षता के स्मारक-जैसा नगे।^१ इस पृष्ठ के महावेत्तिप (महावैत्य) धार्मिक वर्षतात्त्व के प्रतिनिधि-जैसे लगते हैं।

महास्तूप की तकनीक

बौद्ध-साहित्य में महास्तूप की निर्माण-विधि के उल्लेख मिलते हैं। महावंश में उसे 'महापूर्प' या 'महावैत्य' कहा है। पाण्डाण-निर्मित स्तूप के लिए 'चिनाशूर्प' नव्य प्रयुक्त होता था। नगर-संधिवेश तथा नन्दिर-निर्माण के पूर्व विस प्रकार भूमि-पूर्वन आदि के कारण आवश्यक समझे जाते थे उसी प्रकार स्तूप-निर्माण के पूर्व राजा या स्तूप का प्रमुख निर्माता भूमि की विधिपूर्वक धूता करता था। भूमि-पूर्प के बाद इमारत की नींव रखी जाती थी और इमारत जैव कार्ब सम्पर्ज होते थे। भूमि स्तूप की सजा 'चेतिय' थी। उसके बारे ओर तोरण महित वेदिका का निर्माण किया जाता था। बौद्ध-साहित्य में उसे 'चेतियावट्ट' (या चैत्यावट्ट) कहा गया है। कलावृत्त को वेदिका से वेष्टित करने की प्राचीन वैदिक वरम्परा परवर्ती स्तूपों की वेदिकाओं में प्राप्त होती है। बौद्ध-साहित्य में वेष्टित स्तूप-निर्माण को तकनीक भरपूर, शाँची, मधुर, अमरावती तथा नागद्वारीकोश के विकाल स्तूपों में परिलक्षित होती है।^२

विशाल स्तूपों का निर्माण बड़े लिला-बच्चों की दृढ़ नींव के ऊपर किया जाता था। इस नींव को 'पाण्डाणकुट्टिम' कहते थे। उसके ऊपर एक गोला बनाया जाता था, जिसे 'अण्ड' कहते थे। प्रारम्भिक स्तूपों का यह भाग प्रायः घट्टकार होता था। परवर्ती स्तूपों में अण्ड का भाग विद्युक तम्बोत्तरा हो जाता है। अण्ड के ऊपरी भाग को समतल रखा जाता था। उसके ऊपर एक छोटा नवृत्तरा बना कर उसे भी वेदिका से आवेषित किया जाता था। इस अंग को 'हृषिका' कहा जाता था, जो देवता का निवास भाना जाता था। अृषिका के मध्य में दण्ड या वेष्टि लगायी जाती थी। उसके ऊपर तीन छड़ी की छत्रावली होती थी। इन छड़ी की संख्या बाद में बहुकर मात्र हो गयी।

गुण-नातवाहन युग में स्तूप को बारों और से वेदिका हारा बेस्टों की घट्टमरा दृढ़ हो गयी। वैदिक बाद के बारों और जो वेष्टि किया जाता था उसी से परवर्ती वेदिका का निर्माण हुआ। सभाट अंगों के समय में भी स्तम्भों के बारों और वेदिका-निर्माण

१. देव अप्रवाल, इंडियन अर्ट, पृष्ठ १२३-२४।

२. तकनीक के विस्तार के लिए देव अप्रवाल, वही, पृष्ठ १२४-२५।

की परम्परा मिलती है। अशोक के शम्मिसरेदि-अभिलेच्छ से ज्ञात होता है कि भगवान् दूष के बास-स्थान पर अपने द्वारा स्वयंपित स्वरूप के चारों ओर अशोक ने पत्त्वर का चारा बनवाया। पुष्टिका-अभिलेच्छ में इस प्रकार के चारों को विए 'प्राकार' शब्द का प्रयोग किया गया है। अरहत, समीक्षा आदि के स्तूपों के चारों ओर बनायी गयी महावेदिका के अवलोक्य प्राप्त हुए हैं। वेदिका के चार भाग होते हैं। तीने का पापाण 'जातस्तम्भ' कहलाता था। उसके ऊपर दोधे स्तम्भ बड़े हिंदे जाते हैं। दो-दो स्तम्भों के बीच में तीन-तीन जाहे पत्त्वर लगाये जाते हैं। इन जाहे पत्त्वरों को 'मूर्चे' कहते हैं। इनके मिरी की बड़े पत्त्वरों में बनाये गये छाँचों में मन्त्रदृतों के साथ फैसा दिया जाता था। बड़े स्तम्भों के ऊपर अनेक मिरदण रखे जाते हैं जिन्हें 'उड्डीप' कहते हैं। उड्डीप के इन पत्त्वरों के ऊपर अनेक गोलाकार बनाया जाता था। उन पर दोनों ओर अनेक प्रकार के अलंकरणों तथा कामाख्यों का चित्रण किया जाता था। बड़े तथा मूर्ची के स्तम्भों को भी विविध मूर्तियाँ, लोक-नकाशों, अलंकरणों आदि से विवित करते हैं। वेदिका की चारों दिशाओं में प्रत्येक और एक प्रवेश-द्वार होता था, जो 'तोरण' कहलाता था। तोरण-द्वारों को विविध रोचक अलंकरणों से सूसाजित करते हैं।

स्तूप तथा महावेदिका के बीच बूले हुए स्थान को प्रदक्षिणा-नव कहते हैं। मूल प्रदक्षिणा-नव के अतिरिक्त ऐसा दूसरा नव भी अपने के प्राप्त-स्थल वाय में बनाया जाता था। उसके चारों ओर नमु वेदिका रहती थी। तीसरा प्रदक्षिणा-नव हमिका के चारों ओर रहता था, जिसकी वेदिका सर्वको छोटी होती थी।

भरहुत

मध्यप्रदेश के ललता नगर से लगभग ३० मील दक्षिण भरहुत नाम है। उसके समीन मूग-काल में एक भूम्य स्तूप का निर्माण हुआ, जिसके अधिनाम अवतोष इस समय कलकाता के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। जम्य अनेक वहालेष भारत तथा विदेशों के संप्रहालयों में विद्यमान है। कीराम्बी से जो गाँग इक्षिण-प्रदक्षिणम में विदिगा की ओर जाता था उस मार्ग पर भरहुत स्थित था। महों से दूसरा रास्ता बाघवगड़ होता हुआ दक्षिण कोसल को जाता था। इस स्थल के महूल को देखते हुए सम्भवतः अलोक के द्वारा यही स्तूप का निर्माण किया गया। उसके बाहे ही पूर्व दिनीद जातों में स्तूप का विस्तार किया गया, जिसका व्यास आधार पर ६० पुट न दूर था। स्तूप काढ़ी ईठों का बना था। उसकी नीम्ब बड़े जिसा-वृष्टियों की थी। स्तूप के चारों ओर वेदिका निर्मित थी, जिसके बारे एक-एक तोरण-द्वार बनाया गया। स्तूप-तथा वेदिका के बीच १० पुट ५ इक्ष और दोहा प्रदक्षिणा-नव था। वेदिका में तुन २० स्तम्भ हैं,

जिनमें से प्रत्येक की ऊंचाई ३ फुट १ इन थी। स्तम्भों के ऊपर रखे हुए उल्लीलों की कुल मिलाकर लम्बाई लगभग ३३० फुट थी। स्तम्भ-धूमलों के बीच सूचियाँ लगी थीं। प्रत्येक तोरण-द्वार के दोनों ओर वामों पर समानान्तर जाती हुई तीन बड़ेरियाँ (गाराम) लगी थीं। इन तीनों को एक-दूसरे से पश्चात के बीकोर ढुकड़ों पर लगाया गया था।

इस महत्वपूर्ण स्तूप की खोज जनरल कनिष्ठम के द्वारा १९७३ हूं० में की गयी। कनिष्ठम की वेदिका के कुल ४७ स्तम्भ प्राप्त हुए। इनमें से ३५ भरहुत के मूल्य स्वतंत्र से तथा बीच १२ समीकृत के दो गाँवों—मठनवारा तथा गतोरा—से प्राप्त हुए। कुल ४० सम्बंधित उल्लीलों में से कनिष्ठम की १६ प्राप्त हुए। बाइ में धो बजमाहन व्यास के प्रबलों से भरहुत वेदिका के ३३ स्तम्भ, ३ शूलीं तथा १५ उल्लील प्राप्त हुए। स्तूप के अन्य अवशेष भी उन्हें मिले। ये सब बस्तुएँ अब प्रयाग संस्कृतलय में सुरक्षित हैं।

भरहुत के प्राप्त अवशेषों तथा अनेक शिलालिपि पर उल्लीण आङ्गुष्ठियाँ से वहाँ के मूरकालीन विशाल स्तूप के स्वरूप का पता लगा है। जात हुआ है कि यह स्तूप अग्निकार था। अग्नि के ऊपर अग्निकार चक्रवर्ता था, जिस पर विष्ट तथा छड़ करे हुए थे। छड़ों पर पुण्ड-हार बने थे। तोरण-द्वार के प्रत्येक स्तम्भ की ऊंचाई ६ फुट ३॥ है। ये पूर्वी तोरण-द्वार पर उल्लीण आङ्गुष्ठियाँ अभिलेख से जात हुआ है कि उसका निर्माण शुभों के लालन में कोशाम्बी के शासक अग्रराज के पूर्व धनभूति के द्वारा कराया गया। एस दूसरे अभिलेख के अनुसार इसी धनभूति ने तोरण, वेदिका एवं रत्नमूह-धूमल एक अन्य स्तूप का निर्माण मध्युरा में कराया था।

भरहुत तोरण-द्वारों के स्तम्भ अठपहलू तथा चोपहलू हैं। उनके ऊपर कलात्मक शीर्ष हैं, जिन पर सर्प तथा नृपम प्रदर्शित हैं। तोरण की बड़ेरियों के वहिमांगों पर मूह छोले हुए मकारों के अलकरण हैं। बड़ेरियों के मूल्य भागों पर मानवाङ्गितियों के अतिरिक्त लिहों, गबों आदि के अभिप्राय अत्यन्त प्रभावोपादक हैं। तीनों बड़ेरियों की एक-दूसरे से अलग हुए स्तम्भों-द्वारा जोड़ा गया है। सबसे ऊपर की बड़ेरी पर दोनों ओर धर्मचक्र और नन्दिपद प्रदर्शित हैं। इस बड़ेरी के मध्य भाग पर पृष्ठालंकरण के ऊपर चक्र बना है।

भरहुत के तोरण-द्वारों तथा स्तम्भों, सूचियों, उल्लीलों आदि पर विविध मनोरञ्जक निखण मिलते हैं। प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त सोक-बीवन की अनेक माल्यताओं को रोचक दृश्य में प्रदर्शित किया गया है। जातकों के अनेक दृश्य, सम्बन्धित जातक के नाम सहित, उल्लीण हैं। इनमें अतिरिक्त पाता-पक्षी, लता-बृक्ष, गध-बछी आदि भी अकिञ्चित

मिले गये हैं। जासेनित दूषणों में यायावेनी का गर्भधारण राजाओं एवं अन्य उच्च वर्षीय जनों तथा अनसाधारण द्वारा वृष्टे-यात्राएँ एवं पूजा-दृश्य, कुरुकाशि यज्ञो, जातवाह आदि नामों तथा विविध देवी-देवताओं के दृश्य उल्लेखनीय हैं। सप्ताद् प्रसेनजित तथा अजातशत्रु की धार्मिक यात्राओं के प्रदर्शन के दृश्य विशेष महत्व के हैं। अग्रभास द्वे दर्शन जातक-कलाओं के दृश्य सौन्दर्य-कला में मिलते हैं। अनाधिपित्रिक द्वारा भूमि पर मूर्दाएँ विद्धा कर जंतवन को चरीदेन का दृश्य भी एक स्थान पर है। कुछ दृश्य हास्य-व्यग्र-सम्बन्धीय हैं। एक स्थान पर बन्दर, जंगली हाथी को पकड़कर लाते हुए दिखाये गये हैं। दूसरे स्थान पर बन्दरों द्वारा हाथी की सहायता से एक भारी-भरकम वक्ष को धीहा से मुक्त किया जा रहा है। लोक-जीवन के विविध अंगों के अव्यापन की दृष्टि से भारतीय इतिहास में भरहुत-कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

भरहुत की अनेक कलाकृतियों पर राजप्रापाद, पृष्ठभास्ता, पर्वकुटी तथा गाडारण भवनों के दृश्य मिलते हैं। दैनिक जीवन के विषेष उपयोगी विधिय वस्तुएँ भी भरहुत-कला में दृश्य हैं।^१

बृह की मानव-वृत्तिमा का भरहुत-कला में निरान्त अभाव है। बृह से सम्बन्धित अनेक प्रतीकों को ही गहरी ओर कला में अंकित किया गया है।

सौचो

भरहुत-स्तूप के निर्माण के कुछ समय बाद विदिता के समीण सौची नामक स्थान पर कही सूखों का निर्माण हुआ। सौची विदिता नगर से लगभग ६ मील दक्षिण स्थित है। इसका एक प्राचीन नाम 'कालनादवोट' मिला है। इस दूर्वे तीसरी छती से नेकर गुल-काल तक के अवलोक सौची और उसके आसपास वही संचaya में मिलते हैं। उन्हे देखने में यता जलता है कि सौची एक बीचे काल तक बोड़ प्रमें का महत्वपूर्ण बेन्द रहा। सौची-सप्ताद् भवीक के समय वही एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ। उसके बाद वही अनेक स्तूप, विहार और भवितव्य बने। इससे इस स्थान का नाम 'चितिग मिर' (चेत्य गरि) प्रसिद्ध हो गया। विदिता नगरी विवेच्य काल में भारत की अपेन्त समृद्ध नगरी थी। वहाँ के निवासियों ने सौची तथा उसके आसपास अनेक कलाकृति स्मारकों का निर्माण कराये

१. भरहुत-कला के विस्तृत विवरण तथा अनेक दृश्यों के सौलिक विवेचन के लिए देखिये वासुदेववारण अध्यात्म, इतिहास आदि, पृष्ठ १२८, १४८ तथा वैभीमाध्य वस्त्राः, भरहुत, भाग १-३।

में मृमृष्ट भाग लिया। सौंची के मृच्य स्तूप के चारों ओर अतिपन्न कलापूर्ण चार तोरण-द्वार सातवाहनों के समय में बनाये गये।

सौंची की निर्माण मृच्य व्यापारिक मार्ग पर थी। आवागमन के मृच्य स्थल पर हीमे के कारण यह स्थान अब स्तूपों के निर्माण का बेन्द्र बन गया। बशोक के समय से लेकर १० नवीं शती तक यहाँ निर्माण के विविध कार्य चलते रहे। बशोक की विदिका बाली पल्ली द्वारा यहाँ एक विहार बनवाने का उत्सेव बौद्ध-जाह्नवी में गिलता है। कानिष्ठम ने सौंची और उसके आसपास के देश का सर्वेक्षण करके लगभग ६० स्तूपों का यता लगाया।^१ वे स्तूप सौंची के अतिरिक्त मुमारी, जलधारा, अंग्रेज तथा मौजपुर नामक स्थानों पर स्थित हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध सौंची के तीन स्तूप हैं। संख्या १ तथा ३ वाले स्तूप यहाँ के पश्चिमी भाग पर स्थित हैं। संख्या २ का स्तूप उनसे कुछ दूर नीचे स्थित है।

स्तूप संख्या १—इस स्तूप का निर्माण आरम्भ में सम्भाद बशोक के समय में हुआ था। उस समय यह मिट्टी तथा ईटों का बना हुआ था। १० पूर्व द्वितीय शती के उत्तरार्ध में सातवाहनों के आधिकरण में इस स्तूप के नारों लोर वेदिकालों तथा तोरणद्वारों का निर्माण हुआ। वेदिकों द्वारा की एक बैठकी (पातांग) पर उल्कीण बाली लेख के अनुसार सातवाहन राजा सातकजि के समय में उसके मृच्य स्तूपति आनन्द के द्वारा इस तोरणद्वार का निर्माण कराया गया। अन्य तोरणों की कला तथा उन पर उल्कीण लेखों से ज्ञात होता है कि मृच्य स्तूप के नारों और वेदिका सहित सभी तोरण-द्वारों का निर्माण १० पूर्व प्रथम शती के आरम्भ तक पूर्य हो गया था। सातवाहनों के पश्चात् गुप्तकाल तथा पूर्व-मध्यकाल में महावेतिग शिरि के स्मारकों का युत्कुद्धार-कार्य जारी रहा।

मृच्य-स्तूप संख्या १ का विस्तार बशोक के समय में बर्तमान स्वरूप का लगभग जाया था। इस समय स्तूप का ऊँचाई २० कुट तथा उसकी ऊँचाई १५५ पुट है। स्तूप का सम्पूर्ण भाग पत्तरों से जालबद्ध है। इन पत्तरों की चुने से नहीं जीड़ा गया, केवल पत्तरों के ऊपर ४ इंच मोटा लेप किया गया है। भरहव-स्तूप की तरह यह स्तूप भी अर्ध-गोलाकार है। १५ कुट की ऊँचाई पर उसके चारों ओर 'मिहि' बनी है, जो ऊपरी प्रदक्षिणा-पथ का कार्य करती है। उसकी वेदिका छोटे खम्भों की बर्ती है। इस मेहितक पहुँचने के लिए दुहरा खोणान-मार्ग स्तूप की दक्षिण दिशा में बनाया गया। अण्ड के ऊपरी आधार पर बनाये गये खदूतों की ऊँचाई १५ पुट ६ इंच है। उसके दोनों ओर

१. कानिष्ठम, निलसा टोप्स, पृष्ठ ५८।

यह प्रत्येक सीधान में २५ सोनियाँ हैं। स्तूप के गोरे पर हाँसका, मणिदंड तथा विलव बने हैं।

स्तूप के नूमितल पर स्तूप तथा बड़ी वेदिका के बीच मूल प्रणिषण-मार्ग है। वेदिका के स्तम्भ, सूनी तथा उणीष सादे हैं। ऊपर बाह्यों लेख वही संखा में उत्कीर्ण है। वेदिका की ऊंचाई ११ फुट है तथा उसमें तर्जे यहे स्तम्भ ८ फुट ऊंचे हैं। प्रत्येक पुरात स्तम्भ के बीच २ फुट बौद्ध ३-३ आदि पत्त्वर लगे हैं। स्तम्भों को गोलाकार उणीष से भवित लिया गया।

सौंची के मूल स्तूप की वेदिका तथा तोरणों पर ३७८ वान-लेख उत्कीर्ण हैं। अन्य स्तूपों पर भी ऐसे लेख मिले हैं। तीनों स्तूपों पर कुल गिरावटर ८२३ लेख यादे गये हैं। मूल स्तूप के पूर्वी द्वार पर मूल सं० ८३ (४१२ ई०) का लेख उत्कीर्ण है, जिसमें चन्द्रमणि वितीय द्वारा दशाले की विजय का उल्लेख है।

भूदण स्तूप के तोरण-द्वार आपनी कला के लिए प्रसिद्ध है। इनका लग भरहुत के तोरणों से गिरावट-जुलता है। परन्तु सौंची के तोरण अधिक ऊंचे और कलापूर्ण हैं। उन पर दृश्यों की बहुमता तथा कलाविधान भी अधिक गिरावटादायक है। प्रत्येक तोरण-द्वार की ऊंचाई ३५ फुट है। स्तम्भों, बैडेशियों तथा उनके जन्मसंगों को कला के विविध उपायातों से भवित लिया गया। उन पर गोमा-नाचाओं, स्तूप-बीघिकून की गूजा तथा गोतम बृद्ध के बीचने ये सम्बन्धित अनेक घटनाओं को कलाकारों ने भाववत् रूप प्रदान किया।

स्तूप संक्षिप्त २—प्रथम स्तूप ने कुछ दूर संक्षिप्त २ बाला स्तूप है। यह एक छोटे वश्वतेर के क्षेत्र बना है। इस स्तूप के भीतर कठियम बोड बालायी एवं प्रसं-प्रचारकों के अस्थि-अवशोष से। इस स्तूप के निर्माण का स्वयं प्रथम स्तूप से गिरावट-जुलता है। इसका वायास १० फुट वा और कुल ऊंचाई ३० फुट। यहाँ की वेदिका में ८८ स्तम्भ हैं। इस स्तूप में कुल ३ लेदिकाएँ थीं। भूतल बाली वेदिका में अनेक महात्मणों विषय उत्कीर्ण हैं। इनमें से बालक विषय मूल स्तूप-वीरे हैं। गोतमबृद्ध का जन्म, गम्भोष्ठि, शम्भवेश-प्रथत्तेन तथा गरिनिवर्णों को इनमें अनेक वीरत, वृद्ध, वज्र तथा स्तूप के प्रतीकों द्वारा विचारा गया है। नाम, वर्ण, सूपर्ण, ईशामूर्ति आदि का अक्षर भी सुरक्षित है। इनमें अस्वासीरे तथा भग्सपूर्वक वाले विष्वट-मिथुन का अक्षर दर्शन है। इस वेदिका पर विश्वन, नन्दिपद, धीरत्स आदि प्रतीक भी व्रद्धित हैं। जैन-पत्त्व 'रामपलेनीमसुर' में 'पद्मवरदेविका' का जो वर्णन लिया गया है उसका मुद्रण लालेखन इस स्तूप की वेदिका पर

मिलता है। कंकाली दीवार के जैन स्तूप का कला-विधान सौची के इस स्तूप से बहुत साम्य रखता है। मोरान-नदी की बेदिका तथा हुकिमा में भी मादे अलंकरण मिलते हैं। थो लड़मी, गज-लड़मी तथा पश्चलताधारी यक्षों के आलेखन विशेष रोचक हैं।

स्तूप तंत्रिया ३—मुख्य स्तूप के उत्तर-पूर्वों ओर ठीकरा स्तूप है। यह सारियुक्त तथा महामोमालायन नामक दुड़ के दो प्रमुख शिखों के अवशेषों पर निर्मित हुआ। इस स्तूप का अवास ४८ फुट इ इच है तथा कुल ऊँचाई ३५ फुट ४ इंच है। स्तूप के निर्माण में स्वातीय भारी पत्तरों का प्रयोग किया गया। इस स्तूप में केवल एक ही द्वार है। भूमितल की बेदिका तथा अण्ड के वास्तु को बेक्षते हुए यह रहा ताकि सकाता है कि इसका निर्माण प्रथम दोनों स्तूपों के बाद हुआ। दुर्भाग्य से भूमितल की बेदिका अब प्राप्त नहीं हो चुकी है। इस स्तूप में भी बेदिकाधृक्त सोमान चा। तोरण-द्वार की ऊँचाई १० फुट है। इसका अलंकरण-विधान प्रथम स्तूप-जैसा है। मुख्य कला-हुकिमों में मालाधारी पञ्च, नामराज, गज-नदीमी तथा देवसभा के दृश्य उल्लेखनीय हैं।

अशोक स्तम्भ—मुख्य स्तूप के दक्षिणी द्वार के समीप अगोक स्तम्भ टटी हुई दशा में रखा है। इस स्तम्भ का गोरे, लोहमंगला से असंकृत है, सौची के संप्रहालय में सुरक्षित है। अपने सम्पूर्ण रूप में साम्ब की ऊँचाई ४२ फुट भी। कला की दृष्टि से यह स्तम्भ अत्यन्त सुन्दर है। इस पर पूर्ण-घट तथा पलावली अलंकरण है।

अद्वैतालोक मन्दिर—सौची में विवेच्य युग के दो मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं। इसकी संकाल क्रमतः १- और ४० हैं। काले के गैल-गूहों से इन मन्दिरों की कला मिलती-जुलती है। पहला मन्दिर स्तूप संक्षेप १ के दक्षिणी द्वार के सामने है। उसका अद्वैत कठा मत्रवृत दीवार से छिरा है। उसके कठा की भौतिकी और बाहरी दीवारे पत्तर की है। मन्दिर के स्तम्भ १० फुट ऊँचे हैं तथा ऊपर की ओर गृणकार है। संक्षेप ४० काला मन्दिर नेतिपणिर के दक्षिणी शेष में चा। इस मन्दिर के बाहर प्रदलिङ्ग-पञ्च भी चा। मन्दिर में प्रवेश दो ओर से चा। इसकी रक्षा बायावर पहाड़ी के गैल-गूहों की याद दिलाती है।^१

सौची के उक्त स्पारक भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला की अग्रद हुकिमों हैं। इसमें अब से सम्भग दो हवार साल पूर्व भारतीय लोह-बीचन की जितनी ही मधुर गाढ़ाए संकोषी हुई है। मरुहत की भौति सौची की कला में छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, साधु-मृहस्त

१. इष्टदद वासुदेववारण अश्वान, चही, फुट १५८-७२।

सभी के बीचम की आमनदमरा अधिकारित मिलती है। प्रकृति और मानव-जीवन का जो सामर्जस्य भारतीय साहित्य में वर्णित है उसे हम सभी की कला में सूचिमान् पाते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं, उत्सवों तथा आमोद-प्रमोद की जीवी सभी के बहुसंख्यक अवस्थाओं में मिलती है। स्तूपों के चारों ओर लगी हुई बैविकाओं तथा तोरणों पर विविध प्रकार के बहुसंख्यक दृश्य उकेरे हुए हैं। अनेक शिलापट्टों पर भगवान् बृद्ध के प्रमुख चित्रों—बोधिवृक्ष, घम-नक, स्तूप तथा भिदापाल—के पूजन ने तत्त्वीन स्त्री-पुरुष दिवाये गये हैं। महाकपि जातक, छद्मन् जातक, व्याम जातक आदि कलाओं का अलेखन अत्यन्त मनोधारी हुआ है। यूड ने जीवन की प्रमुख घटनाओं को भी अनेक स्थलों पर उल्लीळे किया गया है।

सभी की कला में सामाजिक उत्सवों का प्राचुर्य मिलता है। स्त्री-पुरुषों के समूह गीत-वाच्च में तत्त्वीन अथवा नृत्य करते हुए इन उत्सवों में भाग लेते हुए दिखाये गये हैं। इस प्रकार की सामूहिक यात्राएँ समय-समय पर हुआ करती थीं। उनमें सभीत की प्रधानता रहती थी। बंगी, धीणा, ढोलक, मंजीरा, आदि वाच्च-पन्डितों का प्रचलन या, जिन्हें सभी के सोरणों में देखा जा सकता है।

मनोविनोद के अन्य साधन उचान-यात्रा, पड़ी-कीड़ा, हाथी-बोहों की सवाई, बालेट, अज-कीड़ा, पघुरान आदि थे। उचानों में गुणित वृक्षों के नीचे या सरोवरों के तट पर बैठकर आत्म भासाने के रूप दृश्य सभी में मिलते हैं। एक स्थान पर कमल-बन में विहार करते हुए मवाल्ड स्त्री-पुरुष दिखाये गये हैं। इसरी बमह एक राजा जपने सेवकों सहित जालेट के लिए जाता हुआ प्रदर्शित है। बहुलियों द्वारा शिकार करने के दृश्य भी मिलते हैं। पश्चियों की पालना तथा उनके साथ अग्रस तरह के विनायाड करना प्राचीन भारतीयों के मनोरञ्जन का एक मुख्य साधन था। सभी की कला में ऐसे कितने ही सुन्दर चित्रण मिलते हैं जिनमें हंस, मधुर, शुक आदि पश्चियों के साथ कीड़ा करते हुए नर-नारी प्रदर्शित हैं। कहीं-कहीं सरोवरों के समीप विविध पक्षी उड़ते दिखाये गये हैं। मधु-यान के भी कई दृश्य हैं। सप्ततीयों गानभिकाओं को विशेष आकर्षक भूमालों में वृक्षों की आलियी पकड़े हुए वर्णित किया गया है।

प्राचीन भारतीय वेष्याएँ की जातकारी के लिए भरहुत की तरह सभी के बलादमेष वह महत्व के हैं। विभिन्न जंग के स्त्री-पुरुषों का वहनावा इन कृतियों में देखने को मिलता है। साधारण जंग के लोग धोती, दुपट्टा (उत्तरीप) तथा भारी पकड़ी पहनते थे।

स्त्रियों को प्राप्त: सांची तथा उत्तरीय पहने दिखाया गया है। आमूणों के धारण करने का रिवाज बहुत था। स्वो-मूरुष अनेक प्रकार के आभरण पहने हुए दिखाये गये हैं। स्त्रियों बाली को अनेक जाकर्यक ढंगों में सजाती थी। विविध प्रकार के केश-विन्यासों को देखने से मात होता है कि तत्कालीन मोगों की कलात्मक गति कितनी विकसित थी। दो चोटियों (दिक्षेणी) का प्रदर्शन कई स्त्री-मूरुषियों ने भिला है। बालों में शूल गृष्णकर केशाव को मण्डित करने की विधेय रुचि था।

सांची में उत्कीर्ण बाही जिलालेख बड़ी सकार में मिले हैं। अलोक के स्तम्भ पर उसका लेख व्याख्यित अवस्था में मिला है। वेदिकाओं पर वही संघर्ष में प्राप्त लेखों से मात हुआ है कि भारत के विभिन्न स्थानों के लोगों ने सांची-स्त्रीयों के निर्माण में मोग दिया था। इनमें राजा-राजी, चिक्षु-चिक्षुणी, माध्यारण जैन सभी थे। महात्मा बुद्ध के दो प्रधान लिख्यों, सारिपुत्र तथा मोगलायन, और अन्य धर्म-सचारकों के नाम पादाण-मञ्जुश्राको आदि पर मिले हैं। सांची के इन बहुसंख्यक जिला-लेखों से भारतीय सभाजन की तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति की प्रभृत जानकारी प्राप्त हुई है।^१

बोधगया

मृद्घ बीड़ तीरों में बोधगया की भी मणना है। यह वह स्थल है जहाँ गौतमबुद्ध को सम्बृद्ध ज्ञान की प्राप्ति हुई। बोधगया विहार में मगा से ६ मील दक्षिण है। यहाँ का समीपस्थ 'उरलं' गोप प्राचीन 'उरविलं' है, जहाँ काशय वृक्षितथा मुजाता का निवास था। बीढ़ अनुश्रुति के अनुसार सज्जाट अलोक ने बुद्ध के ज्ञान-प्राप्ति के इस स्थल पर बोधि-मन्दिर का निर्माण कराया था। यहाँ जिस पीपल के ढाढ़ के नीचे गौतम की मान की प्राप्ति हुई थी उसकी सज्जा 'बोधिदुर्ग' प्रसिद्ध हुई। जिस स्थान पर आसन लगाकर बुद्ध ध्यान-मम्म हुए वे नह कोहिमण्ड कहलाया। इस स्थान का महत्व बहुत बड़ा और यहाँ 'महाबोधि सधाराम' नामक बाड़ी को द्याया गया है। भरहुत के एक जिलापट्ट पर ब्रह्मोंक के समय में निर्मित मन्दिर का दृश्य उत्कीर्ण मिलता है।^२ बोधगया के प्राचीन स्थान का मुनरदार करत समय अशोककालीन बोधिमण्ड के अवशेष मिले थे। उसका निर्माण ओपदार तत्त्वरों से किया गया था। गह बोध अलोककालीन स्मारकों में इष्टव्य है। बोधिमण्ड पा ब्रह्मासन के चारों ओर धर्मोंक के समय में रथा-दीनार या

१. सांची की बास्तुकला तथा मूरुषिकला का विस्तृत विवरण मात्रांत ने अपने महत्वपूर्ण गल्ल 'सांची' (तीन जिलों में) दिया है।

२. अष्टवाल, बही, पृष्ठ १७२।

प्राकार का निर्माण करवाया गया था। उसका बाहरी चित्तार २५८ कुट था। आरम्भ में यह प्राकार ईंटों का था। शुभकाल में उसे पाषाणबेदित के काष में निर्मित किया गया। वह वेदिका भरहुत, साथी मधुरा आदि की वेदिकाओं-सेसी है। वेदिका के कुछ पत्तरों पर बाहुदी लेख चढ़े हैं। इनमें से कई दर राजा इन्द्रामिति की रानी कुरमो तथा राजा इन्द्रामिति की रानी नामदेवा के नाम मिलते हैं, जिन्होंने इच्छेविदिका का निर्माण कराया। सम्भवतः इन शान्तियों के पति कोशाम्बी के बासक थे। वर्त्ता बनपद का प्रभाल ३० पुणे इसरी शती में बगड़ के एक विस्तृत नाम पर चैला था।

बोधगया की वेदिका में कुल ४५ स्तम्भ थे। प्रत्येक स्तम्भ ६ कुट = दृच्छैका था। पत्तरों के नीचे २ कुट २ दृच्छ का आधार तथा ऊपर १ कुट २ दृच्छ के ऊपरीय थे। वेदिका के ऊपरीयों तथा स्तम्भों पर कमल-पुष्प के मुन्द्र अलंकारण है। इस आधार पर वेदिका को 'पथावर वेदिका' कहा जा सकता है। बातक काषायों के तथा दूध के नीचन-सम्बन्धी अनेक द्रव्य इत पर उकोण हैं। गन्ध-नदी, मिथुन, कल्पवृक्ष, चक्र, यथ-नदी, गन्धवृक्ष आदि के मनोरंजक चित्रण इन शिलालिट्रों पर मिलते हैं।

बोधगया की कला में सप्त सिंह, अस्त्र, गाढ़, मकर, नर-मत्त्व, ईहामुग आदि के अस्तेत्तुन विशेष रोचक हैं। प्रतीत होता है कि भरहुत और सोनी की कला के अनेक तत्त्वों ने बोधगया की कला को प्रभावित किया। मृप्तकाल में बोधगया के प्राचीन मन्दिर का चूनरुद्धार हुआ। उस समय वह 'कृहत्यांभकुटी प्रासाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। म्याघवीं शती में हिंदू उपर्युक्त रूप प्रदान किया गया।

मधुरा

इस काल में कला का एक अन्य बहा केन्द्र मधुरा नगर बना। वही वेदिक, जैन तथा बोद्ध धर्मों का विकास कई शताब्दियों तक जारी रहा। बास्तुकला तथा मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से मधुरा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

जैन तथा बोद्ध इमारते—मधुरा में जैन तथा बोद्ध धर्म के बड़े केन्द्र स्थापित हो जाने से यह मूर्तिसंगत था कि वहीं अनेक स्तूपों तथा लिहारों का निर्माण होता। मधुरा के कांकाली टीला से प्राप्त एक मृति की वीक्षी पर यहूं दो दितीष शती के एक लेख से पता चलता है कि उस समय में बहुत पुणे वहाँ एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप का नाम 'देव निर्मित बोद्ध स्तूप' दिया है। इस स्तूप की विजिष्ट बास्तु-रूपों के कारण ही उसे देव-निर्मित कहा गया। बर्तमान कांकाली टीला की भूमि पर उस समय से नेकर प्रायः ११०० ई० तक जैन इमारतों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। बोद्ध

इमारतों की संकला भी बड़ी थी। समादृ अशोक, कौनिष्ठ तथा लन्ध जाक-कुपाण ग्रामों के द्वारा मधुरा नगर तथा उसके बास्तविक वित्तने ही स्तूपों तथा विहारों का निर्माण कराया गया।

चौथी शती में चीनी याकी फाल्गुन ने मधुरा में प्रमुख नदी के दोनों किनारों पर दो बड़े बौद्ध विहारों को देखा। उसने वहाँ के लह बड़े बौद्ध स्तूपों का भी उल्लेख किया। मधुरा में प्राचीत जिलालेखों से जब तक अनेक बौद्ध विहारों का एक चला है, जिनमें से अधिकारीय का निर्माण जाक-कुपाण-काल में हुआ। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :

विहार : (१) हृषिकल विहार, (२) स्वर्णकार विहार, (३) ओ विहार, (४) चेतिय विहार, (५) चूलक विहार, (६) जपानक विहार, (७) मिहिर विहार, (८) गुहा विहार, (९) क्रौञ्चकीय विहार, (१०) रोषिक विहार, (११) रकाटिका विहार, (१२) प्रापारिक विहार, (१३) यजा विहार तथा (१४) लण्ड विहार।

चेद है कि इन विहारों में से अब एक भी नहीं बचा। इन इमारतों के निर्माण में हैंदों और पत्तवरों का प्रयोग किया गया था। इस प्रकार सौची, तब्जिला, सारनाथ आदि स्थानों के बौद्ध विहारों-में से ही में विहार रहे होंगे। मधुरा में कुपाण-काल में सबसे अधिक विहारों का निर्माण हुआ, जैसा कि तलकालीन अभिलेखों से सिद्ध होता है।

स्तूप—मधुरा के प्राचीन स्तूप ईंट और पत्तवर के बने हुए थे। उनका स्वरूप भरहुत और सौची के स्तूपों-जैसा था। कुपाण-काल में उनका अण्ड लम्बोतरा हो गया। युग कुपाणकालीन मधुरा की अनेक मूर्तियों पर बैन तथा बौद्ध स्तूपों की आकृतियों परापर हुई है। ‘राघवसौणीष युत’ आदि बैन धन्वों तथा बौद्ध साहित्य में विवेच्यकालीन स्तूपवास्तु पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

समादृ अशोक द्वारा मधुरा में बनवाये गये स्तूपों में तीन का उल्लेख चीनी याकी हुएन-नाम ने किया। इस याकी ने मधुरा में दुद भनवान् के साधियों के अवलोपों पर निर्मित स्तूपों की भी चर्चा की। मधुरा में बाद में छोटे-छोटे जिन स्तूपों की रचना की गयी, उनमें से कई के अवलोप उपलब्ध हैं।

जाक-कुपाणों के आधिपत्य-काल में मधुरा और उसके जास-नाम बज-क्षेत्र में अनेक बैन और बौद्ध स्तूपों का निर्माण हुआ। अशोक के समय से यहाँ स्तूप-निर्माण की जो परम्परा आरम्भ हुई उसका विपुल विकास इस युग में हुआ। मधुरा और उसके जास-नाम के

मध्यम से प्राचीन इमारतों के अवशेष वही स्थान में मिलते हैं। अनेक कला-कृतियों पर तोरण-वेदिका युक्त स्तूप अर्द्धचतुर्भुज मिलते हैं।

मधुरा की मूर्तिकला अपनी मौर्तिक उद्घावनाओं, सामवस्य-प्रवणता तथा चारत्व की विविधता के कारण भारतीय कला में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। न्यायपत्र के लेख में भी उसने इन सूपों का प्रदर्शन किया। मधुरा के स्थापत्य में मूल वेरणा भरतुर, मानी तथा बीघमया से नी गयी दृष्टिगोचर होती है। परन्तु बास्तु के उन तत्त्वों को भारतीय परम्परा के व्यापक परिवेश में जाहिन-परदा कर मधुरा के कलाकारों ने बास्तु में सौन्दर्य की नीति विद्याओं की गृहिणी कीर लक्षित कला के इस जंग को नवीन रूप प्रदान किया। यह प्रवृत्ति हमें मधुरा में ईसा की प्रथम दो जलालियों से विशेष रूप से प्रस्तुति मिलती है। प्रकृति और मानव जीवन के सौन्दर्य को परखने और उसे मनोरम मूर्तिपूर्ण देने की अपूर्व क्षमता मधुरा के कलाकारों में थी।

जहाँ तक मधुरा के जैन स्तूपों का सम्बन्ध है, उस काल में दो मूर्छ्य स्तूपों का निर्माण हुआ : एक गृह-काल में तथा दूसरा कुपाल-युग में। वर्तमान कंकाली टीका के लेख में यहाँ स्तूप के बाद दूसरे का निर्माण हुआ। प्राचीन मधुरा का यह प्रमुख जैन केन्द्र था। बोडों ने भूतपवर, कटरा जाहिन अनेक स्थानों पर अपने स्तूप और विहार बनवाये। मधुरा के कलिपन बीड़ स्तूपों का तकनीक गधार-क्षेत्र के स्तूपों-बीसा था।

इन इमारतों के बहुसंख्यक अवशेषों में वेदिका-स्तम्भों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रायपतंगीय मूर्ति, ललितप्रस्तर, दिक्षावदान आदि घनों में स्तूप के अन्य भागों के अतिरिक्त पथवर वेदिका तथा उस पर बनी हुई सौन्दर्य-नुत्तिकलाओं के विवरण विस्तार से मिलते हैं। अवधार १५० से भी अधिक वेदिका-स्तम्भ मधुरा के कलाकाली टीका, भूतपवर आदि स्थानों से प्राप्त हो चुके हैं। इनमें से कुछ पर गृहा-सम्बन्धी और कुछ पर बालीन कलाकाली-सम्बन्धी दृश्य हैं। जोप पर ऐसे दृश्य हैं जिनमें प्राचीन आनन्दमय सोक-जीवन की झाँकी मिलती है। उन पर विविध बाकरीक मुद्राओं में स्तिर्यों के चित्रण हैं। सौन्दर्य के अनिन्द्य साधन के रूप में नारी का प्रदर्शन मधुरा के कलाकारों की विशेष शक्तिर था। उन्होंने उसके धूमान की अभिज्ञता कर अपनी कला को भवित लिया। मधुरा के वेदिका-स्तम्भों पर कहीं तो कोई चित्रित उदास में फूल चुनती हुई दिखायी भयी है तो कोई कानून-जीवा में संतरण है। कोई मुन्दरी भास्तु के नीचे स्थान का आनन्द ले रही है तो दूसरी स्थान के उपरान्त रूपवे पहन रही है, या गीते के ज सुखा रही है। किसी वर्मे पर बालों के संतारने का दृश्य है तो अन्य पर कपोलों में लोप्रकृष्ण मलने का या उन पर धन-तज्ज्ञा

करने का। कहीं मधु-मान का दृश्य है तो कहीं बीणा-बंडी-वादन का या नृत्य का। मधुरा के ये वेदिका-स्तम्भ कलात्मक होने के साथ-साथ, शूषार और माधुर्य के मणि-घट हैं, जिनमें कलाकारों ने मुर्शिचपूर्ण इन से प्रकृति और मानव-जगत् की सम्बद्ध-रुचि भर दी है।

मधुरा के कई वेदिका-स्तम्भों पर बूढ़ या बालिष्ठ को मूर्तियाँ मिली हैं। कुछ पर हाथ जोड़े हुए या हाथ में पूष्पमाला मिए हुए पूजकों के भी चित्रण हैं। भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों की जातक कलाएँ जनक स्तम्भों पर मिलती हैं। लयभव १०० इ० पूर्व के एक खंभे पर पत्ते की एक कूटिया (पर्णमाला) चित्रणी गयी है। उसके बाहर एक बूढ़ तपत्वी बैठे हैं, जिनके सामने हिरण्य, साप, कोका और पिङ्की—ये चार जीव बैठे हैं।

गातक कवाओं के अलावा महाभारत की भी कुछ कथाएँ मधुरा के वेदिका-स्तम्भों पर अंकित प्रिलिपी हैं। एक कथा वृष्णिशृग की है, जिन्होंने युवावस्था तक जिसी स्त्री को नहीं देखा था। उन्हें अंग (आंतों विद्वार का एक भाग) के रखा ने जेतावतों द्वारा प्रतोग्न देकर बुलवाया। इस कथा की एक वेदिका-स्तम्भ पर उसी मुद्रितता से चित्रण माया है।

मधुरा से बड़ी सल्ला में ऐसे वेदिका-स्तम्भ मिलते हैं, जिन पर चित्रण समोविनोद-सम्बन्धी दृश्य उत्कीण मिलते हैं। प्राचीन भारत में वाग-वर्गियों में मनवहनाव के लिए अनेक उत्सव, बैल-उत्तमाणे, रात-रेत हुआ करते थे। बहुत से उत्सव सावंतविक होते थे, जिनमें सभी बर्गों के लोग भाग ले सकते थे। उत्तमों में कूल चुनना, दूला दूलना, बैद बैलना, पश्चियों के साथ यनोरजन वरना आदि कार्यक्रम होते थे। पश्चियों को लोग अपने घरों में भी पालते थे। हंस, तोता, बैता, छोवत, सोर आदि पालतु पश्चियों के प्राचीन साहित्य में बहुत उल्लेख मिलते हैं। मधुर-कला में पश्चियों के साथ ही डाकरने के अनेक दृश्य मिलते हैं। कहीं गिरहे में बन्द पश्चीं दिखाया गया है तो कहीं पूर्ण मुक्त। सुन्दरियाँ गंजारी, फूल या फान दिखाकर जबका जनार के दानों के समान जपने दीतों से लुकादि पश्चियों को जगता रही है। कहीं सुनोरियों के बालों में मृगे हुए या स्नान-हारों के मोरियों के लोभी हुस दिखाये गये हैं। फूल चुनने और गेंद खेलने के भी कई समोरम दृश्य मधुरा के वेदिका-स्तम्भों पर चित्रे जा सकते हैं। कालासों दोला से प्राप्त वेदिका-स्तम्भों पर इस प्रकार के कलात्मक चिनोदां का अंकन बहुतता से मिलता है।

मधुरा के वेदिका-स्तम्भों पर स्नान और प्रसाधन के कई दृश्य हैं। एक लम्बे वर एक स्त्री पक्कीय शरने के भीत्र स्नान का आनन्द लेती हुई चित्रणी गयी है। इसरे पर

स्नान के बाद वस्त्र पहिनने और तीसरे पर भीते वालों के निजोदाने का दृश्य है। प्रसाधन-सम्बन्धी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। किसी पर गालों से छूणे जाने या वकावली-रचना का दृश्य है तो किसी पर बैठी संवारने या अस्तकाक-संवादने का। उन प्रसाधिका स्थिरों की भी कई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जो संवादन आदि का काम करती थीं। वे हाथों से भूगार-पेटिका तथा चूंगार (मुखस्थिर पदार्थ रखने का गाढ़) लिये दिखायी गये हैं।

एक वेदिका-स्तम्भ पर बज वाली एक युक्ती अपने चिङ्गेप पहुँचावे के साथ दिखायी गयी है। वह भिर पर एक भाषण रखे हैं। सम्भवतः यह वही बेचने वाली गोप-वस्त्र की मूर्ति है। कुछ स्तम्भों पर हाथ में तनवार लिये हुए नटियों के भी चित्रण मिले हैं। एक वस्त्रे पर इयसी विण-धूपा में एक स्त्री दिखायी गयी है, जो हाथ में दीपक लिये हुए है। प्राचीन रुनवालों में विदेशी पर्तिजारिकाओं के रहने के प्रमाण मिलते हैं। इनमें अंग-रधिका घबरियाँ (मूरान की स्त्रियाँ) भी होती थीं। मधुरा के एक वस्त्रे पर गस्त्र-धारिणी की एक ऐसी मूर्ति मिली है, जिसे 'सजस्ता बबनी' कहा जा सकता है।

मन्दिर—मधुरा में सबसे प्राचीन जिस मन्दिर का उल्लेख मिला है वह राजा लोडास के राज्य-काल में निर्मित हुआ। ऐसा एक सिरदर्श पर उल्कीण शिलालेख से जात हुआ है। इस लेख में लिखा है कि वामुदेव-कृष्ण का चतुर्शाला मन्दिर, तोरण तथा वेदिका का निर्माण बसु नामक व्यक्ति के द्वारा नहावता लोडास के शासन-काल में सम्पन्न हुआ। यह मन्दिर उस स्थान पर बनवाया गया जहाँ भगवान् कृष्ण का बग्म माना जाता है। हो सकता है कि उसके पहले श्रीकृष्ण का कोई मन्दिर मधुरा में रहा हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला। अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक कुपाणकालीन मूर्तियाँ इन में मिली हैं। सन्मव है कि उनमें से कुछ के मन्दिरों का निर्माण इस समय या इसके कुछ पहले आरम्भ हो गया हो।

दुर्भाग्य से मधुरा में प्राचीन वास्तु का कोई ऐसा समूचा उदाहरण आज नहीं बचा, जिससे हम प्राचीन इमारतों, बालादारों, साधारण भक्तों जादि की निर्माण-जीली की प्रत्यक्ष बालकारी प्राप्त कर सकते। इमारतों परवर एवं अन्य प्रवर्णों के सम से घोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है, जिसके अंदर पर हम मधुरा की कुछ इमारतों की वर्णना जान सकते हैं। प्राचीन प्रामाण या वडे माला कई तरों के होते थे। जीने के फिलारों (पाल्स) पर वेदिका-स्तम्भ लगे होते थे। भक्तों में बैठक का कमरा, लंगालगार, भोजन-गृह, शपन-गृह, गृहार-कक्ष और अन्तःगृह प्राप्त अलग होते थे। व्यास्थान विविक्तियाँ भी होती थीं।

मकानों में चौबट, दरवाजे, लग्ने आदि लगाये जाते थे। उन्हें लता-कुश, पलू-पद्मी, कमल, मंगल-पट, छीरिमधुर, स्वस्मिन्द्र आदि अलंकरणों तथा विविध देवी-देवताओं, मणि-किनारों आदि की प्रतिकृतियों से अलंकृत किया जाता था। इंट की बनी हुई इमारतों की बाहरी दीवारों पर अनेक प्रकार की बेलधूटेदार ईंटें लगायी जाती थीं, जिन पर धार्मिक एवं लौकिक दृश्यों के कलाशमक चित्रण होते थे।

गुहा वास्तु

पर्वत की चट्टानों को काटकर उन्हें निवास-हेतु गैल-गृहों के कप में परिवर्तित करने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है। इसका आदिम रूप प्रार्थितामिक तथा आर्थितामिक गुहाओं से देखने को मिलता है। कुछ गुहाएँ प्राकृतिक भी तथा कुछ मानव द्वारा निर्मित। गैलिकाल में अशोक और दशरथ के समय बनायी गयी गुफाओं का उल्लेख पिछले अल्पाप में किया जा चुका है। गुम-मातवाहन गुग में देश के कई लेखों में पर्वत काट कर निर्मित (गैलकृत) गुहाओं का निर्माण हुआ। उनमें से मुख्य का विवरण नीचे दिया जाता है।

उदयगिरि-खण्डगिरि गुहाएँ

उडीसा में भूवरेश्वर से ५ मील उत्तर-विश्वम खण्डगिरि तथा उदयगिरि की गहड़ियाँ हैं। वहाँ अधिकाल गैल-गृहों का निर्माण साधुओं के निवास के लिए किया गया। खण्डगिरि की गुहाएँ छोटी हैं। उदयगिरि की गुहाएँ अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्त हैं। पहाड़ की चट्टान को साक्षात्तानी से काटकर उसे मानव के निवास-दोग्य बनाया जाता था। गुहाओं के सामने छोटे बरामदे बना दिये जाते थे, जो गृहों पर आधारित रहते थे। धीरे-धीरे इस प्रकार के गैल-गृहों को दुमजिला बनाया जाने लगा। उनके उपराण उडीसा की उक्त गुफाओं में उपलब्ध हैं।

उदयगिरि की गहड़ी में १६ गुहाएँ तथा खण्डगिरि में १६ हैं। उदयगिरि को मुख्य गुहाएँ राणीगृह, मंकपुरी, मणिलगृह, हाथीगृह, तथा व्याघ्रगृह हैं। खण्डगिरि में नवमनिगृह, देवसभा, अनन्तगृह जादि हैं।

हाथीगृह में ६० पूर्वी गती के मध्य का एक लम्बा चाढ़ी लेख उल्लिख है। उसमें लिङ्ग के बैन जासक खारवेल का बीबन-चरित तथा उसकी उपलब्धियाँ विस्तृत से वर्णित हैं। उक्त गुफाओं में से अनेक का निर्माण बैन साधुओं के निवास के लिए खारवेल के भवय में कराया गया। कुछ गुहाएँ उसके पहले तथा बाद में निर्मित हुईं। हाथीगृह-लेख के अनुसार खारवेल ने अपनी राजधानी के निर्माण में विशेष सहिती। उसमें दुइ ग्राकार का निर्माण नगर के लाठों और करवाया, जिसमें गोमुक (द्वार) वर्षा-स्पान बनाये गये। इस जासक ने 'विशाखराधिकार' नामक पुराने राजप्रासाद का भी

गुननिर्धारण करवाया। उसके हाथ 'महातिक्षण प्राप्ताद' नामक एक नया राजमहल बनवाया गया। खारखेल के पूर्ववर्ती, मगध के नन्द-राजाओं द्वारा एक नहर बनवायी गयी थी। उस नहर की मरम्मत खारखेल ने करायी और उसका विस्तार अपनी राजधानी तक कराया। जिव में यह भी स्पष्ट लिखा है कि आपने शासन के तेजहवें वर्ष में खारखेल ने कुमारी पर्वत (उदयगिरि-बुद्धगिरि का प्राचीन नाम) पर जैन साधुओं के लिए गैल-गृह बनवाये। उक्त स्थान पर आज भी विद्यमान शेख-गृहों को देखने से पता चलता है कि उनका निर्माण बड़े कलात्मक ढंग से किया गया था।

उक्त गृहाओं में राणीगुफा सबसे बड़ी है। उसमें निवास के लिए दो तल हैं। प्रथमक तल में एक मध्यवर्ती कला तथा छोट (४८ फुट \times २४ फुट) है। जीवन के तीन ओर अन्य कक्ष हैं। ऊपरी तल का बरामदा ६२ फुट लम्बा तथा निचले तल का ४४ फुट लम्बा है। इस गुफा में असेह मनोरंजक दृश्य अंकित है। उसमें पूजा के विविध समारोहों के अंतरिक्ष ब्रेम-कलाओं, नारी-आपहरण आदि के दृश्य भी हैं। दूसरी बड़ी गुफा 'गणेश-गुफा' है। उसमें आचेट के दृश्य तथा हाथी आदि की सावारी दिखायी नहीं है। एक स्थान पर उद्यत-शकुनता की कला अंकित है। अन्य दृश्यों में प्रकृति के नाम स्थानों के चित्रण, वेदिका-बोधापट्टी, जालभजिका, कल्पवृक्ष आदि के अंकन हैं। बुद्धगिरि की अवस्थगुफा में अन्तःकला (२४ फुट \times ३ फुट) के मामने अलंकृत बरामदा (२६ फुट \times ३ फुट) हैं, जो ३ स्तम्भों पर आधारित हैं। इस गुहा की दीवारों पर भी गब-लठमी आदि के रोपक चित्र हैं।

उठीसा की इन गुहाओं में पूजार्थ लिंगी प्रकार के मनिदरों को नहीं दिखाया गया। इस दृष्टि से वहीं का वास्तु एविवरी भारत के उस गैलहृत स्थापत्य से मिलता है जिसमें खेतों पर स्तुपों का महत्वपूर्ण स्थान है। उठीसा की गुफाओं के प्राचीन परिवेश इस बात के परिचायक है कि जैन धर्म के प्रकार के लिए इन स्थानों में मनोरंजक कला-वार्ताओं तथा प्रेक्षागृहों की भी व्यवस्था रही हीमी। उसके प्रति स्थानीय लोगों की विशेष सच्च रही हीमी। धर्म को लोकप्राही बनाने के लिए इस प्रकार के मनोविनादप्रद तत्त्वों का समावेश असम नहीं कहा जा सकता। मधुरा के ककाली टीला तथा भूतेल्लर की वेदिकाओं पर यक्षिणी आदि के जो उत्तान शृंगारिक कला मिलते हैं, वे भी धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण के प्रेरक कहे जा सकते हैं। भरहुत, सार्वी, मधुरा, अमरावती आदि की कला में शृंगार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। धर्म को एकानिकाता एवं नेरास्य से बचाने

तथा उसे सर्वप्राची रूप प्रदान करने के लिए भृंगार एवं लोकाचार के विविध भनोरणक उपादानों का अवलम्बन बाबापा समझा गया।

पश्चिम मारत की बोड़ गुहाएँ

भृंगार लोक द्वारा धर्म-प्रचाराचें जो अतेक काम किये गये उनमें से एक काम भारत के विभिन्न मूल्य स्थलों पर अपनी राजाजाएँ लिखाता था। उसके समय में बोड़ धर्म मध्य प्रदेश की सीमाओं को पार कर अवनिलेत से होकर मुवरात-काठियाचाह पहुँचा। इस भूभाग तथा उसके सभी पक्षी प्रदेश के लिए लक्षीक ने मिरनार (प्राचीन गिरिनगर) तथा सोलारा (प्राचीन गृपोरक) को चुना। बाबापामन के मूल्य केन्द्र होने के कारण इन स्थानों का चूनाव वृक्षितसमय था। इन चूनरें तथा सभी पक्षी देश के समृद्ध आपारी-लग्न को प्रभावित कर बोड़ धर्म के प्रचारकों ने वही सफलता प्राप्त की। धोरे-बोरे भासक वर्ण में भी बोड़ धर्म के प्रति सम्मान बढ़ा। पश्चिमी भारत पर बाबान करने वाले सातवाहन, लक्ष्मण तथा गुक-दलप-वंशी लालकों द्वारा इस देश में बोड़ स्मारकों के निर्माण में अभूत योग दिया गया। इसकी पुष्टि उसके बहुसंख्यक अभियोगों से हुई है। इन लेखों में लालकों द्वारा स्तूप, चैत्यगृह, विहार आदि बनाने तथा बोड़ भित्तियों को निवास, भीजन आदि दो सुविधाएँ प्रदान करने के विवरण मिलते हैं। स्मारकों में सबसे उल्लेखनीय वे बहुसंख्यक गुहाएँ (जेण या 'लयन') हैं जो पहाड़ों को काटकर बनायी गयी। उसरे में मिरनार में लेकर दक्षिण में पूना छोड़ तक लगभग १२५० छाटी-बड़ी गुहाएँ मिली हैं। इनमें से अधिकांश बोड़ भित्तियों के निवास के लिए बनायी गयी। ये ये में स्तूप एवं पूजागृह मिलते हैं। भीड़-भासक अजोक तथा दाराच के समय में बाबार तथा नारायणी घटाहियों में आज्ञाविकों के लिए गुहाएँ बनवायी गयी थीं। उनके बाद उडीमा बाली गुहाओं का निर्माण हुआ। पूर्वी भारत की इन गुहाओं का धारानिधक बनकरण पश्चिम भारत की घटाहियों में किया गया। जौङ ही पश्चिमी पर्वतमाला दील्लगृह-बास्तु के प्रसार का मूल्य देश बन गयी।

पश्चिमी भारत में उक्त गैल-बास्तु के निर्माण का समय १० पूर्व द्वितीय शती के प्रारम्भ में लेकर १० सातवीं शती तक है। लगभग १० पूर्व २०० से लेकर २०० ई० तक पश्चिमी भारत में हीनपान मत का प्रचलन रहा। २०० ई० के बाद में लेकर प्रायः सातवीं शती के उत्तरार्ध तक महायान मत का प्रसार विशेष रूप से हुआ। पश्चिमी भारत में सबसे पुरानी गुहाएँ ये मानी जाती हैं जो काठियाचाह में बृन्दाबन, तलाव तथा शान-नामक स्थलों में बनायी गयी। उनके पश्चात् लम्बद्वे के पुरीपल में बोरपाट की

मुहाबों का निर्माण हुआ। उनके अनांगत भाजा, कोडने, बेडसा, कालं तथा उनके उत्तरी ओज बुलार, नासिक, गीतलखोरा एवं अजन्ता की मुहाबों हैं। कलहरि की मुहाबों का पुष्ट कर्म है।

उक्त गैल-मुहों के वास्तु की कलिपय विजेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं :

(१) गैलगृह के डार-मूर्ख के कपर का चाप कालझमानुचार बनता गया। इस चाप की संज्ञा 'चैत्यगवाहा' मिलती है। प्रारम्भ में चाप का कृप अत्यन्त साधारण था, जैसा कि बादावर की 'लोमलक्ष्मि' गृहों में मिलता है। उसके लगभग एक गतावधी पश्चात् भाजा के चाप को हम कीर्तिमूर्ति रूप में पाते हैं, जो ब्रह्मपाद ('हासेन्') अथवा लम्बाप्रामाण लद्देशन्द-जैसा है। यही आहृति गैल-मुह के भीतरी गलपूङ्ठ ('रेष्ट') की भी मिलती है। यह 'इष्टपथ' (वैसर) नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोडने के गैलगृहों में 'चैत्यगवाहा' के चाप में बहाता अधिक दिव्यायी पड़ती है। अबन्ता की नवीं मुफ्त तथा काले में चैत्यजाप पूजावस्था को प्राप्त करता है। उसका वह रूप दूसरी जाती के अन्त तक बना रहता है। इ० याचिकी जाती से चैत्यगवाहा का प्रबोधावर जाधार पर संकरा होता जाता है। एसोरा के 'विश्वकर्मा चैत्य बद्ध' के निर्माण-समय (अबी जाती) तक आस-आते अन्वयाव चाप का स्थान पूर्णवृत्त से लेता है।

(२) बरामदे जी बाहरी दीवार पहले लकड़ी की बनती थी, जैसा कि भाजा में उसके अन्वेषण मिले थे। परन्तु यह दीवार बाद में पत्थर की बनायी जाने लगी।

(३) परखती गैल-मुहों में लकड़ी का प्रयोग प्रायः बन्द कर दिया गया। गैल-मुह का डारगृह, जो प्रारम्भ में सादा होता था, क्रमशः अधिक असृष्ट होता गया। उसमें दो कीर्ति-त्तम्भों का भी प्रयोग होने लगा। कालान्तर में वह और अधिक विकसित हुआ और उसमें सामने वेदिका से घिरे हुए अंगन का निर्माण भी होने लगा। प्रारम्भिक मुहाबों में मूष्मलच्छप (पोटिको) चैत्यशाला का अभिन्न लग था। परन्तु क्रमशः वह एक स्वतन्त्र रूप में मिलता है। काले में हम उसे मण्डप से भी अधिक चौड़ा पाते हैं। वही दोनों पारबं-वीचियों के प्रदक्षिणान्तर को भी १५'फुट चौड़ा बनाया गया।

(४) वेदिका का निर्माण भी क्रमशः बनता गया। प्रारम्भिक मुहाबों के बरामदे, लघु वेदिकाओं तथा चैत्यमवाहा-अभिप्राप्त से दृष्ट बनाये जाते थे। धीरे-धीरे लघुवेदिका का निर्माण यद्दा लगा। चौधी-याचिकी जताव्यी तक उसे हम विलकृत रूपायत गाते हैं।

(५) प्रारम्भिक गील-गृहों में काष्ठ का प्रयोग तथा सज्जा के सिए मिलता है। दशहरण के लिए काले तथा चीतलबोरा में धरवर्ती गील-गृहों में लकड़ी के स्थान पर पूर्णतया पाषाण का प्रयोग मिलता है।

(६) प्रारम्भिक मण्डपों के स्तम्भ धोतर की ओर झुके मिलते हैं, जैसा कि भाजा में देखा जा सकता है। यह काष्ठ-वास्तु के बनकरण का सूचक है। मण्डप के प्रवेश-द्वारों के स्तम्भ भी पहले के गील-गृहों में धूकावदार मिलते हैं। परन्तु धरवर्ती काल में स्तम्भों की बिलकुल सीधा बड़ा किया जाने लगा। स्तम्भों के बाकार में भी परिवर्तन लक्षित होता है। प्रारम्भ में सादे घटभाँ का प्रयोग मिलता है, जिनके न तो आधार रहते हैं और न गीर्धे। धीरे-धीरे स्तम्भों के जाधार-कप में पूर्ण-घट का अलंकरण मिलते लगता है। दूसरी विशेषता यीर्धे की है। पश्चात् पर सवारी करते हुए स्त्री-पुरुषों को लोधी पर प्रदर्शित किया जाने लगा। काले तथा कालेशी में पूर्ण-घट तथा पश्चात् पर सवारी करते हुए स्त्री-पुरुष उल्लेखनीय है।

(७) प्रारम्भ में चैत्रगालाओं का आन्तरिक आयाम छोटा होता था। धीरे-धीरे उसका विस्तार बढ़ता गया। यह बात भाजा तथा काले में विशेष कप में देखी जा सकती है।

(८) गील-गृहों की पाइंड-बीचियों की चौड़ाई भी कालकालानुसार बढ़ती जाती है। गील-गृहों के निर्माण-विशेषक कठिपाय जब प्रालीन साहित्य तथा अभिलेखों में मिलते हैं। पर्वतीय गृहों को अभिलेखों में 'कुआ', 'मुहा' जैववा 'धर' कहा गया है। कोठरी को 'अपवर्क' या 'मर्म' कहते थे। गिरा का कटाक 'मेलकम्म' (गीलकम्म) कहलाता था। शिल्पी को 'सेलवद्वारि' (गीलवद्वारि) तथा मूल्य लिली को 'महासिला-कम्मातिक' अथवा 'महाराकारक' कहा गया है। गील-गृहों में नृतियों-उत्त्वीण करना 'सेलरुपकम्म' (गीलकपकम्म) कहलाता था। चैत्रगाला के निर्माण-कार्य के लिए 'कीर्ति' जब प्रयुक्त हुआ है वो कीर्ति अथवा उत्तरवित गील-गृह के लिए होता था। गील-गृह के मूर्छ के लिए 'धरमूर्छ' (गृहमूर्छ) जब आया है। इसके दो भाग होते थे: पहला ऊपरी खुला भाग (गीलगवार्ड) तथा दूसरी निचली ठोस दीवार, जिसमें तीन दरवाजे होते थे। दीव का दरवाजा मध्यवर्ती मण्डप (लाभि) तक पहुँचने के लिए होता था। अन्य दो दरवाजे पाइंड-बीचियों के लिए होते थे।

गील-गृहों में प्राप्त अभिलेखों में 'लेण' (संस्कृत 'लमण') जब का प्रयोग बहुत मिला है। नासिक, जूँधार, काले अदि में प्राप्त अभिलेखों में दानिखों द्वारा मिथुओं के लिए

'लेल' बनवाने के उल्लेख मिलते हैं। यह शब्द मूल्य रूप से भिक्षु-विहार के एक या एक से अधिक कमरों का व्यापक है। कभी-कभी इसका प्रयोग चैत्यशाला के लिए भी हुआ है। इस प्रकार को चैत्यशालाएँ परिचयी भारत के गोल-गृहों में बहुत मिलती हैं। उनके बीच में पत्थर का ठोक स्तूप या चैत्य होता था। इसके अतिरिक्त स्तन्मो पर आधारित मूल्य कक्ष होता था, जिसमें दोनों ओर पाट्वं-बीमी या प्रदक्षिणा-पथ रहता था। इस प्रकार के चैत्य-गृह में वैसी वैदिका आवश्यक नहीं थी, जैसी जि भरहूल, सांकी आदि के स्तूपों के बारों ओर मिलती है। परन्तु वैदिका के प्रति गीत-गृह के निर्माताओं की पारम्परिक रुचि थी। सम्भवतः इसी कारण गोल-गृहों के द्वारा या बरामदों में जाकड़ी या पत्थरकी वैदिका के दर्शन होते हैं।

परिचयी भारत के गोल-गृहों की संख्या बहुत बड़ी है। उनमें सबसे अधिक (लगभग ६००) बोड है, गोप ३०० वें धर्म तथा वैदिक वर्षों से सम्बन्धित है। इन गृहों को दो मूल्य बगी में विभाजित किया गया है: (१) चैत्यशाला, तथा (२) विहार। चैत्यशालाओं की संख्या बहुत सीमित है, जबकि आवास के लिए बनाये गये विहारों की संख्या बहुत अधिक है।

हीनयान मत से सम्बद्ध मूल्य चैत्यशालाएँ भाजा, कोहने, जजना (२ जातार्थ), बैठना, नामिक तथा कास्त में द्वितीय-प्रथम जाती हैं। यूके में निर्मित हुई। चैत्यशाला के मूल्य अन्नों की यदि हिन्दू मन्दिर के साथ तुलना करें तो कई बातों में साम्य मिलता। चैत्यशाला के अन्तिम किनारे पर प्रायः गोपगृष्ठकार पूजा-स्थल मिलता है। वह मन्दिर के गम्भेय-गोल के स्थान पर होता है। चैत्यशाला की मध्यबीमी की तुलना मन्दिर के मण्डप से की जा सकती है। दोनों ओर की पाट्वं-बीमियों तथा मन्दिर के प्रदक्षिणा-मार्ग में कोई अन्तर नहीं होता। प्रारम्भिक विहारों और चैत्यशालाओं का स्थ प्रायः सादा मिलता है। उनमें प्रतिमा-शिला तथा अन्य लकड़करण बहुत कम दिखायी पड़ते हैं।

परिचयी भारत में कई बड़े विहार मिलते हैं। बड़े विहार के दीप में चौथोंकरण होता था। उनके दो या तीन ओर चौड़ी छोटी कोठरियों भिक्षुओं के लिए होती थी। एक भिक्षु को प्राप्त एक कोठरी दी जाती थी। विहार के मूल्य द्वार के सामने बरामदा होता था। विहार को 'संघाराम' भी कहते हैं। चौनी याकी हुएन-साग ने कई भविल बाजे संघारामों का उल्लेख किया है। बड़े विहार के भूतल बाजे भाज में ५०० कोठरियों तक होती थी। दुर्भाग्य से सभतल मैदानों में निर्मित वह स्तूप अब नाट ही नहीं है। गोल-गृहों के विहारों को बेचने से बहुत विहार के स्वरूप का बन्दमान किया जा सकता है। परिकांक कोठरियों हृ पृष्ठ बगीकार मिलती है। इन कोठरियों का दरवाजा उनके दीप

मेरे न होकर प्राप्त: दीवार के एक किलारे होता था। भाजा, नासिक, अबन्ता, काले आदि स्थानों से विहार प्राप्त: चैत्यगालाओं से लगे हुए हैं। भाजा का एक विहार चैत्य से मिला हुआ है। इसकी तीन कोठरियों में एक-एक गम्या है तथा एक में दो गम्याएँ हैं। कोठरियों के भीतर सोने के निए पत्थर की गम्यी खोकियों का दी जाती थी।

मुख्य सैल-गृहों का संधिष्ठन वर्षों नीचे किया जाता है:

भाजा

भाजा की गणना नासिक-तरंग की गुहाओं के अन्तर्गत है। घोरघाट में काले से भार मील दक्षिण भाजा की गुहाएँ हैं।^१ यह स्थान है। पूर्व दूसरी शती के आठवें से बीड़-यास्तु का केन्द्र बना। इस यास्तु के अन्तर्गत विहार, चैत्यगृह तथा १४ स्तूपों का समूह है।

विहार—भाजा के विहार का मुख्यमण्डप साते ही सज्ज हुट नम्बा है। पूर्वी दिशा सात हुट और पश्चिमी साते ही फुट छोड़ा है। भीतर का मण्डप सोलह हुट सात दूष लम्बा है। उसके तीनों ओर गिरुओं के निए कोठरियों बनी थी, जिनमें से प्रत्येक में पत्थर की खोकी बनायी गयी थी। इस विहार में अकित प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विहार के मुख्यमण्डप के पूर्वी किनारे पर स्तम्भ तथा अर्धस्तम्भ हैं। उनके गोरे पर स्वो-पुण्य की कुपारोही प्रतिमाएँ अकित हैं। विहार के दो दूसरे उपर्यात्मनीय हैं: एक में दो परिचारिकाओं के माध्य रथारोही पुण्य दिवाया गया है। दूसरे में हाथी पर सवार अनुचर सहित एक भद्रपुरुष अकित है। इन सूतियों को ऋमणः सूपं तथा इन्द्र मानना उपयुक्त होगा। डॉ. अशवाल इन दोनों दूर्घों की सज्जाट भाग्याता हारा उत्तर हुठ के अभियान का मुख्य मानते हैं।^२ भाजा के इस महत्वपूर्ण विहार के मण्डप का मासने का भान काष्ठ वेदिका में मण्डित था, जिसमें नीचे श्वेत-द्वार थे।

चैत्यगाला—यह ५५ हुट लम्बी और २६ हुट लम्बी है। इसके बीचों ओर का प्रदक्षिणा-मारी संकरा है। मण्डप में लगे हुए प्रत्येक खम्भे की ऊँचाई ११ हुट है। स्तम्भ उपर शुके हुए हैं। उन पर विरल, नन्दिपद, श्रीवत्स आदि अलंकरण बने हैं। उन का वज्रपृष्ठ भूमि से २८ हुट की ऊँचाई पर है। उसमें लगी हुई धर्मियों नमानान्तर बड़ी है। सूपं तथा निवला भाग गोल तथा ऊपर का अण्ड भाग लम्बीतरा है। सूपं पर गहरे लत सहित काढ़-हमिका भी। भामने लकड़ी की दुतली लोट थी। नीचे का गर्दा खम्भों

१. डॉ. अश्वल, मुहिमट जेव देव्यलम, पुण्य ३-८।

२. अशवाल, वही, पुण्य १८१-८२।

पर आधित था, जिसमें तीन द्वार थे। इसी प्रकार के तीन द्वार, शाला की गिरफ्तारी दीवार में थे। जगते खम्भों के बीच में भी पहले काठ-वेदिका थी। चैत्य का द्वार या कोटिमुख भी काठ से बिल्पित था।

स्तूप—चैत्यशाला से कुछ दूर छोटे-बड़े १५ ठोस स्तूप हैं। इन सब में अक्ष के ऊपरी भाग पर वेदिका का अलंकारण है। कुछ स्तूपों में भीकोर अष्ट के ऊपर वेदिका-रहित हमिका है। सबसे बड़े स्तूप की छतपटिट का इष्ट पत्तचर का था, जो स्तूपों में काठ का। एक लघु स्तूप के ऊपर अलंकृत शीर्ष बना है।

कोडाने

यह स्थान काले से १० मील दूर है। यहाँ का विहार उल्लेखनीय है। उसमें वास्तुगत कई विशेषताएँ हैं।^१ बीम में खम्भों पर आधारित बड़ा मण्डप है, जो २८ फुट लम्बा और २३ फुट ऊँचा है। भीतरी मण्डप के तीनों ओर मिल्कुओं के तिए कोठारियाँ हैं। खम्भों पर गबर्पृष्ठाकार छत बनी है, जिसमें देवी धत्तियों का पंजर है। विहार का मूख्यमण्डप खम्भों पर आधारित है। उसके अगले भाग के भारपट्ट में भी खम्भों की टेक दी गयी है। मूख्यमण्डप के एक ओर वेदिकाघृत सुन्दर अलंकारण है। कोडाने का यह विहार ई० पूर्व दितीय शती में निर्मित हीनयानी चैत्यशालाओं और विहारों में उल्लेखनीय है।

पीतलछोरा

'महामायूरी' नामक प्रन्थ में इसका प्राचीन नाम 'पीतलगल्प' मिलता है। औरंगाबाद से चालिसांव की ओर जाने वाले मार्ग पर जलमाला नामक पहाड़ी है। पीतलछोरा की मुहर्ण इसी पहाड़ी पर अवृन्ता से दक्षिण-पश्चिम सौधे लगभग ५० मील दूर है। यहाँ कुल १३ गुफाएँ हैं।^२ प्राचीन काल में जो व्यापारिक मार्ग नासिक तथा शूरांगक से प्रतिक्षिण की ओर जाता था उस मार्ग पर यह स्थल पड़ता था। यहाँ भी गेतृ-गृह की रचना ई० पूर्व दूसरी शती में आरम्भ हुई। पहले यहाँ हीनयान मत का केन्द्र और फिर महायान का केन्द्र स्थापित हुआ। गुहा-संक्षय ३ चैत्यगृह है, जिसका विस्तार २६ फुट \times ३५ फुट है। उसका एक सिरा अद्वैत या वेदार भाष्मि बाला है। उसमें ३६ अल्पहतु खम्भे लगे थे, जिनमें से बाज़ केवल १२ लगे हैं। खम्भे ऊपर बूँक हुए हैं। छत में पत्तचर की धत्तियों बनी हैं। मण्डप के बीच की छत में पहले लकड़ी की धत्तियों

१. बर्जन, वही, पृष्ठ ८-११

२. वही, पृष्ठ ११-१२

थी। चैत्यशाला के स्तूप का नियमा पेरा ३० फुट का है। उसके ऊपर अण्ड भाग देटों का बनाया गया था, जो अब मर्ण हो गया है। स्तूप के भीतर अस्ति-अवलोक्तों से मृक्त मनुष्याएँ रखी गयी थीं। शाला का प्रदक्षिणा-भार्गे ४ फुट ११ इंच लंबा है। इस शाला में ११ शीढ़ियों का एक सीपाना भी है। उसके दोनों ओर सप्तश्लेषणों का अलंकरण मनोरंजक है। उसके आगे-बीछे पठ दिखाये गये हैं।

गृहा संख्या ५ विहार थी। उसका मूख्यमण्डप मूर्तियों से अलंकृत था। उसके ऊपर कोटिभूम्ब था। विहार में ६ चैत्य बवालों की पंक्ति बाज़ भी सुरक्षित है। वही की मिथुन मूर्तियों दोनों ओर है। स्तम्भों को भी विविध अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है। मण्डप में ३ गर्भगालाएँ हैं तथा भौतर मूख्यशाला है। मूख्य प्रवेश-द्वार की दोनों कुर्सी पर गजारोहिणी की पंक्ति बनी है। प्रवेश द्वार (५ फुट ४ इंच \times २ फुट ६ इंच) के स्तम्भों पर विविध अलंकरण उत्थापित हैं। कमलालना-लड्डी शीतों हाथों में सनातन कमल लिये हुए दिखायी दी गयी है। उन्हें दो हाथियों द्वारा अभिधिकत किया जा रहा है। मुफा संख्या ५-६ भी विहार है। इसमें नवों गृहों सबसे जाती है। उसके भीतर मण्डप के छत्ते का ऊपरी भाग वेदिकालंकरण से सुसज्जित है। संख्या १३ वाली गृहा चैत्यशाला है। उसका मण्डप २० फुट १० इंच लम्बा, १५ फुट लंबा तथा १५ फुट ऊँचा है। मण्डप की दो स्तम्भ-पंक्तियों को स्तूप के पीछे तक दिखाया गया है। मण्डप-वर्ती नारि सात फुट लंबी है। पार्श्व-बीचियों की लंबाई दो फुट है। जगते भाग में दोनों ओर दो तथा स्तूप के पीछे चार स्तम्भे बनाये गये हैं।

अजन्ता

चित्यकला-तथा मूर्तिकला की दृष्टि से मातृत्व लिल्य-केन्द्रों में अजन्ता का स्थान बहुत ऊँचा है। महीं वास्तुकला का विकास ई० पूर्वे दूसरी शती में ई० मातृत्वी शती तक मिलता है। प्रारम्भ से लेकर प्रायः दूसरी शती के अन्त तक अजन्ता हीनमान मत का केन्द्र था। ई० लौधी शती से मातृत्वी शती तक वही महापान मत का विकास हुआ। अजन्ता में कुल गृहाओं की संख्या २६ है। उनमें से चार चैत्यशालाएँ तथा लोप २५ चित्तार-नृहार्ण हैं।

चैत्यशाला—गृहा संख्या १० की अजन्ता की सबसे प्राचीन चैत्यशाला माना जाता है। यह गृहा ३६ फुट ६ इंच महीरी है। भीतरी भाग की लंबाई ४१ फुट ३ इंच तथा ऊँचाई ३६ फुट है। मण्डप तथा प्रदक्षिणा-भार्गे के बीच में ४६ स्तम्भों की पंक्ति है। स्तम्भों के बीच का भाग चौकोर तथा भीतर की ओर अवनत है। मण्डप के स्तूप-भाग के ऊपर

टेकी धनिया है, जो घम्भों के गोयों में निकली हुई विश्वायी गयी है। डोसाकार लत में पहले लकड़ी की बड़ी धनिया लगी थी, जिनकी चूलों के छिद्र अभी बने हैं। इस गुहा के बनाने वाले शिल्पियों ने इसे विविध अलंकरणों से भवित किया। गुहा के स्तूप का अधिष्ठान तो गोल है परन्तु उसके ऊपर या अगह लम्बीतरा है। यह इस बात का पर्याप्त है कि लगभग इन पूर्व प्रथम जाती में अद्वृत्ताकार स्तूप का अगह कुछ लम्बायमान होने लगा था।

गुहा संख्या ८ भी चैत्यशाला है। इसके मूलपट के भव्य में प्रबोध-द्वार के अतिरिक्त दो पालंग-वाले बने हैं। तीनों के ऊपरी भाग पर लकड़ा निकला है। उसके ऊपर सरीतशाला है, जिसपर १२ फूट की ओर लोटपूष है। सामने वेदिका का अलंकरण पर्याप्त रोचक है। भीतर का मण्डप बगाकार है, जिसमें सीधे खम्भे स्थगे हैं। संख्या १० तथा ८ की चैत्यशालाओं में शून्य-काल में ज्ञेन्स सुन्दर चित्र बनाये गये हैं।

विहार—बवन्ना में गुहा संख्या १२, १३ तथा ८ = विहार है। इनमें सबसे पुरानी गुहा संख्या १२ है, जो १०वीं शुहा की जैत्यशाला से सम्बन्धित थी। भिक्षुओं की संख्या में बृद्ध के कारण १३ संख्यक गुहा बावजूद में बनायी गयी। महायान-काल में ११ संख्यक गुहा का निर्माण हुआ।

चैत्यगुहा संख्या ८ के साथ विहार संख्या ८ का निर्माण हुआ। यह हीतपाल से सम्बन्धित है। संख्या १२ का विहार बावन्ना का अच्छा उदाहरण है। उसका सामने का भाग नष्ट हो गया है। अन्दर बाला मण्डप ३=फूट बगाकार है। उसके दोनों ओर खम्भों की पक्की है, जिसके ऊपरी भाग को पुहनाल-ग्रीष्मापटी से अच्छत किया गया है। मण्डप के दोनों ओर चार-चार कोठरियाँ हैं। उनमें विद्याम-चौकियों के साथ शिरोपद्मान या तकिये भी बनाये गये हैं। भिक्षुओं के इन कमरों में दरवाजों के किंवाह लकड़ी के बने हैं, जो अब नष्ट हो चुके हैं। संख्या १३ का विहार पहले भिक्षु-निवास था। बावजूद उसे बड़े मण्डप का रूप दिया गया। उसका आकार $1\frac{1}{2} \times 1\frac{1}{2} \times 3$ फूट है।

महायान-युग में उक्त पारम्परिक गुहाओं के अतिरिक्त आठ गुहाएं दक्षिण-पूर्व तथा १५ दक्षिण-पश्चिम की ओर बनायी गयी हैं। उनमें संख्या १६ और १७ विहार हैं तथा संख्या १८-२ चैत्यशालाएँ हैं। इन को अत्यन्त सुन्दर चित्रों तथा पाषाण-मूर्तियों से सजित किया गया।

बेदसा

यह स्थान काले से १० मील दक्षिण है। काल्प-शिल्प से किस प्रकार पाषाण-शिल्प की ओर कलाकारों का झुकाव हुआ, उसके उदाहरण बेदसा में मिलते हैं। यहाँ चैत्य-

जाताओं का मर्वेलक्षण सम्बद्ध रूप देखने को मिलता है। गुहाओं के मृशमण्डप में दो बड़े स्तम्भ मिलते हैं, जिनके दण्ड तथा छोर पर अलोककालीन स्तम्भों का प्रभाव परिवर्णित है। ये वाण-शिल्प के अनुकरण पर निभित हूए। मृहाओं के घुम्मे अठगहवू हैं। उनके निचले भाग पूर्ण कुम्भ पर आधारित हैं। स्तम्भों के छोरों की चौकी युगल वारोहियों से अलंकृत है। इन घम्भों के सामने कुछ अमरड चढ़ाने हैं। मृशमण्डप के ऊपर सम्भवतः मंगीतालाला थी। भूतल की गिरिली दीवार पर एक ब्रवेशद्वार पाया। गुहा के मृशद्वार का पूरा भाग वेदिका से अलंकृत है। उसी प्रकार भीरुमध्य में भी वेदिका-ब्रवेशद्वार दृष्टिष्य है। वास्तव-विहान की दृष्टि से बेहदमा की मृशमण्डप का मृशमण्डप सत्पन्त उच्चकोटि का है। उसकी तुलना काले के अलंकृत मृशमण्डप से की जा सकती है। वैत्य-शास्त्रा के अन्दर का मण्डप ५५२^१ कुट सम्भा तथा २१ कुट जीवा है। उसका निर्माण यादा है। घम्भों पर बेहल कुछ मार्गितिक चिह्न बने हैं। दोलावार छत में लकड़ी की भारी धूलियी लम्बी धों, जो जब नाट्यपाय है।

इस वैत्यशास्त्रा के समीप ही आयताकार विहार है। उसके चौकोर मण्डप का गिरिला भाग कुताकार है और तीनों ओर चौकोर कोठरियाँ बनो हैं।^२

नासिक

गोदावरी-तट पर स्थित नासिक का प्राचीन नाम 'नासिक्या' पाया। मुन्द्र प्राहृतिक स्थिति के कारण है। पूर्व दूसरी जाती में वही बोड धर्म का केन्द्र स्थापित हुआ। नासिक में कुल १९ गुहाएँ हैं। उनमें से १६ विहार तथा एक वैत्यशास्त्रा है।^३

विहार—नासिक के प्रारम्भिक विहार हीनदानी सम्बद्धाय के थे। वहाँ का प्राचीन नम विहार आकार में छोटा है। इसका भीतरी मण्डप १४ कुट लगाकार है, जिसके तीन ओर दो-दो चौकोर कोठरियाँ हैं। बाहरी मृशमण्डप में दो अठगहवू घन्मे लगे हैं। इस गुहा में जान्धवली राजा कुण्ठ का नेत्र उल्लिख है।

बड़े विहारों में यहला 'नहृपान विहार' कहलाता है। इसका भीतरी मण्डप ४० वर्गे कुट है। उसके तीनों ओर कुल १६ कोठरियाँ हैं। सामने मृशमण्डप में ६ घम्भे हैं। उसके दोनों मिरों पर एक-एक कोण्ठ है। मृशमण्डप के स्तम्भ काले-क्षेत्र है। नहृपान की पुत्री दधमिता ने अपने पति उषवदात (उषवदात) के साथ इस विहार के कोण्ठों का निर्माण कराया।

१. वर्जेस, वही, पृष्ठ २२-३

२. वर्जेस, वही, पृष्ठ ३४-४२।

उसका मुख्य विहार भीतमीणुत मात्रकर्णि का है। उसका वास्तु-विनास नहीं पान-विहार से बहुत भिन्नता-नुलता है। दोनों का मण्डप तथा कोठड़ों का अलाकार-प्रकार एक-जैसा है। इस विहार के खूबसे अधिक कलात्मक हैं।

तीसरा महाविहार पश्चिमी सातकर्णि का है। इसका मण्डप ५१ फुट लम्बा है। बाहर की ओर उसका विस्तार ३७२ फुट और भीतर की ओर ४४ फुट है। बारम्ब में यह विहार बुँद छोटा था। विहार के तीन ओर कोठरियाँ बनी हैं। मण्डप के निचले भाग में 'नमंगृह' है, जिसके खिलों का अलाकारण बहुत प्रभावपूर्ण है।

चैत्यशाला—इसका निर्माण ५० पूर्व प्रब्रह्म शती के मध्य भाग में हुआ। इसके भीतरी मण्डप के खूबसे सीधे हैं। मूख्यमण्डप दुलाला है और बलकुत वास्तु का बातक है। इस पर अनेक ब्राह्मी-लिंग उत्कीर्ण हैं, जिनमें दामकर्त्तव्यों के नाम लिखे हैं। यह 'चैत्यशाला' 'पाण्डुलेण' कहलाती है। इसके प्रवेशद्वार की परिष्कृत कला को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इसका निर्माण कुण्ठ कारीयरों द्वारा किया गया था। 'पाण्डुलेण' में भी संगीतशाला थी।

जूझार

पूना में ४८ मील उत्तर जूझार की बसती है। उसके सभीप लगभग १५० फील-गृह हैं। उनमें १० चैत्यशालाएँ हैं और ऐसे विहार। इसका निर्माण-काल ५० पूर्व छठीप शती से ५० प्रब्रह्म शती तक है। मूलियों का अभाव यहाँ के वास्तु में उल्लेखनीय है। यहाँ हीनगान बोल मत का एक बड़ा केन्द्र स्थापित था।^१

चैत्यशाला—जूझार की चैत्यशालाओं में से १, जायताकार है। उसकी छते चपटी है तथा मण्डप स्तम्भविहीन हैं। एक अन्य चैत्यशाला गोल आकृति वाली है। इस प्रकार का गोल-गृह पश्चिमी भारत में अन्यत्र नहीं मिलता।

जूझार की मुहाबों का सातवा कृप उल्लेखनीय है। केवल कुछ गुहाओं में ही घोलड़ी, कमल, गढ़, सर्व आदि का अलाकरण दिखायी देता है। 'गालमोद' की चैत्यशाला में उत्कीर्ण गज-लक्ष्मी की प्रतिमा अत्यन्त कलात्मक है। इस गुहा के कोर्टगूच्छ का अलाकरण भी सुन्दर है। गुहा का भीतरी मण्डप प्रदलिखा-गार्मि के स्तम्भों के बीच ३० फुट लम्बा और साड़े बारह फुट चौड़ा है। जूझार में भिक्षुओं की कोठरियों के प्रवेश-द्वार चैत्य-शालायन-अभिप्राय में युक्त है। जूझार में दो शीख पश्चिम कुल्या नामक लेण-नमूह हैं।

१. ब्रजेस, वही, पृष्ठ २६-३६।

उसमें ५ कोठरियों वाला प्रथम विहार, भोजनवाला तथा एक गोल चैत्यवाला है। इस गोल चैत्यवाला के भीतरी मण्डप का आयत २५ फुट ६ इंच है तथा वृत्ताकार छत १८ फुट ३ इंची है और १२ साँदे अठाहातु चम्भों पर टिकी है। चम्भों के बीच में स्तूप है। इस प्रकार की चैत्यवाला का अंकुर भरतुस-स्तूप की वेदिका पर मिला है। शुद्धार के लारों और तोरण-शुद्ध की वेदिका थी। शुद्धार के 'गोल लेज' नामक समूह में चार मण्डप-चैत्यवालाएँ हैं। इनका विस्तृत विवरण अधिक अलंकृत है।

काले

भोरपाट वहाँ में अनेक लैलगृह हैं। उनमें काले की गुहाएँ जला की दुर्गिट से विशेष सहृदय की मानी जाती हैं।^१ ये गुहाएँ सलाचली स्टेप्पन से लील सील दण्डिल में स्थित हैं। काले में एक भव्य चैत्यवाला तथा तीन विहार हैं। यह चैत्यवाला पश्चिम भारत में जीलवालतु का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके मुख्यमण्डप पर एक लेख उल्लिखी है जिसमें कहा गया है कि यह चैत्यवाला अम्बूद्धोप भर में सर्वोत्तम थी। इस जाला के विस्तृत अंग हैं :

- (१) दो छोड़े चतुर्मुखी स्तम्भ, जिनके ऊपर मिहरीपे हैं।
- (२) स्तम्भों पर आश्रित मुख्यमण्डप, जिसमें नीचे-ऊपर दो भूमियाँ हैं।
- (३) मुख्यमण्डप की संगीतशाला।
- (४) मुख्यमण्डप का भव्य कीर्तिमुख।
- (५) प्रधायवर्ती मण्डप।
- (६) दो विश्वीनं प्रदक्षिणा-मार्ग।
- (७) वृत्ताकार गंधगृह।
- (८) गंधगृह के मध्य का स्तूप।
- (९) स्तम्भों की अवलो। इनमें मात्र स्तम्भ स्तूप के चारों ओर हैं और १५-१५ स्तम्भों को मण्डप के दोनों ओर प्रक्षिप्तवद बड़ा किया गया है।
- (१०) दीलाकार छत।
- (११) छत के नीचे काल्प-गिरा की विशाल धर्मिणी।
- (१२) शाला के भीतर और बाहर उल्कोंगी अनेक ग्राही लेख।

इ० वायुदेववारण अप्रभात के अनुसार इस प्रकार की भव्य जाला की संज्ञा 'कीर्ति' ही। प्रारम्भ में जाले में भी कन्हेयों को भाँति दो बड़े कीर्तिस्तम्भ बने थे। इनमें से

१. वर्जेस, वर्षी, पृष्ठ २३-२५।

अब एक ही बात है। नेशनोंदायिका में जगमग ३००० हॉ पूर्व से इस प्रकार के विभाजन स्तम्भ-मन्दिरों के सामने बनाये जाते थे। निम्न के प्राचीन मन्दिरों के सामने भी ऐसे कीर्तिस्तम्भ होते थे। भारत के ऐसे स्तम्भों का उद्गम वैदिककालीन 'धूप' से हुआ। काले का स्तम्भ १० कुट जौना है। उसका दण्ड १६ पहल का है। शीर्ष पर पश्चिमोष-अलंकरण है। उसके ऊपर चौको है। सबसे ऊपर जार महामिह बैठे हुए दिखाये गये हैं। इस स्तम्भ की नृसना मारनाथ के अशोक-स्तम्भ से कोई ज्ञानकी है।

मुख्यमण्डप दो तल वाला है। उसका निवाला भाग अठाहलू दो खम्भों पर टिका है। ऊपरी तल को जार स्तम्भ तथा दो लघु पाल्म स्तम्भ बांधे हैं। मुख्यमण्डप १३ कुट गहरा और ४२ कुट सम्म्वा है। उसकी पिछली चित्त में महाकाव्य मिथुनों की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। कला की दृष्टि से इन मूर्तियों को उत्कृष्ट भाला गया है। मण्डप के दो पाल्मों में दो महाकाव्य-गवराज-मूर्तियाँ हैं, जिन्हें ऊपर लबूतरी पर खड़ा किया गया है। उनके नीचे लोचका अलंकरण है। मुख्यमण्डप के दोनों बासों को कीर्तिमुख-अलंकरण से सुसंचित किया गया है। इस मुहर के गाथ बनायी गयी कतिपय पाषाण-प्रतिमाएँ विशेष कलापूर्ण हैं। गहरे मुख्यमण्डप पर कान्ट-गिल की बनी संगीतबाला भी। इसी संगीतबाला से परवता नादमण्डप का क्षण धारण किया, जिसे हम एलोरा के फैलास मन्दिर आदि में पाते हैं। मछककालीन इमारतों में प्राचीन संगीतबाला की परम्परा जारी रही। मुख्यमण्डप के ऊपरी तल पर यीकों की ओर विभाल कीर्तिमुख बना है। ३० अष्टवाल ने इसे 'मूर्यद्वार' कहा है। इसमें हीकर प्रकाश और वायु का भीतरी मण्डप में सचार होता था।

भीतरी मण्डप में दोनों ओर गुन्दर स्तम्भों की पंक्ति है। स्तम्भों के शीर्ष भाग बल्लहत है। भीतरी मण्डप चैत्र के मूर्यद्वार से अन्तिम ओर तक १२४ कुट लम्बा है। १० कुट चौड़े प्रदक्षिणा-मार्ग सहित उसकी चौड़ाई ४५ है कुट है।

जिनारे स्तूप की चौको के ऊपरी भाग में बैंकिका अलंकरण है। स्तूप पर दण्डपुष्ट छत है। जाला को ढोलाकार छत तक से ४५ कुट छोची है।

काले का यह जैन-गृह परिवर्म भारत के बौद्ध वास्तु का निस्संदेह सबोत्तम उदाहरण है। इसकी दीवारों पर उत्तीर्ण अनेक शार्दूल नेत्र हैं। उनमें धृहरात राजा नहरान, उसके बामाता उपवदात आदि के नाम वर्णित हैं।

विहार—काले में तीन विहार हैं, जिनका निर्माण साधारण कोटि का है। विहार संख्या २ विभूमिक तथा संख्या ३ विभूमिक है। विहार संख्या ४ पर पारसीक देश के निवासी दानकर्ता हरफान का नाम दिया है,

कन्हेरी

बम्बई में १६ मील उत्तर, लोरीवली स्टेशन से ५ मील दूर, कन्हेरी है। इसका पालान नाम हृषणगिरि भी। इसकी पर्वत-शृंखला में बौद्ध चित्राओं के निषास के लिए कई सी गुहाएँ बनायी गयी थीं। ये विभिन्न आकार-प्रकार की हैं। हीनयाल सम्प्रदाय के अन्तिम समय में कन्हेरी के विहारों का बनाना आरम्भ हुआ। वाले की गुहाओं में कन्हेरी के गुहासमूह मिलते-जुलते हैं। जातवहन-जातकों के भाष्यपत्र में अधिकांश विहारों का निर्माण हुआ। उसके बाद १० बीघी जाती में यहाँ महायान धर्म के प्राबन्ध के साथ पुनः निर्माण-कार्य शुरू हुआ, जो इसकी जाती तक जारी रहा।¹

चैत्यसाला—यही का मुख्य चैत्यगृह काले के डंग का है। कन्हेरी के गृहमूख के सामने एक बड़ा आगम है। इस प्रकार का अगम जल्द नहीं मिलता। आगम के एक और जलकुत वेदिका है। इस पर ऊपर को हाथ उठाये हुए यज्ञ-प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ३० अश्वाल उन्हें 'भारपुत्र' संज्ञा देना उपयुक्त समझते हैं। वेदिका के अन्य जलकरणों में विभिन्न प्रकार के पशु, नताएँ आदि हैं। आगम के दोनों ओर पर दो घण्टे लगते हैं, जिनकी तुलना काले के कीरितसम्ब से को का लगती है। उनके गोपे पर यज्ञ-प्रतिमाएँ, जौकी तथा सिंह प्रदर्शित हैं। सबसे ऊपर सिंहों के मस्तक पर सम्भवत धर्म-चक्र बना था। सामने का बदामदा दी गत का है। उससे मूर्खमण्डप की जोधा का गम्भी है। मूर्ख-भाग पर दानकातांबों को विशाल मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। परबर्ती महायान-युग में कला की दृष्टि में मूर्तियाँ उत्तमी उच्चकोटि की नहीं मिलतीं।

भौतिकी मध्यवर्ष = ६२२ फुट लम्बा, ४० फुट चौड़ा तथा ३८ फुट ऊँचा है। मध्यवर्ष के भौतिक ३४ लम्बे हैं। उनके गोपों पर मूर्तियाँ लगी हैं। दोलाकार छत में अनेक भूतें कटी हैं, जिनसे पहले भारी धनियों अटकायी गयी थीं। मध्यमृह में १६ फुट ल्यास बाला गोल स्तूप है।

गांधार तथा वेगी वास्तु

गांधार-वास्तु

भारत के उत्तर-पश्चिम में प्रसिद्ध गंधार महाजनपद था। उसके बीच में बहने वाली गिर्घी नदी बनपद को पूर्वी तथा पश्चिमी दो भागों में बांटती थी। पूर्वी देश की राजधानी तक्षशिला तथा पश्चिमी भाग की राजधानी पुष्कलाबती थी। पश्चिम और उत्तर में काशुल और स्वात नदियों तक गंधार का विस्तार था। तक्षशिला और पुष्कलाबती बड़े व्यापारिक मार्ग पर स्थित थे। इन नगरों के अतिरिक्त नगरहार, स्वात, कापिपी आदि नगर गंधार के ग्राम्यकाल देश के अन्तर्गत थे। इस देश में मोर्योंका देश एक छठी भागी तक स्थापित और मूर्तिहाला का विकास हुआ। गंधार देश के विभिन्न स्थानों से कला के बहुसंख्यक अवशेष मिलते हैं। इस जनपद के प्राचीन नगरों की निर्माण-व्यवस्था भारत के अन्य प्राचीन नगरों-में सीधी थी। तक्षशिला में मोर्योंकालीन कई स्तूपों के अवशेष मिलते हैं। वहाँ के सिरमुख नामक स्थान में कुणाल-स्तूप है। अनुभूति है कि बौद्धोंके ने अपने पुत्र कुणाल की स्मृति में उसे बनवाया। यह क्रिमेधि बाकार का स्तूप है, उसका अधिष्ठान १०५ कुटुंब्या तथा ६३ कुटुं द इच चीड़ा है। स्तूप में यूनानी कोरिच शैली के स्तम्भ प्रयोग में लाये गये।

तक्षशिला देश में मांहरा-मुरादू तथा जीतिया के वास्तु-व्यवशेष आज तक सुरक्षित है। मोहरा मांहरा के स्तूपों पर मचकारी के सुन्दर अवलकरण है। वही कुणालकालीन विहार के अवशेष भी मिलते हैं। जीतिया में भी कुणालकालीन स्तूप तथा विहार प्राप्त हुए हैं। जीतिया के वास्तु पर भी मचकारी काम बाकीरहा है। पिष्ठल नामक एक अन्य स्थान पर ही विहार तथा एक स्तूप है। उन पर यूनानी की आयोगी शैली का प्रभाव दृष्टिक्षय है।

स्पायत्य की दृष्टि से तक्षशिला में सबसे महत्वपूर्ण व्यवशेष 'धर्मराजिक' स्तूप के हैं। उसे अब 'बीर स्तूप' कहते हैं। जैनी येथि पर बता हुआ यह स्तूप गोत्ताकार है। उसमें चार दिग्गांडों में चार सापान बसे हैं। इसके निर्माण में पत्थर का उपयोग किया गया।

निवले अधिकान से लेकर स्तूप के ऊरी भाग तक स्तूप को विविध अलंकरणों से सजाया गया था। दीवार के बाहरी भाग पर बहुसंख्यक आले थे, जिनमें बौद्धिसत्त्वों की प्रतिमाएँ रखी गयीं। स्तूप के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ था। स्तूप के पूर्व की ओर मिहरीपै-दृश्य पापाण-स्तम्भ का निवास भाग मिलता है। यह सम्म घूल रूप में सप्रादृ अलोक के नमन में बनाया गया था। कुपाण-जातक कलिक के समय में उसे विशाल आकार प्राप्त हुआ। इसका अन्तिम कायाकल्प है० पाँचबी शती में हुआ।

धर्मराजिक स्तूप के चारों ओर अनेक लघु स्तूप बने थे। उनके नष्ट होने पर उनके स्थान पर छोटे बौद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ। ये मन्दिर महास्तूप की ओर अभिगृह्णये। उनका निर्माण तीनशरी शती से लेकर पाँचबी शती तक हुआ।

विहार—धर्मराजिक स्तूप के समीण ही एक बड़ा बौद्ध विहार था। उसके लो अवलोक गिले हैं उन्हें देखने में जात होता है कि बीच में चौहे प्राणगत के चारों ओर कोठारियाँ बनी हुई थीं। नाम में भोजन-नृह भी था।

बीनी गात्रियों ने गंधार-शेख के वास्तु-स्मारकों का विवरण लिखा है। हुएन-नाम के समय में वही गोल स्तूप तथा चौकोर विहार विद्यमान थे।

हारीती का एक बड़ा मन्दिर 'चारसहा' (प्राचीन मूर्खलाकरता) में मिला है।

मध्यपूर्ण गंधार खेत्र से प्राप्त पापाण-प्रतिमाओं की संकला बहुत बड़ी है। उनके निर्माण में दूनानों कला का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। उनके कलिमों पर इन्हीं तत्त्व भी इन्द्रिय हैं। इस विस्तृत खेत्र में कई गात्रियों तक बहुसंख्यक प्रतिमाएँ गढ़ी गयीं। उनका विषय-वस्तु भूख्यता भारतीय है और वाह्य तकनीकी वेग दूनानी है। मिलेती परंपरा की बनी हुई इन बहुसंख्यक मूर्तियों के अतिरिक्त गंधार खेत्र में धातु तथा मिही की भी मूर्तियाँ लिमित हुईं।

बैंगी खेत्र

सातवाहनों के शासनकाल में वैदिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध और जैन धर्मों का भी उत्थान हुआ। पहिली भारत के विस्तृत खेत्र में सातवाहनों के राज्यकाल में कला का जो बहुमुखी उन्मय हुआ उससे इस बात की पूर्णिट होती है। सातवाहनों का आधिकार्य पहिलमों भारत के एक बड़े भूभाग के अतिरिक्त आध्र प्रदेश के अधिकांश खेत्र पर था। मोदावरी और कुल्ला-नदियों के बीच की उंची भूमि पर वैदिक धर्म के साथ बौद्ध धर्म की भी उपति हुई। सातवाहन-शासक तथा उनके प्रशास्त्र इच्छाकुन्त्र के राजाओं ने इस खेत्र पर दीर्घे काल तक शासन किया। इन दोनों धर्मों के अधिकार नरेश वैदिक

मतावलम्बी है। उन्नतु बोड और लैन धर्मों के प्रति उनमें आदर की भावना नहीं। उनके व्यापक दृष्टिकोण ने धार्मिक वास्तु तथा मूर्तिकला के विकास में बहुत योग दिया। आध्य क्षेत्र की प्राचीन राजधानी धार्मिकदक्ष पी, जो अमरावती के नाम से असिद्ध है। बोड चित्तु मध्यप्रदेश के रायपुर विसे के श्रीपुर (सिरपुर) नामक प्राचीन नगर से होकर सातामाहनों को राजधानी धार्मिकदक्ष तक लम्बी यात्राएँ करते हैं। वर्तमान अमरावती में बोड स्तूपों का निर्माण १० पूर्व २०० के लगभग आरम्भ हुआ। वही तथा वेगी लेत्र के अल्पूरु नामांकुर्मोदा, नेहवेगी, चटमाल जादि स्थानों में उस समय से लेकर १० तीसरी शती के अन्त तक अनेक बोड-स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ। इस लेत्र में बोड धर्म के कई सम्प्रदानी द्वारा जगत् केन्द्र बनाये गये। इन सम्प्रदायों के नाम प्राचीन अभिलेखों में फिलते हैं।

गुटपल्ले

गुटपल्ले नामक स्थान पर, जो दक्षिण कोसल से आध्य को जाते वाले भारी पर स्थित था, बोड स्तूपों का निर्माण १० पूर्व तीसरी शती के अन्त में आरम्भ हुआ। ये स्मारक लैल-गृहों के लैल में हैं। इनके लैलगंत दो विहार, एक दुर्लभ प्रकार का गोल विहार तथा कई एकाशमन स्तूप हैं। उनका निर्माण दक्षिण-पूर्व भारत की विशेष शैली का द्वारा तक है। गुटपल्ले में हीनवान मत का गोलाकार विहार १० पूर्व २०० के निकट बना। उसके लगभग ३५० वर्ष बाद महायान भौत के स्तूप का निर्माण वहाँ पर हुआ। इस दूसरे स्तूप में प्रतीकों का स्थान दुड़-प्रतिमा ने प्रहृण कर लिया।

उक्त दोनों लैल-गृहों में से छोटा विहार अब अधिक मुरझित दशा में है। विहार से मंत्रगम मुख्यमात्र है। पहाड़ी में काढ़ी हुई कई कोठरियां भी विश्वमाल हैं। ये आगे-गोछे बढ़ी हैं और आकार में भी छोटी-बड़ी हैं। भीतरी मण्डप साधारण है। स्थापत्य के अन्य अंग भी सारे हैं। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है इन लैल-गृहों का निर्माण सम्भवतः पश्चिमी लैल-गृहों से कुछ पहले सम्भव होता होगा। मुटपल्ले को हीनवानी चैत्यकाला बालवर की सोमग्र अर्घि और सुदामा-मुफ्त से बहुत फिलती है। भीतरी मण्डप के बीच में गोल स्तूप बना है, जिसके चारों ओर संकरा प्रदक्षिणा-पथ है। कलर चरवर्णिमा छत है। इन गालों का ल्यास १८ फुट है तथा उनकी ऊंचाई १५ फुट है। उच्चकी छत गोल अवाकाश भी। इस लैल-गृह के निर्माण में पर्णवाला के 'दाक्षकं' का प्रभाव लिरितवित होता है।

गुटपल्ले में दूसरी-तीसरी शती में भी निर्माण-कार्य होता रहा। इस गाल में निर्मित चैत्यकाला चैत्यकाला तथा अर्धनीलाकार स्तूप प्राप्त हुए हैं।

विद्याव्यापकतम के सभीए संधारण्य भाषक स्थान पर भी बौद्धों ने अपना केन्द्र बनाया। वहाँ एकाग्रमक स्तूप, चिशुलों की कोठरियाँ तथा वृत्तायत जैत्रशालाएँ मिली हैं। स्तूपों का आधार बड़ा है। एक स्तूप का व्यास ६५ फुट है। वही परवर्ती काल में असंकृत पाण्डाजों तथा यको इंटों के स्तूप बने। इस स्थान पर तिमाहि-जाये पलतवों के समय तक होता रहा।

गोली

गुदूर जिला में कुल्ला नदी की जात्या कोलाक नदी के ठट पर गोली नामक स्थान है, जो नामार्जुनीकोंडा से १० मील दक्षिण है। यहाँ एह स्तूप के अवशेष मिले हैं, जिस पर सफेद पाण्डाज का प्रयोग जिलापट्टू के स्प में किया गया। गोली की अनेक कलापूर्ण मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। एक चित्रापट पर स्तूप का अंकन है। सम्भवतः वह गोली के पार्श्वीत स्तूप का परिचायक है। उसका तिमाहि तीन मेंचियों के जड़िगाढ़ान पर दियाया गया है। स्तूप के निचले भाग में सज्जापट्टू है, जो कलापूर्ण जिलापट्टू से निर्मित है। स्तूप का अपह लम्बोतरा है। उस पर बैदिका सहित हुमिका के अतिरिक्त उससे तिकटी हुई दो छवियाँ भी अंकन अत्यन्त मनोहर हैं। गोली में इस प्रकार के स्तूप का निर्माण ३० दूसरी लाती में हुआ। उसमें महास्तूप के कई लक्षण विद्यमान रहे होंगे।

भट्टिप्रोलू

यहाँ १२२ फुट ऊँचा महास्तूप बनाया गया जिसके नीचे का व्यास १५= फुट था। इस स्तूप का तिमाहि ३० पूर्व नीसरी जाती में हुआ। उसमें बड़ी आकार बाली इंटे लगायी गयी। इस स्तूप का अण्ड भाग सौनी स्तूप-जैसा था। भट्टिप्रोलू से एक महत्वपूर्ण बाह्यी लेघ सहित धातु-मंजूरा मिली थी। वहाँ पर बौद्ध चिह्नार भी थे, जो अब नष्ट हो गये हैं।^१

घण्टशाल

इसका प्राचीन नाम 'कण्टकालू' था। यहाँ के स्तूप का आकार-प्रकार भट्टिप्रोलू-जैसा था। स्तूप का व्यास १२२ फुट ऊँचा ऊँचाई १११ फुट थी। यहाँ एक गर्भ-स्तम्भ भी निर्मित था, जिसके चारों ओर २२ फुट व्यास का एक अन्य स्तम्भ था। बाहरी स्तम्भ के चारों ओर ५६ फुट व्यास जाती गोल दीवार बनी थी। स्तूप को कलापूर्ण अवृत पाण्डाजों से असंकृत किया गया था।^२

१. विस्तार के लिए दें ० रो, लाल्य इंडियन बुलिंगस्ट एंटिक्विटी, वू० ३-१३।

२. वहाँ, वू० ३२-४३।

जगद्यपेटृ

अमरावती से ३० मील उत्तर-नाशिंह में स्थित जगद्यपेटृ में अनेक स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया। उनमें ईटों तथा सफेद पत्तर का प्रयोग है। इस स्थान पर प्रधानतः इश्वाकु राजाओं ने निर्माण-कार्य कराया। उनके पश्चात् पल्लवों ने उसे अपने बड़ाया। यहाँ का मुख्य स्तूप ने १३ फुट व्यास का था। उसके चारों ओर १०३ फुट चौड़ा प्रदक्षिणा-पथ पूर्व ३ फुट दूर चौड़ा एक लघु मार्य था। स्तूप के चारों ओर महावेदिका का निर्माण किया गया। स्तूप के बाहिरीत में निकले विभिन्नान को उल्लिखित किलापट्टों की सज्जापट्टी से भूषणित किया गया। ऊपर के भाग पर मचकारी का काम था। बीच में पौर्व आर्यक स्तम्भदूक चार मंजूर तथा हमिका थी। आर्यक स्तम्भों तक पहुँचने के लिए सोपान-मार्य थे। मध्य में सधुवेदिका सहित इसरा प्रदक्षिणा-पथ था। स्तूप के बहिर्भाग को अत्यन्त कलात्मक ढंग से मणित किया गया।

अमरावती

गुप्तों से १८ मील दूर कृष्णा नदी के दाहिने तट पर अमरावती का प्रधानत बौद्ध स्तूप था। वहाँ से जाग्रा मील पश्चिम 'धरणीकोट' नामक स्थान है। वहाँ सातवाहनों की राजधानी धान्यकटक थी।

अमरावती के महास्तूप का पता १३८७ ई० में कनेल मैकेज्डी ने लगाया। इसके पूर्व स्तूप के किनान ही कलापट्टि जिलापट्टि अमरावती से गायब हो चुके थे। मैकेज्डी ने स्तूप के बास्तु तथा मूर्तियों का नमीर अध्ययन किया तथा उसके लिए चित्र बनाये। १३८० ई० में बाल्टर इलिष्ट ने स्तूप के एक भाग का उत्कलन कराया, जिससे अनेक मूर्तियों पापत हुईं। अमरावती की कुछ मूर्तियों जिटिंग ब्यूडियम में तथा अधिकांश अब मद्रास संग्रहालय में हैं। इन कला-कृतियों तथा अमरावती से प्राप्त वरुमंडक जिलालेखी के आधार पर यहाँ के स्तूप का इतिहास प्रस्तुत हो सका है। अमरावती में एक समर्पित बौद्ध संघ था, जिसके सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। यहाँ के बौद्ध-मंथ का नाम 'चैत्यक' था। इस संघ ने अमरावती के महाचेत्न के निर्माण तथा रथ-रथाव का लम्बे समय तक प्रबन्ध किया।

अमरावती के स्तूप का मुख्य ढंग स्तूप की भूतनीय महावेदिका थी। वेदिका-स्तम्भों को ईट की बौकियों पर स्थापित किया गया। ऊपर उण्ठोव के पत्तर थे। दो-दो स्तम्भों के बीच तीन-तीन मूर्तियाँ (आड़े पत्तर) थीं। महावेदिका का व्यास १६३ फुट था, जो भव्यत के व्यास से लगभग दुगुना होता है। वेदिका का सम्पूर्ण वेदा लगभग ६००

फुट था। वेदिका-स्तम्भ में से प्रत्येक की ऊँचाई नो फुट तथा चौड़ाई दो फुट वस इत है। स्तम्भों के ऊपर उण्णीषपट्ट की ऊँचाई २ फुट = ६८ चौड़ाई है। उण्णीष की मुद्रेर गोल है। वेदिका की चारी दिशाओं में २६ फुट चौड़ा एक लौरण-द्वार था। वहाँ के तीरोंमें बैठेरिया नहीं थीं। पूरी महावेदिका में १३६ खंभे तथा ३४८ गोली के पश्चर थे। पूरी दलीय की लम्बाई ८०० फुट थी।

इस महावेदिका पर जातक-दूर्यों तथा बुद्ध के नीचन की घटनाओं को कलात्मक दृग में विवित किया गया है। अमै-याता, पूजा आदि के भी अनेक दृश्य हैं। मूर्तियाँ कमल-नुसारों से अलगत है। द्वारलम्ब वेदिका पर जार गिहों की गृहितियाँ बैठी हुई विशायी गयी हैं।

स्तुप का भीतरी प्रवक्षिणा-मन्त्र ५ फुट ऊँचा था। एक छोटे सोणान-मार्ग से वहाँ तक पहुँचते थे। तोरण-द्वार के पृष्ठ भाग में स्तुप से निकलते हुए आयंक मंत्र थे। प्रत्येक मंत्र की लम्बाई ३२ फुट और चौड़ाई ६ फुट थी। स्तुप के अधिष्ठान से बे २० फुट की ऊँचाई पर बनाये गये थे। आयंक मंत्र पर तभी हुए जिलापट्ट पर बुद्ध एवं नामराज का प्रदर्शन बड़े प्रभावोत्तादक ढंग से किया गया है। प्रत्येक आयंक के नामने किनारे पर ५ अठपहलू खंभे थे। उनमें से प्रत्येक की ऊँचाई १० फुट से १५ फुट थी। स्तम्भों पर बोधिचूड़, धर्मचक्र, स्तुप आदि के अलंकरण हैं। अनेक जिलापहुँडी पर महास्तुप तथा उसके विभिन्न भंगों की आकृतियाँ उल्लिखी हैं। उनके जाधार पर अमरावती के महास्तुप के अगोपागों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। अमरावती का महास्तुप भारतीय वास्तु की एक उत्तमता कृति है। चारखंड के विविध तर्जों का मनोहारी समन्वय इस महान् इति में दर्शनीय है।

नागार्जुनीकोंडा

बंगी देश में सुदूर जिला में कृष्णा नदी के दाये तट पर स्थित नागार्जुनीकोंडा का भव्य स्तुप है। अमरावती से इसकी सीधी दूरी केवल ६० मील है। इस स्तुप के एक ओर कृष्णा नदी तथा दो तीन ओर नागार्जुन की पहाड़ियाँ हैं। इनका गांवको ने इसकी प्राकृतिक स्थिति को देखकर इसे राजघानी के लिए उपयुक्त समझा। इन राजाओं के लेखों में नागार्जुनीकोंडा का नाम 'विजयपुरी' किया गया है। व्यापारिक दृष्टि से इस स्थान का विशेष महत्व था।

नागार्जुनीकोंडा का वर्ता १८२६ ई० में लगा। १८२७ तथा १८४८ के बीच कई बार वहाँ उत्तरानन्द कराये गये। इस उत्तरानन्द से अनेक बहुमूल्य अवशेष प्राप्त हुए।

यहाँ अनेक छात्रों अभियान प्राप्त हुए हैं, जिनके आधार पर नागार्जुनीकोटा के बास्तु के सम्बन्ध में अनेक बताए जाते हुए हैं। इन लेखों से पता चलता है कि इस्थान के राजाओं की राजनीय बोड़ धर्म के प्रति विशेष अद्वाल थी। उन्होंने बोड़ स्मारकों के निर्माण में बड़ा वोग दिया। लेखों से वह भी जात हुआ है कि यहाँ दो बड़े विहार थे—एक का नाम 'कुलविहार' और दूसरे का 'सीहल विहार' था।

नागार्जुनीकोटा का महास्तूप गोलाकार था। उसके भीतरी भाग को मिट्टी, इंट के टुकड़ों आदि से भरा था। फिर इंटों से उसे आवेषित कर दिया था। तो इस लगावी गर्भी उनका आकार २० इंच \times १० इंच \times १० इंच था। स्तूप के ऊपरी भाग को बाहर में उल्लीणे गिलापट्टों से अलंकृत किया था। महास्तूप का व्यास १०६ कुट तथा कैमाई लगभग =० कुट थी। भूतल यर १३ कुट जोड़ा प्रदक्षिणा-गम्भ था। इस पथ के चारों ओर चेदिका थी। अमरावती की तरह यहाँ के चेदिका-सत्त्वाओं का आश्रमण भी देखी की जोखियाँ थीं। जायेक-मंडप २२ कुट लम्बा तथा ५ कुट चौड़ा था। इसी के समतल ३ कुट जोड़ा मध्यवर्ती प्रदक्षिणा-गम्भ था। उसे सघवेदिका से चेष्टित किया था। लकड़ के ऊपर हुमिका थी, जिसके बीच में जारी गिरा-विन्दि लची थी। उसके ऊपर तीन छत थे। उत्खनन से पता चलता है कि स्तूप के भीतर तल-विन्यास में ५० बड़े कोठक थे। एक कोठक से घातु-मंजूषा प्राप्त हुई थी। स्तूपों में घातु-निवान की यह प्रणाली नागार्जुनीकोटा के अन्य स्तूपों में भी मिली है।

महास्तूप के अतिरिक्त वहाँ कई छोटे स्तूप भी मिले हैं। सबसे छोटे स्तूप का व्यास केवल २० कुट है। इन स्तूपों को भी उल्लीणे सज्जा-गटियों से मणित किया था। कई लघु-स्तूप विलकृत मादे मिले हैं।

अन्य स्थापत्य—नागार्जुनीकोटा के उत्खनन से वहाँ के प्राचीन नगर-विन्यास का भी पता चलता है। प्राचीन नगर को प्राकार तथा परिवार से सुरक्षित किया था। प्राकार की क्षेत्राई १६ कुट थी। गहले वह मिट्टी का बना था। बाद में उसे पाली इंटों का बनाया था। उसकी जोड़ाई ८ कुट में १४ कुट तक है। नगर के चारों ओर बनायी गयी परिवार १२ कुट गहरी थी। उसको जोड़ाई विभिन्न स्थानों में १४ से ११२ कुट तक मिली है। राजप्रासाद के सीरण-द्वार, मैनिकों के लिए कोठरियाँ बना एक जलनहस्त पुष्करिणी भी मिली है।

नागार्जुनीकोटा में हाल के उत्खनन में प्राप्त मल्लशाला विशेष उल्लेखनीय है। उसका निर्माण राजमहल के उत्तर की ओर किया था। इस मल्लशाला के पश्चिमी

ओर एक गण्डप था, जहाँ राजसमे के सोम बैठकर मल्लों की कुशितपा देखते रहे होंगे। इस मल्लसाला को नम्बाई २०८ कुट तथा चौडाई २५८ कुट थी। उसमे उत्तरने के लिए चारों ओर सोपान थे, विस्तर बैठने के लिए दो कुट चौड़ी सीढियाँ थीं। पूरा विषय एक घर का बनावा है कि चारों ओर चौड़ा स्पर्शन था, जहाँ अन्य दर्जीक बैठते थे।^१

१. ये सो लेखोंप वास्तु के विस्तृत विवेचन के लिए देव अग्रवाल

बही, पृ० २७७-३०३।

गुप्तकाल

इसकी दूसरी शती को समाप्ति से पूर्व ही उत्तर भारत में कुषाण-साम्राज्य का अन्त हो गया। उसके कुछ समय बाद दक्षिण भारत में सातवाहन-साम्राज्य की समाप्ति हुई। तीसरी शती के मध्य में वाकाटकों की शक्ति का उदय हुआ। धीरे-धीरे वाकाटकों ने दक्षिण कोसल तथा महाराष्ट्र के उत्तरी भाग पर अधिकार स्थापित कर लिया। दक्षिण में इकानुओं के बाद एवन्डों ने अपनी शक्ति का विकास किया।

गुप्तवंश—तीसरी शताब्दी के अन्त में प्रधान तथा उसके आसपास एक नयी शक्ति का उदय हुआ। यह गुप्त-वंश था। इसका यह नामकरण इस वंश के प्रथम राजा शैशवपति के नाम पर हुआ। इसका यह नामकरण इस वंश के प्रथम राजा शैशवपति के नाम पर हुआ। इसका यह नामकरण इस वंश के प्रथम राजा शैशवपति (३१८-३५५ ई०) हुआ। उसने वैशाली के निचलविंशति की पूर्वी कुमारदेवी से विवाह किया। निचलविंशति नामों की विश्वायता से चन्द्रगुप्त ने गाढ़लिपुर पर विजय प्राप्त की और 'महाराजाविश्वाज' उपाधि प्राप्त की। गुप्त-वंश में समुद्रगुप्त (३३५-३७५ ई०) चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' (३८०-४१३ ई०) तथा स्कन्दगुप्त (४५२-४६७ ई०) वडे प्रतापी शासक हुए। समुद्रगुप्त ने उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक राज्यों को जीत कर अपनी विजय-नरताका कहरायी और दिग्भिरय के अनन्तर अक्षरमें विजय-नरताका कहरायी। उसके यशस्वी गुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने सौराष्ट्र, मुङ्गरात तथा उज्ज्वलियों के बाजार राज्य को जड़ से नष्ट कर दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उसके पूर्व कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में वास्तु और मृति-कला का विकास हुआ। समरभग ४५० ई० में मध्य एशिया के हूण लोगों ने गुप्त-साम्राज्य पर आक्रमण किया और कुछ काल तक उन्होंने ग्रालियर के आसपास अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कुमारगुप्त प्रथम के पूर्व स्कन्दगुप्त ने हूणों से कड़ा जोहा लिया और उन्हें परास्त किया। परन्तु हूणों के दुर्दृष्ट आक्रमण के कलम्बकर्य मृप्त साम्राज्य की जड़ हिल गयी। स्कन्दगुप्त के बाद बृघगुप्त (५०५-५८५ ई०) और भास्मगुप्त (५३५-५९० ई०) नामक शासक हुए। लगभग ५२० ई० में गुप्तवंश की प्रधान शासकों का अन्त हो गया। छठी शती के मध्य में वाकाटक-नरता भी समाप्त हो गयी।

मुप्तकालीन के समय से बाकाटक तरेला मृत्यु-साम्राज्य के साथ अपने अच्छे सम्बन्ध बनाये रहे। बाकाटक में ३०० ई० के लगभग मध्यशताब्दी नामक व्यवित से बादमा राज्य की स्थापना की। यह राज्य मृप्त-साम्राज्य के साथ-साथ उभयति करता रहा।

मृप्त-साम्राज्यकाल भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में धार्मिक, आधिक, सामाजिक, कलात्मक एवं साहित्यिक लेखों में अभूतपूर्व उत्तराधिकार हुई।

भारत के तत्कालीन राजवंशों में गुप्त, बाकाटक, कवर्म तथा पल्लव-वासियों ने देश के शिल्प एवं वाणिज्य की उत्तरति में बड़ा योग दिया। इस काल में देश धन-धार्य से सम्पन्न हो गया। व्यावसायिक नगरों की मंजुष्या में काषी वृद्धि हुई। अब भर्तीच, पैठण, विद्यालय, उच्छविनी, तत्त्वज्ञान, मधुरा, अहिन्दुता, कौलान्वी, आवस्ती, व्योध्या, काशी, वैष्णवी, पादलिपुत्र आदि कितने ही बड़े नगर विद्यायी पड़ने लगे। मेरे नगर वहे व्यापारिक भागों पर स्थित हैं। देश में अनेक प्रकार के विद्या उत्पत्ति पार है। तत्कालीन विवाहरत्नों का काम, लोहा, तोता, लकड़ी तथा हाथीदाल के उद्योग बहुत बढ़े-बढ़े हैं।

इस काल में चारोंनीतिक स्थिरता तथा आधिक समूद्रिने-साहित्य, वास्तु, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नाट्य आदि के उन्नयन वा भाग्य प्रवर्षस्त कर दिया। गुप्त व भारदां तथा सम्बत्कालीन अन्य राज-वंशों से ललित कलाओं को अनेक दंगों से प्रोत्साहित किया। ईरान, लघु एविया तथा मूनान के साथ भारत के घमिष्ठ सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। इन देशों में भारत के साथ जातानगर बहुत बढ़े गये। तत्कालीन भारतीय वास्तु और मूर्तिकला का मुख्य प्रेरणाक्रम प्राचीन भारतीय परम्परा थी। परन्तु उसमें ईरान, पश्चिमी एजिया तथा मूनान के अनेक तरफ भी प्रहृण कर लिये गये। इन तत्वों को भारतीय विवाहप्राचा के साथ समन्वित कर उन्हें सामिल तथा मूर्तिकला के भाग्यमां द्वारा नवीन रूप प्रदान किये गये।

मृप्तकालीन वास्तु में ईंट-तथा गत्पर का प्रयोग पिछले दूसरी शताब्दी अधिक होने लगा। वास्तु के स्थायी भाग्यम के लिए वास्तुमें अधिक उपयुक्त तथा

गुहा-स्थापत्य

मृप्तकालीन गुहा-वास्तु के कलिष्य अच्छे उदाहरण विदिग्दों के पास उदयगिरि में उपलब्ध हैं। वहीं भी अधिकांश गुहाएँ भागवत धर्म से सम्बन्धित हैं। उदयगिरि में प्राप्त लेखों से गता चलता है कि इन गुहाओं का निर्माण लन्दणगृह इतीय तथा कुमारयूत प्रथम के समय हुआ। इन गुहाओं में तथा सीढ़ी के गृप्तकालीन मन्दिर में औरों, साथे संभगृह तथा उसके सामने स्तम्भों पर आधारित बरामदा या लघु मप्रवर्ष मिलता है।

गुरुगृह के भीतर की छत प्रायः कमलांकृत मिलती है। नद्य प्रदेश के तिमवा (जिला जबलपुर) में भी मन्दिर का गेंगा ही नाम रख मिला है। उसके द्वार-नलन्धों पर नदीदेवता (गंगा-नद्यना) का आलेखन है। उदयगिरि की प्रसिद्ध बराह-मृहा में गंगा-यमुना की हाथों में पट धारण किये हुए अकित किया गया है। चौथी छती के अन्त में निर्मित उदयगिरि के गुहा-द्वारों को द्वार-रक्षकों की प्रतिमाओं से उत्कीर्ण किया गया। वहाँ वीर नदी गृहा तथा १७ संख्यक गृहा में भीतरी छत पर अलंकृत कमल-रक्षना दर्शनीय है। एरण (जिला सामर) की प्राचीनिक गुलकालीन मन्दिर की छते भी इस प्रकार के अलकारण से सूचोंभित थीं। उनके अवशेष हाल में मृगे एरण में देखने को मिले। उदयगिरि की संख्या ५ गृहा का निर्माण लगभग ४०० ई० में हुआ। उसमें गुहा-द्वार पर नीचे आद्य-पुरुषों को तथा स्तन्म-लीढ़ों पर नदीदेवताओं को चित्रित गया है। इसकी तुलना तिमवा के उक्त मन्दिर से की जा सकती है।

मुप्तकालीन गुहा-बास्तु के कुछ ही उदाहरण बते हैं। परन्तु इस काल में निर्मित याणाण तथा ईंट के बने मन्दिरों की संख्या बहुत बड़ी है। मुप्तकाल में जौसी विशेष के देवगढ़ से लेकर घूर्वे में नद्य प्रदेश के जबलपुर विशेष तक के भूभाग में बहुमत्ताक मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें देवगढ़ का दग्धावतार मन्दिर, एरण में नृसिंह तथा विष्णु-मन्दिर, नवना (जिला पट्टा) का पार्वती मन्दिर, भुमरा तथा खोल (जिला सतना) के मन्दिर और तिमवा (जिला जबलपुर) के मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं। कालक्रमानुसार इनका वर्णन नीचे दिया जाता है:

एरण

मुप्त सम्भाट समुद्रगुप्त को, सामरिक जभियानों के कारण, मन्दिरों के निर्माण के लिए शायद ही समर्प मिला हो। परन्तु उसके यशस्वी पुत्र परमभागवत लन्द्रगुप्त विज्ञामादित्य ने मन्दिरों तथा प्रतिमाओं के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। उसके समय में नृसिंह तथा बराह के मन्दिरों के अतिरिक्त विष्णु का मन्दिर भी बनवाया गया। महाविष्णु की जौ कलरना मुप्तकालीन साहित्य में मिलती है, उसका मूर्त्त काष्ठ एरण के उक्त मन्दिरों में मिलता है। इन मन्दिरों में सापाट छत वाला गुरुगृह तथा स्तन्म-पर बाघारित लघु-मण्डप चाहे। इनके अनेक अवशेष हाल में ग्रात हो रहे हैं। इनमें नज़, मिह तथा तारीमुख-वभिप्राय से अलंकृत स्तन्म-लीढ़े उल्लेखनीय हैं। एरण के बत्तमान विष्णुमन्दिर का गुरुरुद्वार गुप्त-काल के पश्चात् हुआ।

देवगढ़

लाली जिला की लखियापुर तहसील में लखियापुर से २३ मील पश्चिम देवगढ़ है। यह बैत्रीघाट (बेतवा) नदी के बिनारे स्थित है। यहाँ का इतावतार विष्णु-मन्दिर गृष्णकालीन वास्तु का उत्कृष्ट उदाहरण है। मन्दिर का ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। मन्दिर की तथा छोड़ी कुर्सी पर बना है। उसके निर्माण में स्थानीय पाषाण का उपयोग किया गया। मन्दिर में गंगेशुभ्र के ऊपर का भाग प्रारम्भिक शिखर का दोताक है। अब सारांट छोड़ का स्थान मेहंगिश्वर लेने लगता है।

देवगढ़-मन्दिर के गंगेशुभ्र का प्रवेश-द्वार अत्यन्त कलापूर्ण है। उसे द्वार-नक्षकों, नदी-देवताओं आदि की मूर्तियों से अलंकृत किया गया है। द्वार-स्तम्भों पर लता-बत्तकरण आदि का आलेखन है। भिरदल की विभिन्न लाघवाओं को मनोरम अलंकरणों से विभिन्न किया गया है। उपरीय के मध्यभाग में चतुर्मुखी विष्णु भगवान् को आसीन विद्याया गया है। मन्दिर का वहिभारि भी पताकली, कीर्तिमूर्च आदि अभिप्रायों से सुसज्जित है। दीपारों पर लोकशायी विष्णु, नर-नारायण, गणेशमोक्ष आदि दृश्यों को अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से उत्कीर्ण किया गया है। रामायण तथा कुण्ड-जीला के अनेक दोषक दृश्य भी प्रदर्शित हैं। परतीर्तों देवगढ़ियों में देवगढ़ के अनेक तत्त्व परिलक्षित हैं। दामोदरार मन्दिर गृष्णकाल का प्रारम्भिक शिखर-मन्दिर है। उसका निर्माण-काल ई० पौच्छी जाति का पूर्वांड है। देवगढ़ की पहाड़ी पर, अतेक जैन मन्दिरों तथा कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण गृष्णकाल से लेकर पूर्व-मध्यकाल में जन्त तक हुआ। जैन वास्तु एवं मूर्तिशिलान के लिकाम की दृष्टि से इन स्मारकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

देवगढ़ के इतावतार-मन्दिर के बाद जिन मन्दिरों का भारत के विभिन्न भागों में निर्माण हुआ वे बिनमड (जिला एटा), गड़ा (जिला इताहावाड़), भीतरी (जिला मालीपुर), कहाव (जिला देवरिया) के मन्दिर हैं। इनका निर्माण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय से लेकर स्कन्दमूल के समय तक होता रहा। ये मन्दिर अब नष्ट हो गये हैं और उनके देशे भग्नावलीय भी उपलब्ध नहीं हैं जिनके आधार पर उन मन्दिरों का यथार्थ का निर्धारित किया जा सके। अभिलेखों के बनुमार दामोदरपुर (बंगाल), एरण तथा व्यालियर में पौच्छी जाति के अन्त में मन्दिरों का निर्माण हुआ। एरण के लेख से जात होता है कि गृष्ण-सम्भाट वृषभगृष्ण के समय ४८५ ई० में भगवान् विष्णु के मन्दिर के सामने व्याल-नतम्भ का निर्माण किया गया। गढ़-जीर्ण से अलंकृत ४७ कुट झेजा यह नतम्भ जाज भी एरण में विद्यमान है।

नवना-भुमरा

विश्वासेन में नवना नामक स्थान पर पौच्छी शती के अन्त में पार्वती-मन्दिर का निर्माण हुआ। इस मन्दिर को विशेषता यह है कि यह एक ऊँची कुर्सी पर बना है और उसके गर्भ-गृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ को ऊपर आ-ढाढ़ित कर दिया गया। इस मन्दिर के निर्माण को देखकर बौद्ध वैत्यागामीओं का स्मरण हो जाता है, जिनमें गर्भगृह की ऊँची कुर्सी पर विद्याने की परम्परा थी। सतना में भुमरा नामक स्थान पर शिवमन्दिर का निर्माण पौच्छी शती के उत्तरार्ध में हुआ। उसमें गर्भगृह का प्रवेश-द्वार तथा मण्डप प्रारम्भिक गुल-मन्दिरों की अपेक्षा अधिक बलंकृत है।

इत्य मतना विले के ऊंचहरा (प्राचीन उच्चकाल) से कुछ दूर विपरिया नामक स्थान पर गुलकालीन मन्दिर की खोज की गयी है। इस मन्दिर के उत्तरांग का कार्य १२६० में इन पवित्रियों के उत्तरका द्वारा कराया गया। मन्दिर में गर्भगृह के ऊपर की छत गहरी मिली, उसन्तु गर्भगृह का बलंकृत द्वार निजा है। द्वार-स्तम्भों तथा सिरदर्श पर पूर्णपट, पताकाली, छार्जुन-बली, तरमूच, आद्रमूल जादि के बलंकृत हैं। तराह-उवतार, तवयह जादि भी द्वार पर अक्षित हैं। स्तम्भों के बीचे वरविद्युमा अभिप्राय से अतंकृत है। यह मन्दिर भगवान् विष्णु का था। विष्णु की प्रतिमा मन्दिर के समीप से ही प्राप्त हुई है।

जबलपुर विले के भड़ी नामक स्थान पर एक अम्ब मुप्त-मन्दिर की खोज की गयी है। इसके गर्भगृह के अगे सादा मण्डप है। गर्भगृह की सपाट छत तथा वास्तु की सोड़ी को देखते हुए इस मन्दिर का निर्माण-काल पौच्छी शती का पूर्वार्द्ध मानना युक्तिसंगत होगा। मतना विले में खोह, ऊंचहरा, नामीद जादि अन्य स्थानों पर भी गुलकाल में मन्दिरों का निर्माण हुआ। में सभी मन्दिर प्रायः सपाट छत वाले थे। इनका निर्माण-कार्य प्रायः पौच्छी शती से भग्नज्ञ हुआ।

कुमारगुप्त प्रथम के समय में नव्य प्रदेश के मन्दसीर (प्राचीन दण्डपुर) नामक स्थान पर सूर्य-मन्दिर का निर्माण हुआ। वही प्राप्त संवत् ५८८ के एक लेख से जात होता है कि इस सूर्य-मन्दिर का विश्वर बहुत ऊँचा था। उसको उपना 'कैलास-नुग' से दी गयी है।^१

१. गुलकालीन मन्दिरों के कालकाम-निर्धारण तथा उसको वास्तु-विशेषताओं के लिए देखिए—पृष्ठोंकुमार वप्रवाल, मुप्त-देशत जाकिटेक्चर, पृ० ८६-८७।

भीतरगाव मन्दिर

कानपुर ज़िले में कानपुर नगर से सबसे २० मील दक्षिण भीतरगाव है। वहाँ मुप्तकाल में एक छोटा मन्दिर का निर्माण किया गया। ३० कुट ऊंचा पक्की ईंटों से निर्मित यह मन्दिर भगवान् विष्णु के सम्मान में बनवाया गया। बास्तु लों दूष्ट से इस मन्दिर का विशेष महत्व है। पौधों जाती के अल्प में जिल्हे का क्षेत्र स्वरूप हो चुका था, इसका पता इस मन्दिर से चलता है। ईंट के बने हुए मन्दिरों का वस्तिल भीतरगाव मन्दिर के बहुत भी था। बंगाल में पहाड़पुर तथा आसाम में दहरावेतिया नामक स्थलों पर उत्खनन कराने से ईंट के बने हुए मुप्तकालों मन्दिरों का पता चला है। परन्तु उनसे शिवरों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

मुप्तकाल के आरम्भ में वर्षाकार चबूतरों पर चौकोर मन्दिरों का निर्माण मिलता है। उसी परम्परा में भीतरगाव का मन्दिर बनवाया गया। देवगढ़ के मन्दिर की तरह यही भी ऊंची कुर्सी तथा उसके ऊपर मन्दिर के बाहर निकली हुई दुहरी कोनिया देखने को मिलती है। मन्दिर का मर्मगृह १५ वर्ग फुट का है। बाहरी अन्तराल का आयाम ३ वर्ग फुट है। मन्दिर में दो प्रदक्षिणा-मार्ग थे, जो नवना के पांचों-मन्दिर की तरह ऊपर से इके थे। मर्मगृह के ऊपर उत्तरीय कोण बना था। मुप्तकाल के पश्चात निर्मित उत्तर भारतीय मन्दिरों में भीतरगाव मन्दिर की विशेषताओं को पहचाना याता।

मन्दिर का बहिर्भाग का अंतकरण सुरक्षित है। उसके पारों और बनाये गये जालों पर पक्की मिट्ठी की कलापूर्ण प्रतिमाएँ रखी थीं। ये प्रतिमाएँ रामायण, महाभारत तथा पुराणों के बहुरूपक दूसरों को साकार कर देती हैं। मन्दिर के बहिर्भाग की दीवारों पर सज्जा-पट्टियाँ दर्शनीय हैं। मन्दिर के निर्माण में सादगी होते हुए, भी बास्तुगत अनेक नवीनताएँ हैं, जो मुप्तकाल के प्रारम्भिक मन्दिरों में उपलब्ध नहीं। इस मन्दिर का निर्माण काल ५०० ई० के आसपास रखना उचित प्रतीत होता है। कनिष्ठम तथा बनवी का विवार कि इस मन्दिर की रखना सातवीं-बाल्वी जाती में हुई युक्तिसंगत नहीं जैवता। फोगल ने इसका निर्माण चौथी जाती में माना। परन्तु इस मन्दिर की बास्तु-विशेषताओं को देखते हुए उसे इतना प्रारम्भिक मानना उपयुक्त न होगा।^१

भीतरगाव के उक्त मन्दिर का विभाव परवती मन्दिर-बास्तु पर देखने को मिलता है। मुप्तों के पश्चात् मुख्य-प्रतीहार आसकोंने भीतरगाव के मन्दिर से प्रेरणा प्रहण की। उसके

१. इष्टस्य पृथ्वीकुमार प्रधानाल, वही, पृ० ४४-४७

समय में कनोड़, ग्वालियर, मढ़वेरा आदि स्थानों पर जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ उनमें इस प्रभाव देखा जा सकता है।

बास्तु में ईटों का प्रयोग अन्तर्वर्षी के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के सिरपुर, खरोद, राजिम आदि स्थानों में तथा बंगाल, झाराम आदि क्षेत्रों में मिलता है। कानपुर के समीप छत्तेपुर जिले में हाल के सर्वेधारणों से ईट के अनेक मन्दिरों का पता चलता है, जिनका निर्माण अप्रैल से ११वीं शताब्दी के बीच किया गया।

स्तूप तथा विहार

मन्दिर-वास्तु के अतिरिक्त गुप्तकाल में बौद्ध तथा जैन धर्म के अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ। गान्धारतवाहन युग में ईट के कई भागों में स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया। गुप्तकाल में भी अनेक बौद्ध तथा जैन समारकों का निर्माण हुआ। पश्चार छोड़ में गुप्तकालीन स्तूप पहले की अपेक्षा अधिक परिच्छृङ्खल मिलते हैं। उनमें मृत ललकरणों की सजड़ा में भी प्रगति मिलती है। तक्षशिला के जैलियों तथा मुहरा-मुराहु में अनेक स्तूपों तथा विहारों के अवशेष मिलते हैं। विहारों को बृहत्-दृग में स्वतन्त्र संस्थाओं के काम में मान्यता मिली। आत्मनिर्भर्ता के लिए विहारों के अन्तर्गत वे सभी मुख्याद्य एकजूट की गर्भी जी भिन्नओं के लिए ज्ञावक्षयक थीं। विहारों में गोदाम, भोजनालय, स्नानालय आदि की व्यवस्था मिलती है। तक्षशिला का भल्लर-स्तूप गुप्तकाल के आरम्भ की हुति है। इस समय तक अधिकान के प्राची भाग का सर्वाधिक ऊंचा दिखाने की प्रवृत्ति हो चली थी। आरम्भिक यश्वर-भाग का वृत्ताकार अब लम्बायमान रूप में दिखाने लगता है।

सिंध प्राप्त में मीरपुर-वास नामक स्थान पर तथा सोराष्ट्र-मुख्यरात में बनाए गये स्तूप और विहार भी उल्लेखनीय हैं। मीरपुर-वास में ईटों का कना हुआ स्तूप चौकोर कुर्सी के ऊपर स्थित है। उसके पश्चिमी ओर अधिकान के भीतर तीन कोठरियाँ कमी हैं। स्तूपों में इस प्रकार की कोठरियों का निर्माण एक विशेष बात थी। वर्षों में इस प्रकार के परबर्ती भाग में मिलते हैं।^१ मीरपुर-वास के स्तूप का वहिर्भाग डलीर्ण ईटों से बनाया गया। उन पर प्रदर्शित अन्य अलंकरणों के अतिरिक्त बुद्ध-मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

मध्यरा, अहिन्द्वाता, सारलाप, जबला आदि स्थानों में गुप्तयुग में बौद्ध स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ। सारलाप का ध्येय स्तूप इसी काल की उल्लेखनीय हुति है। इस स्तूप का अधिकान नहीं है। मध्यवर्ती अण्ड गोलाकार है। अण्ड के ऊपर ढोनाकार

१. देव० कुमारस्वामी, हिन्दू आफ ईडियन ऐप्प इंडोनेशियन आद०, प० ७३।

रखता है। यह स्तूप पुर्व-फुट ऊंचा है। स्तूप की बाहरी दीवारों पर आते हैं, जिन पर बुद्धमूर्तियाँ रखी जाती हैं। इन आतों के नीचे स्तूप के चारों ओर जाती हुई सज्जाएँ हैं, जिस पर ज्यामितिक असंकरण बने हैं।

नगर-सभिवेश—गुप्तकाल में नगर-सभिवेश का प्रायः यही कप मिलता है जिसका बर्णन महाभारत, अर्थसात् तथा बौद्ध-जैन साहित्य में उपलब्ध है। राजप्रासादों तथा दूसों के उल्लेख कालिदास, कामदक, वराहभिहिर आदि की रचनाओं में मिलते हैं। वराहभिहिर की बृहत्संहिता में साप्तारण भवनों, राजप्रासादों आदि के निर्माण-सम्बन्धीय वर्णन उपलब्ध है।^१

गुप्त-युग धार्मिक सहिष्णुता का युग था। अधिकांश गुप्तवर्षी शासक यजुषि वैष्णव थे, किन्तु जन्म दूसों के गति सम्मान का भाव रखते थे। उनके समय में किन्तु ही लोग अन्य मतावलम्बी होते हुए भी उच्च शासकीय पदों पर आसीन रहे। इस काल में वैष्णव, जैन, लापत, गौर आदि मतों के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म भी उदाहरण विकसित होते रहे। इन विविध धर्मों ने सम्बन्धित देवालयों, स्तूपों, विहारों आदि के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उन्हें देखने से पता चलता है कि जासक-वर्ग एवं जनता दोनों ने धर्म के प्रति उदारताकाला बढ़ी भावा में विद्यमान थी। गुप्त-नरेण कुमारगुप्त प्रथम ने नालन्दा में एक बौद्ध विहार की स्थापना करायी, जहाँ आपने बल कर एक बड़े विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ। परवर्ती गुप्त-शासकों ने इस विश्वविद्यालय की अधिकृति में पूरा योग दिया। इस काल में जैन-धर्म-सम्बन्धी बास्तु एवं मूर्तिकला की कृतियों का भी निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। मधुरा, कोलाम्बी, विदिशा—जैन नगर बौद्ध तथा जैन धर्म के बड़े केन्द्र के कप में प्रसिद्ध हो गये।

गुप्त-युग के शास्त्र एवं सहिष्णु भातावरण में अन्य अस्तित कलाओं के साथ मूर्तिकला को सर्वांगीण विकास का सुभवसर प्राप्त हुआ। कलिदास, विजावदी, रविकीर्ति आदि तत्कालीन महाकवियों ने जहाँ अपने कालों और नाटकों के रूप में वामदेवी के लिए गरस-मुन्द्र हार विदोये, वहाँ मूर्तिकला के पुजारियों ने अपने उदात्त भावों को परम्पर, गिट्री और धातु के माध्यम द्वारा मालवत व्यय प्रदान किया। यह या सीन्दवीं पापचत्तियों को उकसाने का भाष्यन नहीं, बल्कि उसका उद्देश्य ऊंचा है:

१. देवो अज्ञविल शास्तो, इडिया ऐक जोग इन वि बृहत्संहिता भाँक वराह-भिहिर, पृ० ३७२-८३। मधिर-बास्तु के संबंध में देखिए वहाँ, पृ० ३८४ तथा जाने।

एकुच्यते पार्वति, पापमृताये न गृप्तिष्ठव्यधिवारि तदवचः ।

(कृष्णरथमव, ५, ३६)

महाकवि कालिदास के इस उदात्त भाव का गृप्तकालीन विलियों में अपनी रचनाओं में सफलता के साथ निर्णय हिता। कला के दिल आदमी से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने सौन्दर्य को महत्ता को कल्पित होने से बचाया। गृप्तकाल की जो कला-कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें हमें उस रूप के दर्शन मिलते हैं जो सातव-हृदय में उल्लास, प्रेम और असन्द का रान्नार करने के साथ-साथ चित्तवृत्तियों को छोड़ा उडाने में सहायक होता है। सौकुमार्य का गाम्भीर्य के साथ, रमणीयता का संघर्ष के साथ तथा गम्भीर का आश्रय के साथ जैसा मूल्दर समन्वय हमें गृप्तकालीन कला में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

वास्तुकला के साथ मूर्तिकला का संपूर्ण सम्बन्ध गृप्तकाल से विशेष रूप में मिलते लगता है। वाणी और वर्षे की तरह इन दोनों वसितकलाओं का अल्पोन्याश्रित सम्बन्ध भारत की विशेषता है। गृप्तकालीन मूर्तियाँ चार प्रकार की मिलती हैं: पापाण मूर्तियाँ, मिट्टी की मूर्तियाँ, कठि की मूर्तियाँ और सिक्कों-मुद्राओं पर उत्तीर्ण मूर्तियाँ। गत्वर की मूर्तियाँ गढ़ने के प्रधान केन्द्र देवगढ़ (विला जाती), सारसाथ (वाराणसी), मधुरा, विदिशा, कोलाम्बी, उभानिला, ऐहोल आदि थे।

देवगढ़ के पूर्वोक्त दशावतार मन्दिर में लगे हुए कई गिलापटु गृप्तकला के उल्लङ्घन नमूने हैं। इनमें तपस्या में संसार नर-नारायण, गजेन्द्र-मोक्ष, अहिल्या-उद्धार तथा लेष्वायी विलापु के दृश्य अत्यन्त सुन्दरता के साथ उल्लिखित हैं। कठिप्रय पापाण-कलाओं पर कुलालीला तथा रामायण-सम्बन्धी दृश्य हैं। रामायण के कई सुन्दर गिलापटु वात में नवना (विला पत्र) से प्राप्त हुए हैं।

सारसाथ में प्राप्त धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा में जैठी हुई बुद्ध-मूर्ति गृप्तकाल की सर्वोत्तम बुद्ध-प्रतिमाओं में से है। इसमें बुद्ध का जान्त निःसूक्ष्म भाव कलाकार के द्वारा बड़ी सफलता के साथ व्यक्त किया गया है। सारसाथ से जाकेन्द्रव लिपि का एक सुन्दर मस्तक मिलता है, विसका कलात्मक बदाकुठ दर्शनीय है। भारत कलाभवन, काली में प्रदर्शित काठिकेल-मूर्ति भी अपने डंग की जनुप्रसंगिता है। इसे देखने से संगता है मानों साधारू और रस उपस्थित हो गया है।

गृप्तकाल में मधुरा-कला ने बड़ी उपलिखि की। बुद्ध की जो मूर्तियाँ इस काल में बहुत अधी गयीं उनमें जानित और गाम्भीर्य के साथ अंगों की कोपालता तथा जेहुरे पर मन्द स्थित का भाव बड़े कलात्मक डंग से व्यक्त किया गया है। जैन तीर्थंकरों को तथा विष्णु

की कई उत्कृष्ट प्रतिमाएँ मधुरा से प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त जनसाधारण के जीवन पर प्रकाश डालने का अवसरेष भी मिलते हैं, जिनके द्वारा तत्कालीन बैज्ञानिक, भागोद-प्रभोद आदि वातों की जानकारी होती है। मधुरा के समीप स्थवास (जिला भरतपुर) नामक स्थान भी गुप्तकाल का अच्छा केन्द्र था, जहाँ से अनेक सुन्दर कलाहृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

उत्तर-पश्चिम में गुप्तकालीन मूर्तिकला का एक बड़ा केन्द्र गांधार प्रदेश था। वहाँ सिलेटी नीले पत्थर पर उत्कीण बौद्ध धर्म-नामवर्णी संकहों हृतियाँ मिलती हैं, जो लाहौर, तबलिला, पेशावर आदि के संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। इनकी कला यूनानी और ग्रीक-विषय भास्तीय है। चूमे-मसाले की गजकारी के बगे हुए गांधार कला के कुछ मानव-मस्तक भी उल्लेखनीय हैं।

मध्यभारत में उत्कीण बराह की विशालकाय प्रतिमा इस काल को एक विशिष्ट कृति है। बराह भगवान् भूमि को जनायाम अपने दौतों पर उठाये हुए दिखाये गये हैं। उनका शौर्य इस मूर्ति में बड़े स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया गया है। मध्यभारत में विदिशा, एरण, पश्चामा (प्राचीन पश्चात्ती) आदि अन्य स्थानों से भी इस काल की सुन्दर मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें से अधिकांश न्यालियर तथा विदिशा के पुरातात्त्व संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। कई प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। हाल में विदिशा से कलापूर्ण तीन तोर्चेकर प्रतिमाएँ मिली हैं, जिन पर 'महाराजविद्युत' उपाधि सहित चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बड़े भाई रामगुप्त का नाम लिखा है।

गुप्तकाल में विभिन्नक्षेत्र में शैव धर्म का अच्छा विकास हुआ। शोह नामक स्थान से प्राप्त एकमुख लिलितम की मूर्ति, जो दै० पौर्वी लाती की है, गुप्तकालीन कला के उत्कृष्ट उदाहरणों में है। भूमरा, नवना, कैचहरा आदि स्थानों से भी गुप्तकालीन उल्लेखनीय कलाहृतियाँ मिलती हैं।

इश्विण भारत में इस काल में जनना, कन्हेयी, ऐहोल आदि कई स्थानों में कला का उत्कर्ष हुआ। चित्रकला के लिए ती अजन्ता प्रच्छात है ही, वही की गुहाओं में भूतिकारों ने भी अत्यन्त प्रवीणता का प्रदर्शन दिया। जनना की उत्तीर्णी गुहा में बृद्ध की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीण हैं, जो उत्तर-गुप्तकाल की हैं। इनमें सप्तलोक बैठे हुए नागराज की प्रतिमा सर्वथोक बातों जाती है।

कन्हेयी की ६६वीं गुहा में अक्षोक्तिशब्द की एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति उत्कीण है। उन्हें दो तारा-मूर्तियों के बीच बैठे हुए दिखाया गया है।

वादामी, ऐहोल, पट्टुरकल मादि दक्षिण भारत के स्थानों में उत्तर-गुप्तकाल की कई उल्लेखनीय मूर्तियाँ और मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं।

गुप्तकाल में निश्चित इमारतें जब अधिक संख्या में बढ़ाविए नहीं हैं। परं जो वस्ती है उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि उस समय मूर्तियों के लिमोण में सूर्यचित तथा सौन्दर्य के श्रोदात्य का व्यापार रखा जाता था। मन्दिरों में देव, गण्डर्ष, वक्ष-यज्ञी, अप्यरा, किंचर, पवावली, स्वस्तिक, कीर्तिमूर्ति आदि वासाल्पान उल्लेख दिये जाते थे। कानपुर जिले के भीतरगांव तथा मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में गिरपुर नामक स्थान पर इंटों के जो मन्दिर मिलते हैं उन पर स्वी-पुराण, उत्कृष्ण कमल, बेलवृष्टे तथा जालीदार नक्काशी वहाँ भावपूर्ण ढंग से उकेरी हुई मिलती है।

मिट्टी की गुप्तकालीन मूर्तियाँ भी बड़ी संख्या में मिलती हैं। वहाड़पुर, राजपाट, भीठा, कौण्डली, श्वामस्ती, पवारा, अहिन्छता और मधुरा से जो मृण्मूर्तियाँ मिलती हैं उनमें तत्कालीन सोकबीचन की मुन्द्र झोटी मिलती है। वहाड़पुर (जिला-राजशाही, बंगाल) के उल्लड़न में कुण्डलीला-सम्बन्धी तथा अन्य कितनी ही उल्लेखनीय मूर्तियाँ मिलती हैं। काशी में राजपाट से प्राप्त मिट्टी के छिसोंमें गुप्तकालीन स्त्री-पुराणों के अनेक प्रकार के केश-विलासों एवं अलंकरणों के अध्ययन की प्रश्ना सामग्री प्रस्तुत करते हैं। मध्यभारत में पवारा से कुछ अत्यन्त कलापूर्ण सानक-बींची तथा अन्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अहिन्छता की बूदाई में गुप्तकाल की अनेक झोटी-बड़ी मृण्मूर्तियाँ मिलती हैं। उनमें उल्लेखनीय शगा-यमुना की काय-र्यारिमाण प्रतिमाएँ तथा पांखें का घनोहर शिर है। पुण्यस्थिति के गारामा तथा धूबराती बत्तों की छावि ताले पांखें के समान को देखकर बनाकार की प्रतिमा के सामने नतमस्तक हो जाना पड़ता है। अहिन्छता से प्राप्त अलंकृत जटाजृट सहित शिव का सिर भी दर्जनीय है। वावस्ती से मिलती हुई मूर्तियाँ में एक असाधारण ढंग से बड़ी मृण्मूर्ति है। उसमें एक स्त्री दो बच्चों के साथ बैठी हुई दिखायी गयी है। गाम में बोदकों की डालिया रखी है। सम्भवतः यह दृष्ट यातादा सहित कुण्ड-बत्तराम का है।

धातु की भी कुछ गुप्तकालीन मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें सर्वोल्हाष्ट तांबे की दुद-मूर्ति है, जो सुन्तानग्राम (जिला भामलपुर) से मिलती है। यह मूर्ति जांबे सात फुट ऊँची है और इ० पाँचवीं जांबे की हूति है। दुद का दार्पण हाथ अमयमुद्रा में है और जै बाये से गस्त जम्भाले हुए हैं। बस्तों को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है। नूच की भावपूर्ण मूड़ा सराहनीय है। यह मूर्ति जब इस्लैंड के बर्मिंघम मृदियम में है।

पूर्वी पंजाब के कांगड़ा जिसे से बुढ़ी की पीतल की एक सुन्दर प्रतिमा मिली है। उसमें उन्हें श्रम-चक्र-प्रवर्तन मुद्रा में दिखाया गया है। भीरपुर-बाल (सिंध प्रान्त) से मिली बहुत की बड़ी हुई चतुर्मुखी मूर्ति गुप्तकालीन कांस्य-प्रतिमाओं के अन्देरे उदाहरणों में से है।

गुप्त-शासकों के सोने-बांदी के सिक्के वडी संक्षय में उपलब्ध हुए हैं। मूर्तिकला की दृष्टि से उनके स्वर्ण-सिक्के विशेष महत्व के हैं। उन पर सामने की ओर राजा की मूर्ति मिलती है और गीछे लदमी या अन्य देवता की। इन मूर्तियों से तत्त्वालीन वेदभूषा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। चन्द्रगृह प्रथम और कुमार गृह प्रथम के वे सिक्के जिनपर राजा-राजी ताव-ताप दिखाये गये हैं, समुद्रगृह तथा कुमारगृह के वीणाकित एवं अध्यवमेष्ट वाले सिक्के तथा चन्द्रगृह विह्मादित्य और कुमारगृह के अस्तारोंहीं, छत्र, सिंह-जाखेट आदि से अकिंते सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्हें देखने से तत्त्वालीन विकसित मूर्तिकला का पता चलता है। गुप्तकालीन घातु एवं मिट्टी की मूहरें भी इस दृष्टि से महत्व की हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की कुछ और भी विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। इस काल की मूर्तियाँ प्रायः इकहरे या छहहरे शरीर वाली मिलती हैं, भारो-भरकमया सूक्ष्म आकार की नहीं। उनके चेहरे चौड़े पा मोटे न होकर लम्बोतरे मिलते हैं। अंगों में विशेष सोच रहता है तथा बड़े होने के ठंग में आकर्षक भूगिमा। वस्त्राभूषण सूक्ष्म रहते हैं, जो बोकिल न होकर केवल मूर्ति को सौन्दर्य-बृद्धि में योग देते हैं। इस काल की मूर्तियों में व्यंग-व्यत्यगों का निवारा हुआ, किन्तु संघमित्र, रूप-देखने को मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि अभीष्ट भावों को अक्षत करने की असाधारण क्षमता, जो कलाकृतियों को अमरत्व प्रदान करती है।

अध्याय ६

मध्यकाल (६००-१३०० ई०)

मूर्खकाल के पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दिखायी पड़ने लगे। विशेषतः उत्तर भारत की संगठित जक्षित विश्वसित होने लगी।

सातवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तर भारत के जासन की बागडोर युद्धभूति-या बच्चन-बंडी राजा हृष्णवर्धन के हाथों में पहुंच गयी। हर्ष एक प्रतापी नायक था। वह भीये तथा मूर्ख संघाटी के समान सारे भारत में एक दृढ़ जासन स्थापित करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने दक्षिणाग्रध पर चढ़ाई की, परन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। तब उसने अपनी जक्षित उत्तर भारत की ओर केन्द्रित की और एक विस्तृत साम्भाल्य का निर्माण कर लिया। उत्तर भारत के अनेक जासनों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। हर्ष के समय में प्रसिद्ध चौनी याकी त्रृण-नाग भारत आया। उसने देश के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण लिया, जो अनेक दृष्टियों से महत्व का है। इस विवरण से तत्कालीन भारत के विभिन्न जनपदों की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

हर्ष की मृत्यु (६५० ई०) के बाद राजनीतिक खेत्र में तुनः विकेन्द्रीकरण का प्रारम्भ हुआ। उत्तर तथा दक्षिण भारत में अनेक जक्षियों ने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिये। नवीं शताब्दी के अन्त तक उत्तर भारत में उल्लेखनीय राजवंश मण्ड या परवर्ती मूर्ख वंश (८३० से ८२० ई० तक), कनोज के मौखिय (४७५-४४१ ई०), आयुधवंश (७३०-८१६ ई०) तथा मूर्ख-प्रतीहार वंश (४५०-८७० ई०) थे। इनमें से अन्तिम राजवंश विशेष जाक्षितशासी हुआ। मूर्ख-प्रतीहारों के बाद कनोज पर याहुव्याल वंश (१०५०-१२०० ई०) का जासन रहा। अन्य मूर्ख राजवंशों में बंगाल में पाल (७६५-११०५ ई०) और सेनवंश (१०५०-१२३० ई०), दिल्ली-अजमेर में चाहमान वंश (५५०-११८४ ई०), बुन्देलखण्ड में चन्देल (=३०-१३०० ई०), गालियर-नरवर शेत्र में कल्कनवात (६५०-११५० ई०), लाहल में कलचुरि (=३५-११८५ ई०), मालवा में परमार (=२०-१३७५ ई०) तथा मूर्खशत में चालुक्य (८६०-१२६८ ई०)

वर्ष का शासन रहा। उडीमा में संयोग तथा लेसरी वर्ष (११वीं से १३वीं वर्ष) का आधिपत्य रहा।

इन राजवंशों के शासन-काल में देश में वास्तु तथा मूर्तिकला का अत्यन्त व्यापक विकास हुआ। इनके समकालीन दक्षिण के शासक भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे। वैसा आगे दिखाया जायगा, दक्षिण में भी सातवीं से तेरहवीं शती के बीच वास्तु एवं मूर्तिकला का बहुमुखी विस्तार हुआ। वास्तु-विषयक अनेक वास्तवों की रचना भी इस युग में हुई, जिन पर धार्मिक एवं लोकिक नल्ला के विभिन्न रूप आधारित किये गये।

मन्दिर-वास्तु का शैली-विभाजन

विवेच्य युग में मन्दिर-वास्तु की विविध शाखाएँ प्रलभित-पृच्छित हुईं। उनका वर्णकारण विभिन्न राजवंशों के सदर्भार्में इस प्रकार किया जा सकता है :

१. महाकोसल शैली	(लठी से भाठवी शती)	पाण्डुवंशी शासन।
२. मगध-वग शैली	(छठी शती के उत्तरार्ध में आठवीं शती)	उत्तर-मूर्तवज्र तथा पालों का प्रारम्भिक शासन।
३. प्रारम्भिक कलिङ शैली	(छठी शती के उत्तरार्ध में ५०० ई० तक)	शैलोद्भव तथा शौम-कर शासन।
४. अनावेदी-शैली	(छठी शती के उत्तरार्ध में ५०० ई० तक)	कमोज का पुष्पभूषित वंश तथा गुर्जर-प्रतीहार।
५. प्रारम्भिक गोपादि शैली	(ट्वी - १०वीं शती)	कमोज के गुर्जर-प्रतीहार।
६. जेवाकभूषित-विषुरी शैली	(ट्वी से ११वीं शती)	जेवाकभूषित के बनेल तथा विषुरो के कलचरि।
७. हिमाचल-शैली	(प्ली के नाम से १०वीं शती तक)	राष्ट्रपुरी, लिगते, चंपा आदि के शासक।
८. यह नवीन शैली-विभाजन अग्रेश्वर अकादमी, बाराणसी द्वारा किया गया है। उसे कुछ परिवर्तनों के साथ यहाँ सामार स्वीकार किया जाता है।		

१८. महामारु शैली	(८वीं से १०वीं शती के प्रारम्भ तक)	गुहिल, आलोर और मंडोर के प्रतीहार तथा शाकम्भारी के चाहमान।
१९. कण्ठांट शैली (उत्तर भारतीय)	(छठी शती के उत्तराधिक से ८वीं शती तक)	चादामी के पश्चिमी जालुक्य तथा बेसी के पूर्वी जालुक्य।
२०. सौराष्ट्र शैली	(छठी शती के अन्त से १०वीं शती तक)	बलभी के भैलक तथा चुमली के संघर्ष।
२१. महागुजर शैली	(८वीं शती के मध्य से १०वीं शती तक)	उत्तर गुजरात के राजवंश, चापवंश तथा कच्छ के जासक।
२२. काम्पोट शैली	(८वीं - १२वीं शती)	कम्पोट तथा डलपाट वंश।
२३. परवर्ती कलिंग शैली	(२०० - १३०० ई०)	सोमवंश तथा यंगवंश।
२४. परवर्ती मगध-बंग शैली	(१०००-१२५५ ई०)	पाल तथा सेन वंश।
२५. परवर्ती अन्तर्बंदीय शैली	(२०० से १२५० ई०)	कलोत्र के परवर्ती प्रतीहार तथा मांहडवंश वंश।
२६. परवर्ती गोपादि शैली	(८५० से ११५०)	ग्वालियर तथा नरवर के कच्छवात।
२७. परवर्ती महामारु शैली	(८०० से १००० ई०)	शाकम्भारी तथा नाढाल के चाहमान।
२८. परवर्ती महागुजर शैली	(८५० से १००० ई०)	चन्द्रावती के परमार, बधवान के चाप, कच्छ के मकुआणा, मेडपाट के शुहिल तथा अनहिल-बाड़-गाटण के सोलकी।
२९. मारु-गुजर शैली	(११वीं से १३वीं शती)	अनहिलवाह-गाटण के सोलकी तथा उनके समसामयिक जासक, मेडपाट के शुहिल।

२०. कलशुरि शैली	(८०० से १२२० इ०)	विपुरी तथा रत्नपुर के कलशुरि ।
२१. परबर्ती जेजाकभूषित शैली	(८५० से १३०० इ०)	काशिकरतथा खजुराहो के चैदेल ।
२२. कामकल्प शैली	(१०वीं शती के उत्तरार्ध से १२२० इ० तक)	अमग के लग्नद्वयी ।
२३. मालवा शैली	(१००० से १३०० इ०)	धारा तथा भोजपुर के परमाह ।
२४. सिन्धु-सीधीर शैली	(१०वीं से १५वीं शती)	उत्तरी सिन्धु तथा पश्चिमी पंजाब ।

मन्दिर-वास्तु की उक्त सूची को देखने से पता चलता है कि पूर्व-मध्यकाल में विभिन्न शैलीों में मन्दिर-निर्माण की प्रवृत्ति बहुत बड़ी । वास्तु तथा भूति-कला की वृद्धि में न केवल विभिन्न राजवंशों ने योग दिया अपितु अनेक धार्मिक सम्प्रदायों ने अपने-अपने सम्प्रदायों के विकास में इन दोनों लक्षितकलाओं का प्रचुर काम से उपयोग किया ।

जो बात इस काल में उत्तर भारत के सम्बन्ध में लागू होती है, वही दक्षिण के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । तिब्बत काल में दक्षिण भारत में विन मूर्ख राजवंशों का वासन था, वे इस प्रकार हैं—

कांडी का यन्नवंश छठी शती के उत्तरार्ध में नवीं शती के अन्त तक लक्षितकलाई रहा । दक्षिणाध्र में वातापी के चालुक्य वंश की सत्ता छठी शती के आरम्भ से सेकर ब्राह्मी शती के मध्य तक रही । चालुक्यों की दूसरी जात्या गुजरात की थी, जिसका वासन १०वीं शती के अन्त से १२वीं शती के अन्त तक रहा । मानवंदि का राट्टुकूट वंश (८५०-८८२ इ०) चौथी बड़ी लक्षि के काम में था । दक्षिण भारत की पौच्छी शक्ति चोलवंश की थी, जिसने नवीं शती के मध्य से लेकर १३वीं शती के मध्य तक दक्षिण भारत की प्रभुत्व सत्ता के काम में जासन किया ।

महूरा में पाण्डुवंश का शासन नवार्दी शती के आरम्भ से दसवीं शती के प्रथम चतुर्वर्षि तक काम रहा । इनके अतिरिक्त उत्तरी कोकण में कदम्ब (८०५-१३०० इ०) डार-मधुड में होयसल वंश (१०१०-१३४५ इ०) तथा दक्षिण कोकण में गिलासारों (१०५४-१२१५ इ०) का प्रभुत्व रहा । देवगिरि में यादव, तालकाल तथा कोलार में भी तथा केरल खेत में चेर प्रभावताली थे । तेलंगाना शेव में काकतीय वंश (१०४३-१३२६ इ०) और वसवार्दी तथा गोदा में कदम्ब वंश का वासन था ।

उसी तथा भग्य कई छोटे राजवंशों के समय में लिपिकलाओं को बहु प्रोत्ताहन मिला। मन्दिर-वास्तु की जिन अनेक मूर्ख शैलियों का विकास इस काल में हुआ उनका विवरण इस प्रकार हैः

(अ) उत्तरी द्वाषिङ्ग देश-शैलियों का प्रारम्भिक युग (५५० से १०वीं शती के मध्य तक)। इसके अन्तर्गत विभिन्न शैलियों को रखा गया हैः

१. कण्ठ शैली (५५० से ७५० ई०)—बादामी के चालुक्य।

२. आरम्भिक आन्ध्र-कण्ठ शैली (७वीं शती के आरम्भ से १०वीं शती तक)—वेंगों के पूर्वी चालुक्य।

३. बुंदेल शैली (६५० से ८०० ई०)—मान्यवेट के चालुक्य।

४. गगडाडी शैली (८वीं-१०वीं शती)—तेलकाड़, कोलार तथा तंदों के नम्बरण।

५. नोलम्बनाडी शैली (९०-१०वीं शती)—हेमावती के नोलम्ब।

(आ) दक्षिणी द्वाषिङ्ग देश शैलियों (प्रारम्भिक काल ६५० से ८५० ई०)

१. पल्लव शैली (६५० से १०वीं शती)—काशी के प्रारम्भिक तथा परवर्ती पल्लव वंश।

२. पाण्ड्य शैली (८वीं शती के मध्य से १०वीं शती के आरम्भ तक)—मदुरा के प्रारम्भिक पाण्ड्य।

३. आरम्भिक चोडमण्डल शैली (८वीं के मध्य से १०वीं शती के अन्त तक)—तंजौर के प्रारम्भिक चोड, मूरारे-मार तथा इर्ष्युवेल।

४. परवर्ती चोडमण्डल शैली (अनिम १०वीं से १३वीं शती तक)—तंजौर का चोडवंश।

(इ) उत्तरी द्वाषिङ्ग देश की परवर्ती शैलियों (१०वीं से १४वीं शती तक)

१. रेनानाडु शैली (८वीं से ११वीं शती)—तेलगु भोव के चोल तथा वैश्वनंद।

२. उत्तरी कण्ठाट जैसी	(१९१३ से १९८६ ई०) — कल्पाण के परिवर्ती चालुक्य।
३. दक्षिणी कण्ठाट जैसी	(१९०० से १२८१ ई०) — द्वारामधुर के होमसत्र।
४. तैलंग जैसी	(१०४३ से १३२६ ई०) — काकतीय।
५. पश्चिमी कण्ठाट जैसी	(१०८० से १२८० शती) — बनवासी तथा सोना के कदम्ब।
६. केरल जैसी	(१०८० से १३८० शती) — केरल के जामुक।

उत्तर तथा दक्षिण भारत के मन्दिर-चालुक्य की जिन विभिन्न जैलियों की तात्त्विक अपर दी गयी है उनका विकास मुख्य रूप से बापने-बपने क्षेत्र में होता रहा। चालुक्य की इन जैलियों में कठिपप्प स्थानीय विशेषताओं का होना स्वभाविक था। परन्तु इन विशेषताओं के होते हुए मन्दिर-चालुक्य के कठिपप्प तत्त्व भृत्यकालीन भारत में प्राप्त समान मिलते हैं। यह वह युग था जब कि पौराणिक धर्म का व्यापक उन्नीस हुआ। विष्णु, शूर्य, शिव, गणित तथा गणेश की पंचदेवोपासना इस काल में अत्यधिक विकसित हो चुकी थी। इन मुख्य देवों के अतिरिक्त अन्य कितने ही पौराणिक देवी-देवताओं की दूजा का विकास इस काल में हुआ। उक्त पौराणिक धर्म प्राचीन वैदिक धर्म की विभिन्न जात्याओं के रूप में थे। उनके साथ ही जैन धर्म का इस काल में प्राप्त समस्त भारत में प्रसार हुआ। दिग्मवर तथा व्येताह्वर सम्बद्ध के जो मन्दिर भृत्यकाल में निर्मित हुए उनकी संख्या बहुत बड़ी है। मन्दिर-चालुक्य के साथ-साथ प्रतिमा-निर्माण का कार्य द्रुतगति से बढ़ा। गुप्तायान के इन-निने कला-केन्द्रों के स्थान पर अब कई गुने अधिक स्थानों पर कला के उत्तर दीनों औरों का उत्तर भारत प्रसार दिखायी पड़ता है।

मन्दिर-स्थापत्य की उत्तर जैलियों में से केवल मुख्य जैलियों का ही संक्षिप्त विवरण यही दिया जा रहा है। इन प्रमुख जैलियों के अनेक तत्त्व हम अन्य जैलियों के मन्दिरों में भी पाते हैं। प्राप्त उत्तर भारत की जागर जैसी तथा दक्षिण की द्राविड़ जैसी के मन्दिरों का ही जाविक्षण मिलता है। इन दीनों जैलियों की निर्मित 'वेसर' जैसी के भी उत्तराहरण अनेक मन्दिरों में उपलब्ध है।

मुन्हकाल के पश्चात् मन्दिर-स्थापत्य के कठिपप्प मुख्य लक्षणों का विकास हुआ, जिन्हें हम उत्तर तथा दक्षिण भारत में थोड़े-बहुत विभेदों के साथ पाते हैं। मन्दिर की

उपमा भारतीय बास्तु-शास्त्र में सानव-जरीर से दी गयी। मध्यकाल में पंचामत मन्दिरों का निर्माण वडे स्थल में संपन्न हुआ। भूमितल से लेकर ऊपर के शिखर तक मन्दिर के जिन मूर्ख छंगों के बीचन जास्तों में मिलते हैं वे अमर्त्य इस प्रकार हैं :

(१) अधिष्ठान या चौकी : इस पर सज्जापटी अलंकरण का में रहती थी। उसे 'बसंत पट्टिका' कहा जाता था।

(२) वेदिवंध : यह अधिष्ठान के ठीक ऊपर का शोल या चौकोर बंग है। यह प्राचीन वज्र-वेदियों से उद्भूत हुआ।

(३) अन्तरपत्र : वेदिवंध के ऊपर की कल्पवल्ली या पताकली-पट्टिका।

(४) लधा : मन्दिर का मध्यवर्ती धारण-न्धन।

(५) वर्णिका : मन्दिर का ऊपरी वरामदा।

(६) गुहनासिका : मन्दिर के ऊपर का बहिनिमृत भाग। उसका आकार तोते की नाक को तरह होने के कारण उसका यह नाम पड़ा।

(७) कण्ठ या गोवा : शिखर के ढोक नीचे का माग।

(८) शिखर : गोवे स्थल। शिखर पर व्यरुत्तिया आमलक होता था। धीरे-धीरे शोल आमलक ने लम्बोतर स्थल पहुँच किया और अन्त में उसी का शिखर लग दिया।

मन्दिर-बास्तु के ये अष्टोग देशव्यापी बन गये। मन्दिर के ढार मूर्ख या प्रवेश-द्वार को गोवा-मूला, घटपल्लव, हंस, कीर्तिमूर्ख आदि अलंकरणों से सजाया जाता था। सम्पूर्ण ढार की कई साथाओं में विभक्त करने की परम्परा मध्यकालीन स्थापत्य में कड़ ही नयी। सलाहारीन महिला में 'सप्तशाब्दिङार' के उल्लेख मिलते हैं। ऐसे ढार सात उल्लंग बाजे होते थे। उनके नाम नामजागा, रूपजागा, आलजागा, मिथुनजागा आदि मिलते हैं। इन विभिन्न जागाओं पर कलाकारों ने मुख्य देवप्रतिमा के अतिरिक्त सातमात्का, नवघण, यज्ञ, यज्ञवेद, सुपर्ण, विष्णु, नाम आदि के रूपक आलेखन किये। अलंकरणों के रूप में बृथां, सताओं तथा पशु-पश्चिमों की सज्जापटियों विकसित हुईं। पृथिवट, कीर्तिमूर्ख, लतदल कमल आदि विविध अलंकरण मन्दिर-ढारों पर मिलते हैं। मन्दिरों के अन्य भागों की भी विविध अलंकरणों से गणित करने की परम्परा चल रही। ये अलंकरण प्रार्थिक तथा लौकिक दोनों थे। प्रतीकों की जो दीर्घ परम्परा भारतीय धर्मों में मिलती है उसको कलाकारों ने मन्दिरों में मूलरूप देकर बनाया। ऐसिक और गारलौकिक कितनों ही मनोरम कल्पनाएँ मन्दिरों में साकार हुईं।

जाहुतियों के आधार पर मनिदरों की विभिन्न संज्ञाएँ कहतु हैं। मनिदरों की पंचापत्तन, पूर्णभद्र, पौड़ाभद्र आदि संज्ञाएँ तथा उनके सामोपाग विवरण समकालीन बास्तुग्रास्त्र में मिलते हैं।

बब हम विवेच काल की कलिपय प्रमुख शैलियों के विवरण प्रस्तुत करेंगे। इस काल के अपरिमित बास्तु-मूजन को देखते हुए, मह सम्भव नहीं कि सभी शैलियों के विवरण वहाँ दिये जायें।

बजूराहो मनिदर

मध्य प्रदेश के वर्तमान छतरपुर जिले में सासार-प्रसिद्ध बजूराहो स्थित है। मध्य-कालीन बन्देश राजवंश के नासनकाल में इस स्थान पर कला का अप्रतिम उन्मेष हुआ। बजूराहो के मनिदर पूर्ण-मध्यकालीन भारतीय बास्तु तथा मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते हैं।

इन मनिदरों का निर्माण इसकी नवी शती के उत्तरार्ध से लेकर बारहवीं शती के पूर्वार्ध तक सम्पन्न हुआ। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार बजूराहो में कुन २५ मनिदर बनाये गये हैं, परन्तु इस समय के बाल २५ मनिदर वहाँ देखने को मिलते हैं। इन मनिदरों के बनाने में दो प्रकार का पत्तर उपयोग में लाया गया : बेनाइट तथा लाल बलूच पत्तर। प्राचीन में बने मनिदर—जौसठ योगिनी, बहुआ-मनिदर तथा लालगुआ भद्रादेव—अधिकांश बेनाइट पत्तर के बने हैं और योग में दूसरे प्रकार का पाषाण प्रयुक्त हुआ है। बजूराहो के प्राचीन सभी मनिदर उत्तर भारत की नायर या शिवर-जौली के हैं। यैन भूत के मनिदरों की संख्या सबसे अधिक है। इसके अतिरिक्त बैलव तथा जैन समरदायों के भी मनिदर यहाँ विद्यमान हैं। इन सभी मनिदरों की निर्माण-सीढ़ी तथा लिल्ल-विघ्नान में प्राचीन समान तत्त्व मिलते हैं। यैन, बैलव या जैन मनिदर होने के नाते उनमें कुछ विशेष साम्बद्धिक मूर्तियों के अतिरिक्त विशेष अन्तर नहीं है। विभिन्न समरदायों के मनिदरों का पास-नाम निर्माण बजूराहो में व्याप्त धार्मिक सहिष्णुता का योतक है।

बजूराहो के में मनिदर प्रायः ऊर्ध्वी ओरों का अधिकाल के ऊपर बनाये गये। इनके बारे ओर जिसी प्रकार का ऐरा या दीवार नहीं है। इनका निर्माण पूर्ण-मध्यकालीन सूरी के ऊपर हुआ। अधिकाल के ऊपर के भागों को विविध अलंकरणों से सजित किया गया। जहा भाग की ठोस दीवारों के निर्माण में विशेष कारीगरी देखने को मिलती है। प्रकाश और बायू के लिए जालीदार विडिकियों की व्यवस्था है। विडिकियों के बीच-बीच में कलापूर्ण प्रतिमाओं का विशाल है। मनिदरों के भीतरी भागों को अपेक्षा बाह्य भागों में

इन प्रतिमाओं को संज्ञा कही अधिक है। दीवार के ऊपर मन्दिरों की छतों को पर्वत-शिखरों के इस पर दिखाया गया है। इन सबका अन्त सबसे ऊपरी शिखर में होता है। यह शिखर मन्दिर के उस गर्भगृह के ठीक ऊपर होता है जहाँ मन्दिर की प्रधान प्रतिमा स्थापित रहती है। बजुराहो के अधिक विकसित मन्दिरों में उनकी धीरा पर गोल आमलक, लन्दिकाएँ, छोटे आमलक तथा कलास मिलते हैं। शिखर-बीची के इन मन्दिरों की कल्पना इस बात की परिचायक है कि इनका निर्माण केलास पर्वत के आधार पर हआ, जो देखो का निवास-स्थल माना जाता है। बजुराहो-मन्दिरों के भीतरी भाग में गर्भगृह या मुख्य प्रतिमा-स्थल के अतिरिक्त जो अन्य अंग मिलते हैं उनके बास्तीय नाम अर्धमण्डप, मण्डप तथा अन्तराल हैं। मन्दिर में प्रवेश करते समय में क्रमशः पढ़ते हैं। बड़े मन्दिरों में मण्डप का आकार विशाल मिलता है, जिसे 'महामण्डप' कहा जाता है। मन्दिरों में प्रवेश-द्वार को मकर-नोरण कहते हैं, जो मकरमुख तथा अन्य विविध जलकरणों से मुक्तिज्ञत रहता है। उसके बाद अर्धमण्डप आता है, जो एक लम्बे मार्ग के रूप में है। उसकी समाप्ति पर मण्डप में पहुँचते हैं। अर्धमण्डप तथा मण्डप तीन ओर से खुले हैं। बड़े मन्दिरों का महामण्डप चिरे हुए एक बड़े कदम के कान में होता है। उसके बीच में चार कोने खुम्भे होते हैं, जो सिरदर्शों को संभाले रहते हैं। मन्दिर के बाहरी विधान की भीति भीतरी छत में भी उसी प्रकार के अनेक उत्तर-वडाव दिखायी पड़ते हैं। महामण्डप तथा गर्भगृह के बीच में जो स्थान रहता है वह अन्तराल (बीच का भाग) कहलाता है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार भी अन्य अंगों की तरह काफ़ी जलंकृत है।¹

बजुराहो के प्रारम्भिक मन्दिरों में वास्तु तथा भूति-शिल्प का बैसा निखरा हुआ क्षण नहीं मिलता जैसा कि परवर्ती मन्दिरो—लक्षण, पाण्डवनाथ, विश्वनाथ, कादरिया जादि—में दृष्टिक्षण है। बाद के बने हुए इन मन्दिरों में जहाँ स्थापत्य-विषयक विभिन्न अंग उपर कान में दिखायी देते हैं, वहाँ प्रतिमाओं तथा अन्य अलंकरणों का स्वरूप भी परिष्कृत मिलता है। इन दोनों तरफों का योग निम्नदेह मणि-कांचन योग-जैसा है।

भारतीय वास्तुशास्त्र के मान्य सिद्धान्तों को बजुराहो के कलाकारों ने बड़ी सफलता से साथ इन मन्दिरों में वरितार्थ किया। तस्कालीन वास्तु में शिल्प का बैसा रूप नूहीत न था जैसा कि वहले गृहकाल में या बाद में मुगलकाल में देखने को मिलता है। गुप्त-कालीन मन्दिर आप साथी-सम्पाद हैं, जिसमें प्रतिमाओं को छटा अर्थात् भीमित रूप

1. बजुराहो मन्दिर-वास्तु के विषय में दें० कृष्णदेव, 'दि. टेम्पल और बजुराहो इन सेन्ट्रल इंडिया, ट्रॉपिकल इंडिया, संख्या १५ (१९५६), पृ० ४३-६५।

में है। गुप्त-मन्दिरों के बार वास्तु-विषय है: ड्वारकाचारा, प्रद्विष्णु-पथ, गवाच तथा शिवर का प्रारंभिक रूप। मृगलक्षण में घने हुए उत्तर भारत के अनेक मन्दिर अपनी विकालता के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनमें अलंकरण के रूप में प्रतिमा-विद्यान प्राप्त नहीं हैं। बजूराहों के मन्दिरों में वास्तु के भव्य विन्यास के साथ-साथ विविध प्रतिमाओं का प्रचुर संयोजन है।

बजूराहों में उपलब्ध बहुसंखक मूर्तियों को हम विविध वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले वर्ग में देव-प्रतिमाएँ आती हैं, जिनका निर्माण पूजा के लिए हुआ। ये मूर्तियां प्राप्त चारों ओर से कोर कर बनायी गयी हैं और उन्हें मन्दिरों के गर्भगृहों अथवा अन्य विशेष स्थलों पर प्रतिष्ठित किया गया। अधिकांश देव-प्रतिमाएँ सीधी रूपी रूपी हुई या सम्भग रूप में हैं और कई बहुत विस्तृत हैं।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत परिवार या पाल्ब-देवता आते हैं। ये अधिकतर बाहरी दीवारों पर या आलों पर बने हैं। इनमें विविध प्रकार के दिक्षातों, गणों, ऐन भासन-देवताओं आदि की मूर्तियां हैं।

तीसरे वर्ग में विशेषतः वे प्रतिमाएँ हैं जिन्हें 'सुर-मुन्द्री' या 'अप्यारा' कहते हैं। इनकी संख्या बहुत अधिक है। इन्हें अनेक आकर्षक भाव-मन्दिराओं में विभित्ति किया गया है। कहीं वे स्तान के बाद बालों से पानी निकोड़ रही हैं, कहीं पैर में आलता लगा रही हैं और कहीं बच्चों या पशु-पश्चिमों से विलयाङ्क कर रही हैं। उन्हें कहीं बीणा-बली आदि वाद्य-यंत्र बजाते हुए या गेंद खेलते हुए प्रतिष्ठित किया गया है। इन प्रतिमाओं में वह अनेक नायिकाओं के मूर्ति रूप देखने को मिलते हैं जिनका वर्णन भारतीय साहित्य में है।

चौथे वर्ग के अन्तर्गत पहेली और अम्बन्धनी दृश्य रखे जा सकते हैं। ये दृश्य तत्त्वालीन और न की मुन्द्र लाई की प्रस्तुत करते हैं।

पाँचवें वर्ग में पशु-पश्चिमों की प्रतिमाएँ आती हैं। पशुओं से सबसे अधिक मार्गुल मिलता है, जिसे प्राप्त सीमों वाले गेर के रूप में विभित्ति किया गया है। बजूराहों के कलाकारों की अलंकरण के रूप में इस पशु का अकन्त बहुत प्रिय था। अन्य अनेक पशु-पश्चिमों का चित्रण भी वडे प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। कुछ दृश्य सैनिक अधिकारों तथा पालोस्सवों के हैं।

बजूराहों की इस कला-राजि में पूर्व-मध्यकालीन भारत का जीवन मूर्तिमान हो उठा है। येशुमूषा, प्रसाधन, संगीत, नृत्य, आनेट, पूढ़ आदि के अनेक दृश्य पर्हाँ देखने को मिलते हैं। इहलोक तथा परलोक की किरणों ही मनोरम भावनाएँ बजूराहों की

वह सब्दक मूर्तियों में साकार हो उठी है। प्रकृति और मानव जीवन को ऐहुक शैलये-राजि को यही के मन्दिरों में वास्तवत कल्प प्रदान कर दिया गया है। शिव-शृंगार का इतना प्रचुर तथा व्यापक व्यापार भारत के अन्य चिसो कलाकेन्द्र में जापव ही रेखने को मिले।

बजूराही में कुछ ऐसी मूर्तियों का निर्माण भी हुआ जिन्हे हम उद्घाट शृंगार की जीती-बायती पुस्तकियाएँ लाह सकते हैं। ये मात्स्य मूर्तियाँ इस दोल में नौल-काषायालिकों के तालालीन बड़ते हुए प्रभाव को सूचित करती हैं। तान्त्रिक विचारधारा का यह व्यापारीन कल्प न लेकर बजूराहो में, अपितु भहाकोल और उडीसा के कई स्थानों में देखने को मिलता है। पुरी, भूबनेश्वर, कोणाके आदि स्थानों में जला के इस उत्तान शृंगाररक कल्प को हम देखते हैं। भारतीय जन-सामाज का एक अग वाम मतावलम्बियों के द्वारा प्रभावित हो गया था; इसका ये प्रतिमाएँ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

बजूराही का कल्प-पिघान ललित-कला के विविध रूपों का समन्वय है। एक ओर इसमें हमें चारहर-तत्त्व का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अकान मिलता है तो दूसरी ओर शृंगारिकता तथा इतिहियों का उल्लंघन कर भी दिखायी देता है।

कलिङ्ग मन्दिर-समूह

कलिङ्ग या उडीसा के मन्दिर-समूह भूबनेश्वर, पुरी तथा कोणाके में स्थित हैं। कलिङ्ग-जीती के ये मन्दिर दक्षिणी समुद्र-नट पर गंजाम तक फैले हैं। इस मन्दिर-समूह का क्षेत्र मध्यभारत तथा बगाल-विहार के दक्षिणी छारों तक मिलता है।

कलिङ्ग-मन्दिरों का निर्माण आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शती के मध्य तक हुआ। प्रतीत होता है कि इन मन्दिरों के निर्माण में दाहुल तथा दक्षिण कोसल की अनेक मान्यताओं का प्रभाव रहा। भूबनेश्वर के मन्दिर एक विशेष कोटि में बाते हैं। वही मन्दिरों के मध्य भाष के सामने भीकोर कक्ष मिलता है, जिसे 'जगमोहन' कहते हैं। इस जगमोहन से बूढ़ी अन्य कलिपय निर्मितियाँ रहती हैं।

नट मन्दिर, भोज मन्दिर आदि का निर्माण उडीसा के इन मन्दिरों की विशेषता है। इन मन्दिरों में स्तम्भों का वैसा लम्बावट नहीं मिलता जैसा तत्कालीन अन्य मन्दिरों में द्रष्टव्य है। दूसरी विशेषता यह है कि उडीसा के मन्दिरों के अन्तर्भूति सादे हैं। उनकी भीतरी दीवारों में वैसी कलाकृतियाँ नहीं मिलतीं जैसी बजूराहो जादि में हैं। परन्तु वहीं तक याद्य अलंकरण का सम्बन्ध है, इन मन्दिरों को विविध प्रकार की प्रतिमाओं तथा अलंकरणों से सज्जित किया गया।

भुवनेश्वर के प्रारम्भिक मन्दिर वरदुरुषमेश्वर, वैतालदेवत, उत्तरेश्वर तथा सदगणेश्वर आदि हैं। इनका निर्माण ७५० से ८०० ई० तक हुआ। दूसरे बर्गे के अन्तर्गत भुवनेश्वर, लिंगराज, चट्ठोलहर, रामेश्वर तथा जगन्नाथ (पुरी) मन्दिर हैं। ये ८०० तथा ९५०० ई० के मध्य निर्मित हुए। अन्तिम बर्गे के अन्तर्गत भुवनेश्वर के लिंगेश्वर, राजा-राजनी आदि मन्दिर हैं। इन्हों के साथ कोणाके के प्रसिद्ध शूर्य-मन्दिर को गणना की जाती है। इन सबका निर्माण-काल ११०० से १२५० ई० तक है।

कोणाके का शूर्य-मन्दिर बास्तु को अद्भुत हाति है। चौड़ी तथा ऊँची चौड़ी के ऊपर बने हुए इस मन्दिर का आकार असाधारण है। इसका जगमोहन १०० कुट चौड़ा तथा इतना ही ऊँचा है। मन्दिर की नाप तल से शिखर तक २२५ कुट है। मुख्य मन्दिर से जुड़े हुए ३ छोटे देवालय हैं। कोणाके मन्दिर का विशाल प्रांगण ८६५ कुट लम्बा तथा ४४० कुट चौड़ा है। मन्दिर में नदशाला आदि कक्ष भी हैं। मन्दिर के बहिर्भूत की विविध प्रतिमाओं से अलंकृत किया गया। सौन्दर्य और कामशास्त्र का अप्रतिबाधित प्रदर्शन इस मन्दिर में देखने को मिलता है।

उत्तर भारत के अन्य मुख्य मन्दिर-बगों में गुजरात, काठियावाड़, राजस्थान, मध्य-भारत तथा विहार-बंगाल के मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

अब हम दक्षिण भारतीय बास्तु की मुख्य शैलियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

चालुक्य शैली

नमंदा के दक्षिण में १० पौर्वी शती के बाद चालुक्यों की सक्ति बढ़ी। उन्होंने बादामी को अपना केन्द्र बनाया। चालुक्यों की अवधि कई शास्त्राएँ भी हुईं। बादामी के चालुक्य प्रसिद्ध निर्माण हुए। उन्होंने दक्षिण में अनेक भव्य मन्दिरों, प्रामाणों तथा प्रतिमाओं का निर्माण कराया।

बादामी सभा ऐहोले के मन्दिर : प्रारम्भिक चालुक्यों के शासन में बादामी तथा ऐहोले में पांचवी-छठी शती में मन्दिरों का निर्माण हुआ। ऐहोले में ३० से ऊपर मन्दिर बनाये गये। उनमें से ३० मन्दिर आकार से विवर हुए हैं। समकालीन विश्वमी भारत में अनेक शैलगृहों का निर्माण किया गया। ऐहोले में 'लालबां' नामक मन्दिर का निर्माण पांचवी शती के अन्त में हुआ। इस मन्दिर में पर्मगृह के अतिरिक्त सामने स्तम्भों पर आधारित बरामदा तथा एक बड़ा संभालक है। मन्दिर में शिखर का अभाव है। उसके स्थान पर छोटी बामलिका बनी है। उसकी छत पर बड़े पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

दूसरा उल्लेखनीय दुर्गा-मन्दिर है, जो छठी जाती में निर्मित हुआ। इसका निर्माण परिमिती भारत की चेत्यशालाओं के अनुरूप हुआ। इस मन्दिर की छत मजबूताकार है। दुर्गामन्दिर की लम्बाई ६० फुट और चौड़ाई ३६ फुट है। इससे लगा २४ फुट का प्रोगण है। मन्दिर ऊंची चोकी पर बना है और उसकी सपाट छत भूमितल से ३० फुट ऊंची है। मन्दिर का लिखर जाद में बनाया गया। मन्दिर के चारों ओर प्रवक्षिणा-पथ है। भीतरी मण्डप स्तम्भ-वर्गितयों के द्वारा दो भागों में विभक्त है।

दुर्गा मन्दिर की तरह का एक अन्य मन्दिर हूचीमलिंगुडी में है।

बादामी में छठी जाती से मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। वहाँ ५३८ ई० में वैदिक धर्म से सम्बन्धित एक विजात कक्ष का निर्माण शेलगृह के कप में हुआ। यह स्थान बैण्ड तथा बीच धर्म का केन्द्र बना। वहाँ एक बैन मन्दिर का निर्माण भी शेलगृह के कप में हुआ।

पट्टदकल के मन्दिर : सातवी जाती के भूम्य से पट्टदकल नामक स्थान चालुक्यों का शुभ सांस्कृतिक केन्द्र बना। यह ऐहोल से १५ मील तथा बादामी से १० मील दूर है। पट्टदकल में सपाट छत का स्थान लिखर ने से लिया। द्राविड वास्तु का प्रारम्भिक क्षण पट्टदकल तथा बादामी के मन्दिरों में मिलता है। वहाँ स्थान पर विजगादित्य (६८६-७३३ ई०) तथा विजगादित्य द्वितीय (७३२-४६ ई०) के शासन-काल में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। ये मन्दिर बादामी के महाकृतेश्वर मन्दिर की शैली के हैं।

पट्टदकल के ६ मन्दिर द्राविड शैली के तथा ४ मन्दिर नागर शैली के हैं। नागर-शैली का पापनाथ नामक मन्दिर उल्लेखनीय है। परन्तु नागर शैली वाले मन्दिर वास्तु की दृष्टि से उतने व्यवस्थित नहीं हैं जितने कि द्राविड शैली वाले मन्दिर। पट्टदकल का विष्णुपाल मन्दिर द्राविड शैली का थोड़ा उदाहरण है। मन्दिर का बाह्य भाग कला की दृष्टि से विशेष मुन्दर है। उसके स्तम्भ विविध अलंकरणों से पूर्ण हैं। इस मन्दिर में तथा एलोरा के कैलास-मन्दिर में बहुत जाम्य है।

दक्षिण में पल्लवों से सम्बन्धित होने के कारण चालुक्यों के स्थापत्य और मूर्तिकला पर पल्लव-कला के अनेक उत्तर दृष्टिगोचर होते हैं। गोप्युरम् के प्रारम्भिक लक्षण कई परवर्ती चालुक्य-मन्दिरों में मिलते हैं।

रायमूर विले के आसमपुर नामक स्थान पर भी चालुक्यों ने कई मन्दिर बनवाएं। वहाँ के मन्दिरों में एलोरा के कैलास-मन्दिर की कई विशेषताएं दर्जनीय हैं।

चालुक्य-जीवी में उत्तर तथा दक्षिण भारत की नामर-द्वारिह-जीवियों का रोपण सम्बन्ध हुआ, जो 'बेसर' नाम से प्रसिद्ध है। प्रारंभिक चालुक्य-जीवी का प्रभाव दक्षिण भारत की प्रत्यक्षी जीवियों पर हड़ा।

पल्लव वास्तु

दक्षिण भारत में पल्लवों का शासन-काल बहुमुखी सांख्यिक उन्नति के लिए प्रख्यात है। पल्लव-वास्तु से ही दक्षिण भारतीय स्थापत्य में तीन मुख्य जीवों का उद्भव हुआ। ये तीन हैं—मण्डप, रथ (एकाशम् प्रजासूह) तथा विशाल मन्दिर। पर्सी ब्राह्मण द्वारा कालज्ञानानुसार पल्लव-वास्तु को तीन जीवियों में विभक्त किया गया है।^१ प्रथम वर्षों के अन्तर्गत शिलालोकों में बनावे गये मण्डप-तथा-रथ आते हैं। इनका निर्माण-काल ५१० से ६२० ई० माना गया है। भौतिकों का निर्माण राजा महेन्द्रजीवों प्रब्रह्म के नमग्र में हुआ, इसीलिए उन्हें 'महेन्द्र मण्डप' भी कहा जाता है। कुछ मण्डपों तथा रथों का निर्माण सच्चाट् मासल्ल के समय में हुआ। अतः उसकी संज्ञा 'मासल्ल जीवी' हुई।

पल्लव-स्थापत्य का दूसरा (मूललोप) स्वरूप द्वारारों के स्तम्भ में मिलता है। ये मुख्य स्तम्भ से पौराणिक घर्म से सम्बन्धित मन्दिर हैं। इनका निर्माण पल्लव-नरेश राजेश्वर के समय से पारम्पर्य हुआ और ८०० ई० तक जारी रहा। अतः मन्दिरों की इस श्रेणी का समय ६२० से ८०० ई० तक आता है। इनीष्ठ पौराणिक घर्मों के मन्दिर-नमिदवर्मों द्वितीय के समय से बनने शुरू हुए। इनका निर्माण-काल ८०० से २०० ई० तक माना गया है।

शेतवास्तु : इस वास्तु का जारम्भ यूरोप तथा पश्चिमी भारत में बहुत पहले ही चुका था। उसी परम्परा में पहाड़ी को काट कर पल्लवों ने मण्डपों का निर्माण किया। स्तम्भों पर जाऊँसित इन शालालोकों की पिछली दीवार पर एक प्राचीषिक कोठरियों रहती थी। मण्डप के बाहर मुख्यालय होता था। स्तम्भ आय चीकोर है। स्तम्भों के ऊपर चीफ़ तथा जालकारिक विशाल रहता है। मण्डपद्वार यर द्वारपालों की मूर्तियां मिलती हैं। महेन्द्र-जीवों में केवल एक मण्डप मिला है। उसके अन्तर्भूमि में चीकोर कोठरियों, अङ्ग-मण्डप तथा मुख्यमन्दप हैं। इन मण्डपों का निर्माण बड़े होल में हुआ। इनके बायू तथा अन्तर्भूमि अधिक पूर्णता संपन्न है। प्रारंभिक शालालोकों के स्थान पर अब मुख्य शोधों सहित ऊंचे और घरते खाम्भे बनने समें। अनेक मुख्य देवतालोकों को भी मण्डपों में प्रवर्गित किया जाने लगा। महायज्ञोपुरम् में पर्वती मण्डपों की संख्या अधिक मिली है।

१. पर्सी ब्राह्मण, अहो, पृ० ८३-१०१।

पल्लवरम् में पञ्चगायद्व नामक भण्डप तथा दसवनूर में शत्रुघ्नलत-मण्डप उल्लेखनीय है। पञ्चगायद्व भण्डप में ६ अलकृत चक्र हैं, जिनपर व्यालक बने हैं। इसे कुण्ठ-मण्डप भी कहते हैं। इसके समीप ही गंगावतरण, किरातार्जुनीय आदि के दृश्य अकित हैं। पश्चिमों, तामां आदि का भी आलेखन मण्डपों में मिलता है।

रथः : पल्लव-शिल्पियों द्वारा विशाल चट्टानों को एकाइम पूजा-गृहों में परिवर्तित किया गया। उनकी संज्ञा 'रथ' हुई। मदाम से ३२ मील दक्षिण मामल्लपुरम् में इस प्रकार के आठ रथ उल्लेखनीय हैं। ये जैव धर्म से सम्बन्धित हैं। इनके नाम धर्मराज, अर्जुन, मणेश आदि हैं। नबसे छोटा दीपदी रथ है। ये रथ पूजकर्ता भैतगृहों के परिवर्द्धित रूप हैं। इन रथों पर रामायण, महाभारत तथा पुराणों के दौरान दृश्य उल्कोंमें हैं। विशाल हाथियों एवं अन्य पशुओं को भी उन पर दिखाया गया है।

भूमितलीय मन्दिरः : पल्लव-मन्दिरों में मामल्लपुरम्, कोवीवरम्, गुडिमल्लम् आदि स्थानों में बने हुए देवालय उल्लेखनीय हैं। नरसिंहमों द्वितीय के समय से गहानों को काट कर मन्दिर बनाने की परम्परा समाप्त-सी हो गई। परन्तु प्रारम्भिक पल्लव-रथों का प्रभाव इन मन्दिरों पर दृश्य है। मामल्लपुरम् का समुद्र तटकर्ता मन्दिर उल्लेखनीय है। यह मन्दिर द्वितील है तथा उसमें दो देवालय हैं: एक शिव का, दूसरा विष्णु का। मन्दिर का शिखर सीढ़ीचार है, और उसके गोरे को स्तुपिका बलंहत करती है। मन्दिर एक भारी प्राकार से घिरा है।

पल्लव-बासक राजसिंह द्वारा कांची में केलासनाथ मन्दिर का निर्माण किया गया। यह विस्तार में प्रथम मन्दिर से बड़ा तथा भव्य है। इसमें गंगेशु के अतिरिक्त दो छोटी कोठरियाँ हैं। इस मन्दिर के प्रवेश-द्वारों में देवर गोली का प्रभाव स्पष्ट है। पश्वती पल्लव-मन्दिरों में वैकुण्ठ पैदमल का विश्वमन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मन्दिर का तलीय विनायक वर्गीकार है तथा उसका विमात ६० फुट ऊँचा है। परिवर्द्धित पल्लव कला का यह मुन्दर उदाहरण है।

चोल बास्तु

चोल-राजवंश का प्रभुत्व त्रिवेश दक्षिण-भारत पर रहा, अपितु इस वंश के शासकों ने अपने प्रभुत्व-काल में हिन्दू-बौद्ध तथा हिन्दूशिवा के एक बड़े भाग को भी प्रभावित किया। इन शासकों के समय में स्थापत्य के अतिरिक्त पाषाण तथा कास्त्य-मूर्तिकला बहुत उत्पत्त हुई। लगभग चार शताब्दियों के अपने दीर्घे शासनकाल में चोलों ने मन्दिर-बास्तु को ओर विशेष ध्यान दिया। मन्दिर-निर्माण का प्रारम्भ विश्ववालय नामक शासक द्वारा

उत्तर में दुग्गा-मन्दिर के निमाण से हुआ। इस मन्दिर का गर्भगृह गोल है और उसका व्यास ८ फुट ३ इंच है। मन्दिर का विमान अवतरीय पंक्तियों वाला है। निचली पंक्तियों वर्गांकार है तथा ऊपर वाली पंक्ति गोल है। सभी पंक्तियों में कुहाइयों तथा कुड़े हैं। मन्दिर के गोल गिर्हर में भी कुद्रु अलंकरण बने हैं, जिनपट मिहलताट-अभिप्राय है। गर्भगृह के सामने स्तम्भाधारित मण्डप है। मन्दिर के द्वार पर द्वारपालों की मूर्तियाँ हैं। मूल मन्दिर के बारों और सात लघु मन्दिर हैं।

चोल-नरेश आदित्य प्रथम के लासन-काल में निरकृष्ट में सुन्दरेश्वर मन्दिर का निर्माण हुआ। यह मन्दिर चोल-वास्तु के मध्यवर्ती युग का परिचायक है। इसका गर्भगृह वर्गांकार है और इसमें अद्विमण्डप, मुखमण्डप तथा विमान की घोड़ना भी है।

चोल-मन्दिरों में उत्तर का बहुदीप्तर या राजवराजेश्वर मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। इसका निर्माण प्रतापी चोल समाट राजवराज ने लगभग १००० ई० में कराया। अवधार तथा कलात्मक सौन्दर्य वीर दृष्टि से यह मन्दिर दक्षिण भारत का सर्वोत्तम हिन्दू मन्दिर माना जाता है। वस्तुविनाम तथा प्रतिमालेकरण की दृष्टि से भी यसकाल विद्यमान है। यह देवप्रासाद देवोड़ है। ५०० फुट लम्बे तथा २५० फुट चौड़े विमान प्रभाग के मण्डप में स्थित इस मन्दिर में मध्यकालीन वास्तु-लास्त्र के सभी लक्षण विद्यमान हैं। मन्दिर में दो गोपुरम् हैं। मन्दिर का गर्भगृह, मण्डप तथा विमान प्रभावोत्पादक है। विमान की ऊँचाई १८० फुट है। मन्दिर की तीन बाहरी दीवारों पर आलों की दो पंक्तियाँ हैं, जिसमें विभिन्न देवी-देवताओं की कलात्मक प्रतिमाएँ दर्शी हैं। गर्भगृह को अमेक सुन्दर मूर्तियों तथा चित्रों से अलंकृत किया गया।

चोल-वास्तु का दूसरा बहुत्यनुर्ण उदाहरण राजेन्द्र प्रथम द्वारा निर्मित बृहदीश्वर मन्दिर है, जिसका निर्माण लगभग १०२५ ई० में गर्गीकोड़-चोलपूरम् में हुआ था। यह स्थान उत्तरी से ३८ मील दूर है। मन्दिर का विस्तार 340×190 फुट है। इसका विमान मण्डप (135 फुट $\times 55$ फुट) १५० स्तम्भों पर आधारित है। विमान की ऊँचाई १०६ फुट है।^१

उक्त दीनों विमान मन्दिर इस बात के गुच्छ हैं कि चोल-लासकों ने अपनी समृद्धि के दूर में स्वामत्य का असाधारण विकास किया। भारत के दक्षिणांचल में विद्यमान में मन्दिर चोल-वासकों की पीरवगाया का आज भी उद्घोष कर रहे हैं।

१. विस्तृत विवेकन के निए दें। पर्मी शावन, चही, पृ० १०२-५ ;

मनोरमा जीहरो, ताडप इंडिया एवं इंस-आर्किवेक्चर, प० ३०-११०।

राष्ट्रकूट शैली

बादामी के चालुक्यों के बाद उन भूमान पर राष्ट्रकूटों का आधिगत्य स्थापित हुआ। इस वंश ने मान्यवेद को अपनी राजधानी बनाया। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम (७५४ से ७७२ ई०) के द्वारा एलोरा में कैलाशनाराय मन्दिर का निर्माण पूर्ण कराया गया। यह मन्दिर शैल-बास्तु का अप्रतिम उदाहरण माना जाता है। पुरे पवंत को काट कर बनाये गये ऐचापलनों में यह मन्दिर सर्वाधिक विशाल तथा कलापूर्ण है। एलोरा के प्रबोध शिखियों ने बड़ी कृशलता से पवंत को काटा। ऊंची चौकी पर वह मन्दिर जात भी अपने समय के में छढ़ा है। इसके साथ दो स्तम्भों का निर्माण हुआ तथा काषण्डिमाण यातापली का चित्रण शैल पर किया गया।^१

मन्दिर एक आवताकार प्रांगण के बीच में स्थित है। स्तम्भों की विविध अलकणों से भूषित किया गया। मन्दिर में प्रबोध-द्वार, विमान तथा मण्डप हैं। अधिगत्य २५ कृदि ऊंचा है। मण्डप से होकर नर्मदागृह तक पृष्ठभूत का प्रकोण बनाया है। नर्मदागृह के ऊपर चार तल बाला शिखर हैं, जिसका निर्माण द्विविड़-शैली का है। शिखर पर सूर्योदाय बनी है। इस प्रकार की स्तुपिकारे पल्लव-रूपों में देखी जा सकती हैं। मन्दिर के विमान की ऊंचाई २५ पुट है।

मूल मन्दिर के अतिरिक्त एलोरा में अनेक देवताओं के लघु मन्दिर भी हैं। इन मन्दिरों में मूर्ति-विधान मुख्यचिपूर्ण हैं। मन्दिर का चतुर्स्तंभ (चार मजिला) सम्बद्ध विशेष रूप से उल्लेखनोर्य है। मन्दिर के मूर्तिलोग मुख्य कला से हितीय तत्त्व तक पृष्ठभूत का भाग बनाया गया था और इसी प्रकार छम्भ, अन्ध तत्त्वों तक। हितीय तथा तृतीय तत्त्वों के सम्मुख के भाग मनोहर सज्जानादिकाङ्क्षों से सुसज्जित हैं। तृतीय तल में छन को बैठाकर तुरुंगतंभ भाष्यतुक्त है। अतिम बीया मजिले से बाहर जाने के लिए यांग है।

मन्दिर के मुख्य मंडप में यह विडिकियों थे, जिनमें से दधिण-विश्वम और वासी विडिकी भन्न है। इन गवाडों की पवाली-रचना तथा पशु-बलकरण अत्यन्त रोचक है। विविध द्वारों के अतिरिक्त विडिकियों का विचार इसलिए किया गया कि मन्दिर के अन्दर प्रकाश को व्याप्त आवस्था रहे। अर्घकामुर के नष्टकर्ता शिव के प्रासाद के लिए यह निरांत मुक्तिसंगत कहा जा सकता है।

१. दे० फर्मुलन तथा बैलेंस, वि. केब टेम्पल्स, पृ० ४४०-६३; बैलेंस, एलोरा केब टेम्पल्स, (१८८), पृ० २६-३७।

मंदिर के तारों और एक-एक सम्बोधी वीथी है। इन वीथियों में सुखभिष्टुणे डग से विविध भूतियाँ उकेरो गयी हैं। पश्चिम की ओर बाली वीथी १२० फुट सम्बोधी है जिसमें बड़े आलों में विशाल भूतियाँ उत्तीर्ण हैं। दक्षिणी वीथी की लम्बाई ११८ फुट है। इसमें १२ आले हैं, जिसमें विश्व तथा देवी के विभिन्न रूपों के अतिरिक्त भासिय-मदक तथा शोवर्धनचर हुण की प्रतिमाएँ उत्थापित हैं। अन्य भूतियाँ विश्व के अन्य वातावरों की हैं। पूर्वी वीथी की लम्बाई १०८ फुट है। यहाँ भी विश्व के विविध रूप उत्तीर्ण हैं। उत्तर बाली वीथी १२० फुट सम्बोधी है, जिसमें तारह बड़ी प्रतिमाएँ हैं।

गोप्युरम के अतिरिक्त मंदिर के अन्य वहिभाग रोचक कलाकृतियों से सम्बद्ध हैं। नटराज, अर्धनारीश्वर, उमा-भर्तृश्वर, महिषमर्दिनी, दुर्गा एवं अन्य पीराजिक देवी तथा कथाओं के कितने ही मनोरंजक रूप कैलास-मंदिर तथा एलोरा के अन्य प्राचीनों में भूतिमाल हैं। बास्तुकला की तरह इस काल की भूतिकला में भी गुप्त-पुण की अपेक्षा अधिक विश्वालता, आसकारिकता तथा ब्रह्मलाल देखने की मिलता है।

भारतीय वास्तु का विदेशों में प्रसार

एक पृथक् भूमिकाएँ-मा विचारी पहुंचे पर भी भारत संसार से कभी अलग नहीं रहा है। बहुत प्राचीन काल से भारत के मिवासी अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध तथा उन सागों द्वारा जातायात सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। पश्चिम में प्राचीन भारत के व्यापारिक सम्बन्ध अफगानिस्तान, ईरान, बैदीलोन, मिस्र और यूनान के साथ; उत्तर में सम्भ एशिया; पूर्व में चीन के साथ तथा दक्षिण-पूर्व एवं दक्षिण में बर्मा, हिंदूचीन, हिंदैशिया तथा लंका के साथ रहे।

उक्त देशों के साथ एक दीर्घ काल तक आर्थिक सम्बन्ध स्थापित रहने के कारण भारत और इन देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का होना अनिवार्य था। भौगोलिक सम्बन्ध से भारत के द्वारा सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ाने की प्रवृत्ति का स्पष्ट पता चलता है। अशोक ने 'वसुधैर्व कुटुम्बकम्' की उदार भारतीय भावना को कार्यं रूप में परिणत करने का सराहनीय प्रयत्न किया। उसने जंका, बर्मा, ब्रह्मीरिया, मिस्र, मेसो-ऐजिया, एपीरस आदि देशों में अनेक विद्वान् भेजे, जिन्होंने इन देशों को कल्याणकारी धर्म का सन्देश सुनाया। अशोक के बाद बैरोचन, काल्पन, मातंग, धर्मरक्ष, आर्यकाल, कुमारजीव, मुण्डवर्मा, होदो, शान्तिरजित, दीपकर, वीजान आदि विद्वानों ने चीन, जापान, तिब्बत आदि देशों में सांस्कृतिक प्रचार का कार्य बड़ी लगत के साथ किया। धर्म-प्रचारकों की मह परम्परा १२वीं लाताज्वी के अन्त तक जारी रही। इन लोगों ने किसने ही भारतीय सन्ध्यों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद कर धर्म के साथ-साथ साहित्य के संरक्षण एवं अभिवृद्धि में भी वहाँ प्रसार हुआ।

व्यापारियों तथा धर्म-प्रचारकों के विदेशों में आवागमन के पश्चस्वरूप भारतीय संस्कृति की व्यापकता बढ़ी। एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में न केवल यहाँ की भाषा, रहन-सहन और आचार-विचार को अपनाया गया, अपितु भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला का भी वहाँ प्रसार हुआ।

भारत ने स्तूप तथा भग्निक के रूप में स्थापत्य के दो प्रमुख धार्मिक कृपों को अन्म दिया। इन दोनों के उद्गव तथा विभिन्न लैलियों ने उनके विकास की कथा गिराने अव्यायों में भी गयी है। स्तूप तथा भग्निक का निर्माण भारत की सीमाओं तक ही आवह नहीं रहा। बहुत प्राचीन काल से भारत के पड़ोसी देशों ने इन दोनों को अपनाना भारतीय किया और अपनी आवध्यकताओं के अनुसार उन्हें आगे बढ़ाया। सर अरिल स्टाइन ने हाल में मध्य एशिया में जो अनुसन्धान किये उनमें पता चला है कि ई० तृतीय शती के अन्त तक मध्य एशिया में अनेक भारतीय वस्तियाँ हुए गयी थीं, जिनमें प्रधानतया बोद्ध नाम रहते थे। भारतीयों ने फरात नदी के काठे में भी अपनों कुछ वस्तियाँ बसा नी भी और वहाँ हो गन्दिर भी बनवाये थे। ये गन्दिर चौथी शती के आरम्भ में मण्ड कर दिये गये। अतः इन गन्दिरों का जाकार-प्रकार कथा जा, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। ई० खूब प्रसम शती के मध्य में एशिया के खोलन राज्य का गासक विजयसम्बन्ध दृश्य, विसने बहुत बेरोजगन नामक बोद्ध भिक्षु से दीक्षा ली। उसके बंगल विजयदीप, विजयमय, विजयधर्म आदि हुए। इन गासको के राज्यकाल में बोद्धस्तूपों तथा विहारों का निर्माण नव्य एशिया के अनेक स्थानों पर हुआ। खोलन (कुस्तन) नगर के निकट विस बड़े विहार की स्थापना हुई उसका नाम 'गोश्वर्ग विहार' भिलता है। कुछ समय पूर्व इस विशाल विहार के कातिपय अवसेष प्राप्त हुए हैं। ई० तीसरी शती में खोलन का 'गोमति विहार' जिक्षा का केन्द्र था। चौथी शती के अन्त में जब काल्पन वहाँ गया तो उसने इस केन्द्र को काफी उपल दाना में पाया। वहाँ उस समय महायान-मतावलम्बी तीन हजार बोद्ध भिक्षु रहते थे।

अनुमान होता है कि मध्य एशिया के स्तूपों की निर्माण-सीमी बहुत-कुछ उसी दून की थी जैसी की मर्जी या तदाशिला के स्तूपों में मिलती है। खरोष्टी लिपि में लिखी जाने वाली भारतीय प्राकृत भाषा मध्य एशिया की प्रधान भाषा बन गयी थी। उसमें लिखे हुए कीलाभरी लेख मध्य एशिया के अनेक भाषों में प्राप्त हुए हैं। गक-सातवाहन काल में मध्य एशिया के अनेक राज्यों के भारतीय नाम-जैसे शैल देश, कोलकृष्ण, खोलम्ब, कल्मद, भक्षक, कूची आदि-मिले हैं। इनमें दक्षिण में खोलम्ब तथा उत्तर में कूची भारतीय सहजति के प्रधान केन्द्र थे, जहाँ से भारतीय भाषा, साहित्य और कला का प्रसार मध्य एशिया के अन्य प्रदेशों में भी हुआ।

ई० मन् के आरम्भ में भारतीयों का ध्यान पूर्वी देशों की ओर लियो रुप से जाकर्षण हुआ। भारतीय अन्वेषकों ने धोरे-धीरे मताया, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, अनाम तथा हिन्दिया के द्वीपों में अपनी अनेक वसितियाँ बसायी। उनके नाम बर्म, धीरेत्त, कंबुज,

मालव, दण्डाणे, चम्पा, श्रीविजय आदि मिलते हैं। इन राज्यों में सर्वारों के नाम भी भारतीय रथे गये, जैसे हस्तिनापुर, अपोष्या, वैशाली, मधुरा, कुसुमनगर, रामावती द्वारकती आदि। अधिकांश राज्यों के नामक भारतीय थे। गुप्तकाल में ये स्वातं भारतीय संस्कृति के रथ में पूर्णतया रख गये। भारतीय रीति-त्वात्, लिपि, भाषा और कला का इन देशों में बराबर प्रसार होता रहा। भारतीय नीति वहाँ के निवासियों के साथ खान-नान तथा वैवाहिक संबंध सुनने लगे। सूहतर भारत को एक सीमा बन्धु और लारीम नदियों के कान्ठे तक पहुँची तो दूसरी हिंदूओं और हिंदैशिया के पूर्वी छोरों तक।

हिंदूचीन तथा हिंदैशिया के लिभिज भागों में तास्तुकला एवं मूर्तिकला के जो नीताओं अवशेष उपलब्ध हुए हैं उनमें एक सम्बन्ध समग्र तक इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के व्यापक प्रसार का पता लगता है। उत्तर-युत्कालीन की जो इमारतें हिंदूचीन में मिलती हैं उनमें आत होता है जि बौद्ध तथा हिन्दू इमारतों का निर्माण कुछ समय तक साथ-नाम लगता रहा। वर्षों में कोग और यतोन आदि स्थानों में प्राच्य बौद्ध स्तूपों तथा वैष्णव एवं शैव मन्दिरों के प्राप्त अवशेषों से यह बात प्रमाणित होती है। कम्बोडिया में प्राप्त हिन्दू मन्दिरों का बास्तु विशेष कला से उत्तेजित है। उनका इस लगभग उसी प्रकार का है जैसा उत्तर प्रदेश में देवगढ़ के गुप्तकालीन मन्दिर में मिलता है। कम्बोडिया के मन्दिर चौकोर आकृति के तथा सपाट छत वाले हैं। उनमें प्रदक्षिणा-मार्ग नहीं मिलता। इट से निर्मित लगभग ५० मन्दिर कम्बोडिया के प्रैकुक, कोपंग, बोम आदि स्थानों में मिलते हैं। उनकी बाहरी दीवारों पर उत्कीण शिलापट्ट बड़ी संख्या में मिलते हैं। उन पर प्राच्य, विष्णु, लक्ष्मा, शिव, दुर्गा, गणेश आदि हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं। बौद्ध मूर्तियाँ भी कम्बूज में प्राप्त हुई हैं, पर अपेक्षाकृत कम। हिंदूचीन के पूर्वी छोर पर, जिसे प्राचीन काल में 'चम्पा' कहते थे, मिसोन नामक स्थान में धर्मशाल श्री भट्टवर्मा ने चौथी जाति के अन्त में भद्रेश्वर स्वामी महादेव का एक विशाल मन्दिर बनवाया, जो बाद में हिंदूचीन तथा हिंदैशिया का एक सास्कृतिक केन्द्र बना। चम्पा तथा कम्बूज के अविकाश नामक रथे भारतीय संस्कृति का अच्छा प्रसार हुआ। कम्बूज के अभिनेताओं में भारत को 'आर्यदेश' कहा गया है।

६०-६०० से लेकर प्राप्त: १३००-६०० तक पूर्व-मध्यकाल में वक्षिण-पृथ्वे के बास्तु पर भारतीय प्रभाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस काल के अवशेष भी अधिक मिलते हैं। वर्षों के अनेक लगभगों में, इस काल में बौद्ध तथा हिन्दू मन्दिरों का बड़ी संख्या में निर्माण हुआ। लगभग गहर के लगभग पाँच हजार पर्यावरों में प्राचीन भासनद मन्दिर

दर्शनकारीप है। यह चमो के राजा किंजित के शासनकाल (१०४-१११२ ई०) में बना। इसका निर्माण भारत के कारीगरों द्वारा किया गया। इस मन्दिर में बीड़ घरमें सम्बन्धी मृतियों की समाधि =१ है तथा लगभग देव हवार मृत्युतियों मन्दिर में वयावधान मरी है, जिन पर जातक दृश्य वही सुन्दरता के साथ उत्कीर्ण है। मन्दिर के इच्छामात्र में इस प्रकार के विलासद्वारों का प्रदर्शन उनके तथा दक्षिण भारत के मन्दिरों में प्राप्ति गिरता है। चमोके अधिकारी मन्दिर ईटों के बने हैं। उनको भौतिकी दीक्षारों पर जो अल्पतर है तो विश्वास की पाल-चिकित्सा से प्रभावित है।

कम्बोडिया के अंकोरवर्यमन्दिर में राजा यशोवर्मी के द्वारा बनवाये हए मन्दिर में हिन्दू और बीड़ मृतियों साथ-साथ उकेरी मिलती है। राजा यशोवर्मी सप्तम ने १२वीं शती के अन्त में अंकोरवर्यम का पुनर्निर्माण कराया, जिसमें भारतीय बास्तुकला की ओर विशेष ध्यान दिया गया। कम्बोडिया का सबसे महत्वपूर्ण भारतीय मन्दिर ११२५ ई० में कम्बुज के शासक सूर्यवर्मी द्वितीय के द्वारा बनवाया गया। यह अंकोरवट के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। जिस नगर में यह मन्दिर बनाया गया उसका प्राचीन नाम यशोधरापुर था। इस विशाल मन्दिर में रामायण की सारी कथा को मूर्त्ति बना दिया गया। इसके असाधा मन्दिर में महाभारत और पुराणों के दृश्य, यज्ञ, किंबर, यन्धुर, तथा अप्सराएं जगह-जगह अत्यन्त सुन्दरता के साथ अंकित हैं। बास्तव में यह मन्दिर मध्यकालीन हिन्दू ध्यायण की एक उत्कृष्ट कृति है, जिसमें बास्तुकला, मृतिकला और साहित्य की लालौकी एकत्र मिलती है। अंकोरवट के अतिरिक्त कम्बोडिया में बहुत, बतेचमर जाहिं की इमारतें भी दर्जनीय हैं, जिन पर भारतीय बास्तु का अस्ट्र प्रभाव है। भासाया में मध्यकाल में हिन्दू तथा बीड़ मन्दिर प्रचुरता से खिलते हैं। भलाया के बेलेजनी प्रासाद में बीड़ मन्दिरों के अवशेष तथा कुछ भृत्यपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

सातवीं शती से मुमाला-जावा में शोविवर्य राज्य का भाधिगण्य गैलेन्ड वश के हाथ में गया। गैलेन्ड नोर्म कलिम-प्रदेश से मुमाला के दक्षिण में पहुंचे थे। धीरे-धीरे उन्होंने यजामान, शुगाजा, जावा तथा निकटस्थ द्वीपों पर अधिकार कर लिया। ये जावाक यजामान बीड़ सम्बन्ध के अनुयायी थे। बीड़ मत के उसार के निर्माण वज्र उद्घोष लिया। गैलेन्ड राजाओं ने मगध-जास्तकों के साथ मैत्री-सम्बन्ध रखा। गैलेन्ड राजा बालगुड्रेव ने नालवन्दा में एक बड़ा बीड़ विहार स्थापित किया। इस विहार में जड़ी-कलसत जामक स्थान पर तारादेवी का भी एक बड़ा मन्दिर बनवाया।

जीनेश्वर भास्मन-काल को भवसे अधिक उल्लेखनीय इमारत बोरोबुदुर का स्त्रूप है। इसका निर्माण बड़ी जाताज्ञी के अन्त में जावा में हुआ। इस विशाल इमारत में हृष्टान है। निर्माण ३ शताब्दी को तथा छार के तीन शताब्दीहार। इस भव्य इमारत के द्वारा तथा प्रदर्शिणा-मार्ग विविध उल्लेख गिलापट्टों से सुसज्जित है। कुन्त गिलापट्टों की संख्या १.५०० ने ऊपर है। भगवान् बुद्ध को जीवन-गाथा, जो अनेक बौद्ध धर्मों में मिलती है, इन गिलापट्टों पर बड़ी सज्जीवता के साथ उल्लिखित है। विशिष्यों ने विस कुण्डलता के साथ प्रकृति और मानव-जीवन की अनेकरूपता का चिवाण पत्त्वर पर किया है तब अत्यन्त सराहनीय है।

बोरोबुदुर के अतिरिक्त नवी जाताज्ञी में निर्मित परंबनम् के तीन विशाल मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। ये क्रमशः बहुग, विश्व और विष्व के हैं। तीसरे मन्दिर पर रामायण की सारी कथा उकेरी हुई है। इसे देखने पर महाकाव्य की घटनाएँ हमारी आँखों के सामने मूर्ते हो जाती हैं। मल्लम् नगर के समीप जामो वा बीढ़ मन्दिर है, जिस पर कृष्ण-जीवाङ्गों का सुन्दर प्रदर्शन है। वास्तव में सुदूर पूर्व के ये मन्दिर हिन्दू और बौद्ध धर्म के समन्वय के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मध्यकाल के इमारती पत्त्वर हिंदू-जीन तथा हिन्देशिया में बहुलता से उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ तो मन्दिरों के हैं और ये प्रमुख मकानों के। इन पर भारतीय ऋत्तकरण-चिह्न—कमल, मंगल-घट, कीर्तिमूर्ति, मकार, पश्च-मध्यी, भूता आदि—बड़े कलात्मक एवं प्रभावीत्पादक ढंग से अकित मिलते हैं।

दक्षिण में लंका की प्राचीन वास्तुकला पर भी भारतीय स्थापत्य की पूरी जाप है। अणोक के समकालीन राजा देवानापिल तिस्स ने महेश्वर और संबगिका के सम्मानार्थ एक महाविहार की स्थापना की, जो सिंहल में बौद्ध धर्म का एक प्रधान लेन्ड बन गया। अनु-राधापुर तथा पोलन्नरुव में अनेक बौद्ध स्तूप एवं भी विद्यमान हैं। ई० पूर्व १०० के लगभग अनुराधापुर में जिस दीपालिकार स्त्रूप ('महास्त्रूप') का निर्माण हुआ उसके शोले की ऊंचाई २३० फुट है। इसकी जीर्णी जाती में सिंहल के राजा मेघवर्ण ने जेतवनाराम वा निर्माण कराया।

मध्यकाल में हिन्दू धर्म सिंहल में बहुत फैला। १०वी-११वी जाती में जब सिंहल बोल-शासकों के अधिपत्त्व में राया तब वही बोल-जीली के हिन्दू-मन्दिरों का निर्माण हुआ। कुछ मन्दिरों में बड़े ही सुन्दर अत्तकृत विभान मिलते हैं। जंका में सिंगरिय नामक स्थान पर राजा काल्पन के प्रासाद मिलते हैं, जिनके भित्तिचिह्न उसी प्रकार के हैं जैसे कि हमें अजन्ता में मिलते हैं।

भारतीय स्थापत्य के विभिन्न अंगों का विकास विदेशों में दीर्घकाल तक हुआ। भारतीय संस्कृति ने अपनी उदारता के लाला बन्ध क्षेत्रों की तरह वास्तुकला के दोनों में भी अपना स्वामी प्रभाव स्थापित किया। जलालिदयों तक विभिन्न देशों के कलाकार भारतीय कला के सिद्धान्तों से प्रेरणा प्राप्त कर अपनी कृतियों को मणित करते रहे।

भारतीय प्रभाव की मूर्तिकला इमारतों एवं शिल्प के अनेक देशों में अद्वितीय विचरण है, जो भारत की सांस्कृतिक विजय की मधुर स्मृति सज्जोये हुए है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

१. सुलभत प्रथ

अमिनपुराण : सम्पादक आर्टे, आनन्दाभ्यम्, पूना ।

अर्थशास्त्र : सम्पादक कावेल, बम्बई ।

आश्वलायन गुणसूत्र : सम्पादक—महामहोपाध्याय गणपति जास्ती, गवर्नर्मेट प्रेस, विवेन्द्रम् ।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र ।

कामदकीय नीतिसार काष्ठमीमांसा : सम्पादक सौ० शौ० दत्तात्रे तथा बार० अनन्दाकृष्ण, बड़ीदा ।

जातक पंथ

दिलावदान : सम्पादक कावेल, कैम्बिज, १८८६ ।

नाट्यशास्त्र : सम्पादक रामकृष्ण काष्ठि, ओरिएंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ीदा, १८३५ ।

नवमाहसाक्षरित : सम्पादक प० वामन जास्ती, प्रकाशक गवर्नर्मेट सेक्टर बूफ़ डिपो, बम्बई, १८६५ ।

प्रतिमामान लक्षण : सम्पादक कल्पीनद्रनाथ बोस, प्रकाशक मोतीलाल बनासीदास, बनारस, १८२८ ।

वृहत्साहिता : सम्पादक मुधाकर डिवेदी, बनारस ।

वस्त्रपुराण : बैकटेल्वर प्रेस, बम्बई ।

वस्त्रार्थवत्तेपुराण : बैकटेल्वर प्रेस, बम्बई ।

भविष्य पुराण : बैकटेल्वर प्रेस, बम्बई ।

माकंडब्यपुराण : बैकटेल्वर प्रेस, बम्बई ।

मानसार : सम्पादक प० कु० जाचार्य, प्रकाशक आकाशकोहे मूलिकसिटी प्रेस ।

मध्यमतम् : सम्पादक गणपति जास्ती, प्रकाशक गवर्नर्मेट प्रेस, विवेन्द्रम् ।

महाभारत : क्रिटिकल एडीशन, पूना ।

मृच्छकाटिक : सम्पादक आर० शौ० करमरकर, डितीय संस्करण, १८५० ।

मत्स्यपुराण : सम्पादक हरि नारायण आर्टे, प्रकाशक आनन्दाभ्यम् मुद्रणालय, पूना, १८०३ ।

पुस्तिकल्पना : सम्पादक हेलर चान्द शास्त्री, बोरिएटल मिरीज
कलकत्ता, १८१३।

रामायण : सम्पादक टी० आर० कृष्णाचार्य, प्रकाशक निर्गम नाथर प्रेस,
बम्बई, १८०५।

वायुशुराण : सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८८०।

वास्तुविद्या : सम्पादक गणपति शास्त्री, प्रकाशक यशवंदेश प्रेस, विवेन्द्रम।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण : प्रकाशक चेमराज श्रीकृष्ण दाम, बम्बई।

गिलखल : सम्पादक गणपति शास्त्री, विवेन्द्रम, १८२२।

समरांगमणसूत्रधार : सम्पादक गणपति शास्त्री, प्रकाशक बड़ीदा १८२४।

२. विवेतो यात्रियों के विवरण-तथा आधुनिक ग्रन्थ

अजन्ता, एलोरा ऐण्ड बीरगाढ़ाव नेवज : गुप्त-सभा महाबल, बम्बई, १८६२।

अल्लैसनीज इण्डिया : सालों पायलर एडिशन, १८१४।

अमरावती इकान्यकम् : विवराममृति।

आइडिअल आफ इण्डियन जार्ट : हिन्द, लन्दन, १९११।

आर्किटेक्चर आफ मानसार : पी० के० जाचार्य, १८३४।

आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया : रोलीह, सफोक, १८५४।

आर्ट आफ इण्डियन एगिया : हेमरी लिम्मर, टोरटो, १८५५।

आल खान् न्याम : बाट्टू, १८०५।

इन्हेजन आफ लेन्डेन्डर : मेक्रिप्टल, प्रभाग-सम्परण, वेस्टमिस्टर, १८२३।

इण्डियन आर्किटेक्चर (हिन्दू ऐण्ड बुधिम्ब) : नर्सी बाउन, बम्बई, १८५६।

इण्डियन ट्रेप्ल इकान्यकर : ए० नोस्वामी, कलकत्ता, १८५६।

इण्डियन आर्किटेक्चर : अनन्तालद्दर तथा री।

इण्डिया ऐजू नोन ट्रू प्राइविटी : वास्तुदेवतारण अद्वाल, लखनऊ, १८४०।

इण्डियन आर्ट : वास्तुदेवतारण अद्वाल, वाराणसी, १८६८।

इण्डिया ऐजू सीन इन दि बहस्ताहिता आफ वराहमिहिर : अजय मित्र शास्त्री,
दिल्ली, १८६८।

इण्डिम वैली विविजितेशन : मार्शल, लन्दन, १८५३।

इताम स मिविजितेशन : मार्टीमर हॉलर, बैमिड बुनियासिटी प्रेस, १८५३।

उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : नविन्नाथदत्त तथा कृष्णदत्त वाबोपी,
लन्दनक, १८५६।

एसेज औन आर्कोटिकचर आफ दि हिन्दुजः रामराज ।

ऐसोरा केव टेम्पल्स : बर्जेस, १००२ ।

ऐस्थंट ऐड मेडोलल आर्कोटिकचर आफ इण्डिया : ई० बी० हैवेल, लन्डन, १८९५ ।

ऐस्थंट इण्डिया : कॉर्डिस्टन, लन्डन, १८२६ ।

ऐन इनमालोपीडिया आफ हिन्दु आर्कोटिकचर : गी० के० आचार्य ।

केव टेम्पल्स आफ दि पल्लवजः के० आर० श्रीनिवासन्, दिल्ली, १८६४ ।

केव टेम्पल्स आफ इण्डिया : कर्मसन तथा जे० बर्जेस ।

गृप्त टेपल आर्कोटिकचर : पृष्ठिकीकुमार अश्रवाल, वाराणसी, १८६० ।

जालूक्यन आर्कोटिकचर : अलेक्जेंडर री, पुनमुंद्रित, काशी, १८३० ।

दाउन ज्ञानिग इन ऐस्थंट इण्डिया : विं विं दस, कलकत्ता, १८२५ ।

दाउन ज्ञानिग इन ऐस्थंट डेकन : बेंकटरमा अम्पर ।

द्वी ऐड मरपेंट बिंपिप : जे० फर्मसन ।

दिक्षानरी आफ हिन्दु आर्कोटिकचर : प्र० कु० आचार्य, आसामोई ।

दि जैन स्तूप ऐड जडर ऐन्टीकिलटोल आफ मदुरा : बी० ए० रिपथ ।

दि मानुमेंट्स आफ साची, जिल्ड २ : जे० मार्गल तथा ए० फूले ।

पल्लव आर्कोटिकचर अलेक्जेंडर री : पुनमुंद्रित, काशी, १८३० ।

प्रासाद-निकेत : डिजेन्ट्रनाथ गुप्त, चण्डीगढ़, १८६८ ।

प्राचीन भारत का इतिहास : कृष्णदत्त बाजपेयी तथा विमलचन्द्र पाण्डेय, आगरा, १८६३ ।

प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन : उदय नानायण राय, इलाहाबाद, १८६५ ।

काइव चारुकैव इससे आफ पाकिस्तान : लीलर, लन्डन, १८५० ।

फार्स्पान लेगी : आसामोई, १००६ ।

बुधिस्ट इण्डिया : रिज बेविहास, कलकत्ता, १८५० ।

बुधिस्ट केव टेम्पल्स : बर्जेस, नवीन संस्कारण, वाराणसी, १८६४ ।

विग्निग आफ बुधिस्ट आर्ट : ए० फूले ।

भरहुत, जिल्ड १, २ तथा ३ : बी० ए० बहादुर ।

भारतीय कला : कामुदेव वारण अश्रवाल, वाराणसी, १८६६ ।

भारतीय वास्तु-ग्रास्त : डिजेन्ट्रनाथ गुप्त, लखनऊ, १८५५ ।

भिससा टोप्स : कनिष्ठम ।

महाबोधि : कनिष्ठम्, वाराणसी ।

मेडीबल टेम्पल आफ यि देक्कन : कर्जिनम् ।

मेशस्थनीज एड एरियन : मेलेपिल, सन्दन, १८७० ।

विश्वाकर्मा : कुमारस्थामी, सन्दन, १८१४ ।

वेदिक इंडेन्स : मैकार्डिनल तथा कोय (डिं संस्करण)

सर्वे आफ इण्डियन स्कॉलर : एम० के० सरस्वती, कलकत्ता, १८५५ ।

सेलेक्ट इनिक्यूशन्स : विनेशन्ड, सरकार : कलकत्ता विश्वविद्यालय, १८४२ ।

साउब इण्डियन बुधिस्ट एंटिकिटीज : अलेक्झेंडर री, मद्रास, १८८४ ।

साउब इण्डिया एड इंडस आर्केटिक्यूर : मनोरमा बौहरी, वाराणसी, १८६८ ।

स्टडीज इन अर्सी बुधिस्ट आर्केटिक्यूर आफ इण्डिया : एच० सरकार ।

हिन्दी आफ इण्डियन एड इंडोनेशियन आट : आनन्द के० कुमारस्थामी, सन्दन, १८२३ ।

हिन्दी आफ इण्डियन एड इंस्टन्स आर्केटिक्यूर : कर्मसन, सन्दन, १८०६ ।

हिन्दी आफ काइन आट इन इण्डिया एड सीलोम : सिंध, आसाफोडे, १८३० ।

हिन्दी आफ साउब इण्डिया : के० ए० नीलकंठ शास्त्री, आसाफोडे, १८६६ ।

हिन्दू टेम्पल (२ जिल्डी में) स्टेला ईमरिश, कलकत्ता, १८५६ ।

३. पत्रिकाएँ

आर्कोओलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स : ए० कनिष्ठम् ।

बाटोबस एजियाइ ।

इण्डियन आर्कोलॉजोली : ए० स्ट्रू

इंस्टन्स आट ।

ऐस्पेट इण्डिया ।

जर्नल आफ दि इण्डियन सोसायटी आफ ओरियंटल आट ।

जर्नल आफ रॉयल एजियाइक सोसाइटी, सन्दन ।

जर्नल आफ बिहार एड उडीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना ।

जर्नल आफ य० पी० हिन्दारिकल सोसाइटी, लखनऊ ।

मार्ग ।

ललित कला ।

शब्दानुक्रमणिका

अ

अकृतिम दुर्ग ६

अगस्त्य १०

अगस्त्य महात्मिकार ५

अजयमित्र लालची १११

अवन्ता ८, १२, २४, २६, २८, २९, ११०, अगममयी ३१

११३, १३८

अग्रात्मानु ४७, ५८

अवि ५

अधर्वदेव २०, २२, २४, २५, २८

अनाम १३५

अनांपुर ५०, ५३, ६०, ७८

अनंतरपत्र १२२

अनुराधानुर १३८

अनेकभूमि ४८

अन्तराल १२४

अन्तर्वेदी शिलो ११०

अपवरक (गर्भ) ८५

अपरावती ५, ८, ६३, ६५, ६६, ८२, ८८,

१००, १०१

अद्वैतमण्डप ३, १२४, १२६, १३१

अल्पनु दृष्टि

अलोक मौर्य ४, ४०, ४१, ५२, ५४, ५५,

५६, ५७, ६०, ६६, ६८, ६९,

७०, ७४, ७६, ८१, ८३, ८७, ९१,

९६, ९७, १३४, १३८

अममयी ३१

अमवनाल ३६

अमवाला ६०

असीरिया १३४

अप्तायमायी ५, ४०, ४१

अहाङ्क ३३

अहिष्ठला ७, ४८, ६२, ६३, १०५,

११०, ११४

आ

आगम ५

आगमद के० कुमारस्वामी ४५, ११०

आगमद मन्दिर १३६

आगाम ४२

आगमिका १२३

आगमी ३१

आयाम ३५

आरित स्टाइन ४६, १३४

आर्यकाल १३४

आर्यक मञ्च १०१

आत्ममीरपुर १०

आत्मघन ६०

अभिकानुर १

अधोध्या ३, ३०, ४२, ४२, ७०५, १३६

अर्णवानस्तु २

अर्णवन्मारक ४८

अर्थशास्त्र ५, ८, ४०, ४१, ४८, ५०, ५२,

५३, १११

अद्वैतसीम मन्दिर ७२

व्रात्यात् मण्डप ३०

ए

इ

एकाशमन्त्रण ८८, ८९

एलीरस १३४

एशण ३२, ४८, १०६, १०७, ११३

एलोरा ८४, १२८, १३२, १३३

ई

ऐ

ईरान ५५, १०५, १३४

ईसापुर ३७

ऐतरेय वाचाण ३१, ३३

ऐन्ड्रियर ५१

ऐरिल दुर्ग ८

ऐहोत ११२, १२८

उ

उ

उच्चहरा १०८

उज्ज्वलिमी ७, ५२, ६४, १०४, १०५

उत्तगृ ३३

उत्तरी कण्ठ गीसी १२१

उदक दुर्ग ४४

उदयमिहि ८१, १०५, १०६, ११३

उदय नारायण शास्त्र ८

उच्चान ४४

उरसपुर ३

उरविल्व (उरले) ५५

उष्णीष ६३, १८, ६१, ७५, १००, १०१,

१०३

अंकोरथम १३३

अकोरवट १३०

अंग ३८

ऋ

ऋ ३४

ऋष (रीषा) १२२

ऋषेरी (ऋषगिरि) ८४, ८५, ८६, ११३

- कानिष्ठम् ८६, ८८, ९८, ३०, १०८
 कवरिया मन्दिर १२४
 कानिष्ठ प्रथम् ६४, ७६
 कापिलबस्तु ८, ५२, ५६
 कम्बुज (कम्बोडिया) १३५, १३६, १३७
 कण्ठांग गीती १०५, ११८, १२०
 कलचूरि गीती ११६
 कलमद १३५
 काकनाडकोट ६८
 काञ्ची ३
 काण्डियापाह १०, २८, ३४, ४३, १२७
 कालाकुञ्ज ७, १०८
 कापिशी ४७, ८८
 कामनदक १११
 कांगिल्य ३, ४१
 कामस्थ गीती ११२
 कामया ३३
 कार, स्टीफेल ५७
 कासे ८, १३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८,
 ४९, ४१, ४३, ४७, ४५
 कानिष्ठात १११
 कानीवंश ३३
 कावेरीएट्टनम् ३
 काशीर गीती ११०
 काशय १३४, १३५
 काशय-गिल्य ४, ५
 काट-वेदिका ८७, ८८
 काट-हमिका ८७
 किंजित्य १३०
 कीष ३१, ३२, ३४
 कीति ८५, ८६
 कीर्तिमुख ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, १०७,
 ११४, १२२
 कीर्तिस्तम्भ ८४
 कुलतल गीती १२०
 कुम्भज ३०
 कुमरहार ४०, ५०, ५८
 कुमार गुप्त ३७, १०४, १०५, १०८,
 १११, ११५
 कुमारजीव १३४
 कुलविहार १०२
 कुमुमगर १३६
 कुमीनगर ८, ५२, ५६
 कुमी १३५
 कृत्यार ४४
 केरल गीती १२१
 कैलास मन्दिर १३३
 कृष्ण दुर्ग ८, ४२
 कोळकुक १३५
 कोटारा १३, १४, १६, १५, १८, १९
 कोटा ३३
 कोडासे ८, ४४, ४६, ४८
 कोलाक १२६, १२७
 कोप्य १३६
 कोरिल गीती ८६
 कोलक ८
 कोलुआ ५६
 कोम १३६
 कोमल ६२
 कोटिल्य ८, ४८, ५०, ५१, ५२

गोलामी ५, ८, २७, ४०, ४३, ४८, ५३,	गोपुर ४२, ८१, १३९, १३३
५६, ६३, ६७, ८८, ९८, १०५, १०५,	गोपुर विधान ७
१११, ११२, ११४	गोमति-विहार १३५
	गोली ६३, ८८
	गोप्ता विहार १३५
	गोमतीपुङ्ग मातकणि ६३, ६४, ८२
गोदूराहो १२३, १२४	
गोरमीन ८३	
गोरखेल ८३	
गोतम १३५	गोट्टाल (कट्टकडील) ६३, ८८, १०८

ग

गगधारी शेली १२०
 गल्यार ७४, ८६
 गभीर ३४
 गर्ग ५
 गर्भगृह ३, ८३, १०६, १०७, १०८, १२४,
 १२५, १२७, १३०, १३१, १३२
 गरुदधर्मजन्म ६२
 गरुद-शीर्ष १०७
 गान्धार वास्तु ८६
 गिरिदुर्ग ८, ४४
 गिरिनार (गिरिनगर) ८३
 गुण वर्ण १३४
 गुह १४, २०, २४, २७, ३३, ४२
 गुहावर ३०, ८५
 गुप्तानुव ४, ४८
 गाम विनायास ७

चंद्री-कलसन १३३
 चतु-शाला ४२
 चन्द्रगुप्त भीष्म ४२, ४०
 चन्द्रगुप्त (गुप्त-भगवान्) प्रथम १०४, ११२
 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ६४, ७१, १०४,
 १०५, १०७, ११५
 चन्द्रशाला ५३
 चन्द्रघडी १०, १२, २५
 चमा ३, १३६
 चय ५०
 चारसदा ८३
 चालुक्य शेली १२३, १२४
 चित्तलधाण ५
 चिरांक ३३
 चीन १३४
 चेतिय ४५
 चेतियावट ६६

वैत्यक १००		४
वैत्यगवाइ ८४, ८५		
वैत्यगिरि ६८, ७२	साकुर वडो १०	
वैत्यगृह ६४, ८३, ८७, ८८, ८९	सूकार संस्कृति २५, २६	
वैत्यपुप ८८	अगर संस्कृति २५, २६	
वैत्यगाला ८४, ८५, ८६, ८८, ८९, ९१,		
९२, ९३, ९५, ९८, १०१		
	१०८, १२८	४
बोल-वास्तु १३०, १३१, १३२		
बोसठ योगिनी मन्दिर १२३	तालकल कोटा ३३	
	तक्ष (तक्षक) ३५, ४२	
छ	तथा गिला ५, ७, ४७, ५७, ७६, ८६, १०४,	
	११०, ११२, ११३, १३५	
छरदी ३४	त्वारा ५, ३१, ३५	
छणाल ३७	ताम्रलिलि ३	
छान्दोग्य उपनिषद् ३१	तारापद भट्टाचार्य ३१, ३४, ३५, ४३,	५२
ज	तारीम नदी १३६	
	तिष्ठत १३४	
जगमोहन १२६	तिष्ठन ७	
जगम्यपेहु ६३, १००	तिष्ठातु ३४	
जलदुर्ग ८	तिषुरी ८, ११८	
जागान १३४	तिभूमिक प्रासाद २, ८४	
जावा १३७, १३८	तिमेधि ३६	
जुधार ८४, ८५, ८२, ८३	तिरल ८०	
जूनामङ ६४	तितरीप जाह्नवी ३१, ३४	
जैवाकभुक्ति—तिषुरी शैली ११७	तित्रमालीसी १२१	
जेतवनाराम १३८	तोरण ३६, ५२, ५८, ६३, ६६, ६७, ७१,	७३, ७८, ८३, १०१
जेतुतर ८	तोरण-तेविका ३३	
जङ्घा १२२		

म

पतोल १३६
योग १३६

देमालाल ३३

दोषक २

व

वम (हम्य) ३३
वरिष्ठी काण्ट लैली १२१
दशगुर ३, १०८
दशरथ ६०, ८१, ८३
दशार्ण ६२, ११६
दामीदरापुर १०७
द्राविड लैली ५, ५, १२८, १२९, १३८

धनधानी ३४

धनबुर्ग ४४

धरणीकोट १००

धर्मरथ १३४

धर्मराजिक सूप ५७, ५८, ८६, ८७

ध्वज ४४

ध्राम्यकटक ८८

धार्मिक बाल्य २

व

द्वारवती १३६
द्विवरिच्छेद ३
द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ५
द्विभूमिक ४५, ८४
द्विव्यावदान ७७
दीप्तिनिकाय ४४
दीप्तिकर १३४
दुर्ग ८, १३, ३२
दुर्घट ३४
देवकुल ४५
देवगढ १०६, १०७, १०८, ११२, १३६
देवदुर्ग ८
देवधर ४७
देवानंपिय तिस्स १३८
देवाम्पत्तन ४३

व

लगरहार ५७, ८६

लचना १०६, १०८, १०९, ११२

लट-मन्दिर १२६

लरमिहमङ १

लवभूमिक ४५

लहपान ८४

लहपान-विहार ८१, ८२

नाथर लैली ४, १२८

नामानुनीकोदा ६३, ६४, ६६, ८८, ८९,
१०१, १०२

नाद मण्डप ८४

नारेय तुर्ग ४७

नादमा ८७

नालंदा १३७

नासिक	६३, ८४, १५, २६, २७, २८, २९	पसला	३३
निशम	६	पर्सी जारन	१२, ३१, ३५, ३६, ६१,
नेवासा	३३		१२८, १३१
नोलम्बवाही गैली	१२०	पाटलिपुत्र	७, १२, ४४, ४५, ५१, ५२,
			५५, ५६, ५८, ५९, १०५
		पालदण्ड गैली	१२०
॥		पाणिनि	४०, ४१, ४२
		पांड्य दुर्ग	४२
पगान	१३६	पार्वतनाथ मन्दिर	१२४
पटुहालत	११४, १२८	पाषाण कुट्ठिम	६६
पलीसदन	२०	पाषाण लेदिका	३४
पद्मिन्याम	३	पिटट	२५
पद्मवर्वेदिका	७१, ७५, ७७	पिपल प्रस्तर गृह	५५
पद्मावती	११३, ११४	पिप्रावा	४८
पश्चा	१	पीतगला (पीतगलोर)	६३, ८४, ८५, ८८
पर्णसाला	४५, ५२, ७८, ८८	पूष्पगाला	६८
पराजार	५	पुर २, ३१, ३२	
परिषा	८, ६, ३२, ३३, ४१, ४४, ५०,	पुरी	१२६
	४१, १०२	पुराणुर	३
परंखतम्	१३८	पूरकरिणी	४४
परवर्ती अन्तवंदो गैली	११८	पुरकलावती	७, ८६, ८७
परवर्ती कलिंग गैली	११८	पुष्पमित्र लूग	६२, ६८
परवर्ती गोपात्रि गैली	११८	पेरुवेगी	८८
परवर्ती जोडमध्यल गैली	१२०	पेरपी, हल्लू, सी०	४८
परवर्ती जेजाकभूक्ति गैली	११८	पृथु	३४
परवर्ती मगधवल गैली	११८	पृष्ठीकुमार वप्रवाल	१०८, १०९
परवर्ती महामूर्वर गैली	११८	पोतजन्म	१३८
परवर्ती महामार गैली	११८	पकडुर्गे	६
पलव गैली	१२०, १२८	पलाल	३, ६२
परिचमी कर्णाट गैली	१२१	प्रतिष्ठान	७, ५२, ८८, १०५

प्रदर्शिणा पथ ५८, ६९, ६७, ८३, ९२,	वादामी ११४, ११८, १२०, १२३, १२८,
६३, ८४, ८७, ८८, १००, १०१,	१३२
१०३, १०८, १२५, १२८, १३६	वादा १
प्रयाग ३, ५३, ५४	वालापुत्रदेव १३३
प्रसंगलित ६८	विश्विसार ८६, ८७
प्राकार ८, ८, ८२, ४७, ५२, ६७, ८१,	वीत ४०
	दुर्ज १३, १८, ४३
प्राकारीय इष्टका ४१	वृजहीम ३३
प्राकारीय देव ४१	वृधगृह १०४
प्रारम्भिक आनन्द कर्णाट शैली १२०	वृत्तव्याम ५०, ५१
प्रारम्भिक कलिय शैली ११३	वेतसा ८, ८४, ८६, ८०
प्रारम्भिक गोपाडि शैली ११७	वेनीमाधव वरुआ ३८, ३९, ४८, ६८
प्रारम्भिक चोडमण्डल शैली १२०	वेतिलोन १०, १३४
प्रिकुक १३६	वेसर शैली ५, ८४, १२८, १३०
क	
करात नदी १३५	वृत्तमोहन व्यास ६८
काश्याम ५८, ५९, १३५	वृहत्संहिता ५, १११
ख	
खंडरा ५५	वृहत्याक्षमूर्त ४४
खजौर ८७, ८८, ८९, ८३, ८५, १३२	वृहत्यामन्दिर १२३
खानून १३६	वृद्धद्वार ५१
खमी १३४, १३५, १३६, १३७	बोधगया ६३, ७४, ७७
खांख ५६, ४७, ४८	बोधिद्वाम ७४
खलिकमं विद्यान ३	बोधिमण्ड ७४
खलूचिस्तान ११, २८, ३२	बोरोबुदुर १३८
खाड ३६	बतेश्वर १३९
ग	
	भट्टिप्रोलु २२
	भद्रवमी १३६

महेश्वर स्वामी	१३६	मधुरा	३, ७, ८, ३७, ४५, ५२, ५५, ६२
महक	१३५		६३, ६५, ६६, ६८, ७५, ७६, ७७,
महरुत	४, ८, ३८, ४५, ४८, ५२, ६३,		७८, ७९, ८२, ९०५, ९१०, ९११,
	६५, ६६, ६७, ७१, ७४, ७५,		९१२, ९१४, ९१६
	७३, ८२, ८६, ९००	मध्यमिका	३
महरुत-कला	६६	मन्दसीर	१
माजा	८, ६३, ८५, ८६, ८८, ८९	मनोरमा जौहरी	१३१
भानुगुत	१०४	मन्म	५, ५३
भारपूत्रक	३५	मन्मत	५, ६, ७
भीतरगाँव	१०८	मल्ले नगर	१३८
भमरा	१०८	मल्लशाला	१०२
भुवेश्वर	१२६, १२७	मलाया	१३५, १३७
भूरीजा	४, ७	महाकोसल गीली	११७
भूमिका	४५	महाप्राम	३१
भूमिश्वान	७	महामृजंट गीली	११८
भूमिसप्त	३	महाचैत्र	६५, ६६, ७०, ९००
भूग	५	महाशूष (महाचेतिष)	६६, १३८
भूग कच्छ	७, १०५	महावलिहुरम्	१२८
भोज	६, ८, १२६	महावोधि मध्याराम	७४
भोजगृह	३४	महामोम्पलापन	७२, ७४
		महामण्डलम्	३, १३४
		महानाम गीली	११८
		महाशयकारक	८५
		महाविजय प्रापाद	८२
मकर तोरण	१२४	महावेदिका	६३, १००, १०१
मगधवंश गीली	११३	महावस्त्रिति (मेमालित)	३८
महस्त्रा	११०	महावस्त्रप	६३, ८३, ८८, ९०१, ९०२
मही	१०८	महिलांग	४४
महिना	३, १०४	महिलाश	३३
मण्डप विघ्नान	७	महेन्द्र	१३८

महेन्द्र-मण्डप	१२८	मोहनलोकड़ी	८, १०, १२, १५, १६, १८,	
महेन्द्रवर्मी प्रथम	१२९		२०, २१, २३, २५, २६,	
मातम	५, १३४		२७, २८	
माधवस्वरका प वरस	१५	मोही	३४	
मान	३०, ३१			
मानमोद	८८			
मान्यवेट	१२०, १३२	यज्ञालाला	२	
मानसार	४, ५, ६, ७, ८	यज्ञधी सातकणि	८२	
मानव्य	८८	यज्ञवेद	३०	
मामल्ल गीती	१२८	यज्ञोदयपुर	१३७	
मामुंजेर गीती	११८	यसोदर्मा	१३७	
मानसि	२०, २१, ४६, ५८, ६४	यस्तिदण्ड	७१	
मानव	१३६	युक्तिकल्पतरु	८	
मानवा गीती	११८	यूमा	१३४	
मिर्जापुर	१	यूप	४३, ५५, ८४	
मिर्जुग	८			
मिस्त्र	२८, ४४, १३४			
मिसोन	१३६			
मृद्घमण्डण	८०, ८१, ८१, ८२, ८४, ८५,	राशा-प्राचीर	१३, १४, २६, २७, २८, ३२,	
	१२८, १३१		३३, ४०, ४१, ४२, ४३,	
मेषस्थनीज	३, ४०, ४८, ५०, ५१,		४४, ५०, ५१, ५२, ५४	
	५२	राम	१३०	
मेषवर्णी	१३८	रामपुरवा	५३, ५४, ५५, ५६	
मेति	३०	राजमृह	०, ४०, ४५, ४६, ४७, ५२, ५६	
मेमीहोमिया	१३४	राजघाट	४८	
मेमोपोटामिया	२८, ४४	राजप्रामाण	४१, ५३, ५८, ६०, ६२,	
मेकाहॉनल	३१, ३२, ३८		६१, ९०२, ९११	
मेके	१८, १६, १८, १८	राजभवन	४४, ५२	
(कर्त्ता)	मेकेजी	१००	राजराजेश्वर मन्दिर	१३१
मृदु-दुर्ग	४४	राजवेशम	विघ्नान ३	

राजसभा	४२	व
रामगुप्त	११३	
रामायण	५, ७, ८, ४०, ४२, ४३, १०८, ११०, १३०, १३१	वल्लकम्म ४४
		वस्त्र परिकाम्म ४४
रामायती	१३६	वस्त्र वनपद ३५
राघव	१	वधुहि ४२
राघवेणीवन्मूल	७६, ७७	वनदुर्ग ८, ४२, ४४
राघवुर	३८	वनस्पति ३७
राघवेन	८	वन ५०
राष्ट्रकृत गीती	१३२	वनभी ७
रीति	१	वहेण ३५
ऋग्भासदेवि	६७	वरदिका १२२
रूपद	१३	वराहमिहिर १११
रेनामाहु जीती	१२०	वसिष्ठ ५, ३०
रंगामूर	१०, २८	वसीतपट्टिका १२२
व		वाराणसी ७, ४२, १०५
लक्ष्मण मन्दिर	१२४	वालठर ईलियट १००
लघुण (लेण)	८३, ८५	वासधर प्रामाद ४४
लजित विस्तर	७३	वासिष्ठ ३७
लालमूर्ख महादेव	१२३	वासिष्ठीपूत्र गुलमावी ६३
लुम्बिनी	४०, ४३	वासुदेवलक्षण अप्लास ४१, ४५, ५८, ६०,
लोधन	८, १०, १२, २६, २८, २९, २८, २८, १३	६६, ६८, ७२, ७४, ८७, ९३, १०३, १०४
लोकिक वास्तु	२, ६	वासुदेव प्रथम ६७
लोरिया आराराज	४३, ५६	वास्तुरलनाथली ५
लोरिया नन्दनगढ़	४०, ४५, ४६, ४८, ४८, ४९, ४९	वास्तुविद्या ४४
लंका	४२, १३४, १३५	वास्तोस्पति ३१
		वाहिनीमूख ८
		विजयवर्य १३५
		विजयधर्म १३५
		विजयवीर्य १३५

विजय सम्भव १३५	समाज ३८, ३९, ४०
विदिषा ३, ३, ४२, ५२, ६२, ६३, ६४, ६८, ७०, १०५, ११९, ११२, ११३	प्रेमचिति ३८
विशाखराधिवास ८१	साकात् ७
विनोदविहारी वत्त ४०	सारदी ३२
विमान ४२, ४४, ९३१	शिवर ३, ४३, १२२, १२५, १२६, १३०, १३२
विष्वकर्मप्रकाश ५	शिवर लीला १२४
विष्वकर्मा ५, ४३	शिल्प रत्न ८
विष्वकर्मा चैत्रभवन ८४	शिल्प संग्रह ५
विष्वकर्मणि शिष्य ५	शिलाधूर ६६
विष्वनाथ मन्दिर १२४	शिविर ८
श्रीकर १३	श्रीर ५४, १३०
वेदिकान्तसम्भ १०७, १३८, १३९	शुक्रनाशिका १२२
वेदिवंश १२२	शुर्परक १०४
वेदी २, ३८, ४३	शुर्मेन ६३
वेदह ४८	शैलकर्म ८५
वेदवल्ली प्रात् १३३	शैलदेश १३५
वेगी ८७, ८८, १२०	शैलेन्द्र वज्र १३६, १३८
वेणु ३६	शैलकर्म ८५
वेणाली ३, ३, ४०, ५६, १०५, १३६	शैलवर्द्धि ८५
वृहत् (गृह) ३४	शैल वासन्तु १२८
वृहत् गच्छकुटी प्रसाद ७५	धारमस्ती ७, ८, ४०, ५२, ५६, १०५, ११४
वर्ग १३५	
वशुनदी १३६	श्रीदीति १३५
	श्रीगृह १०४
	श्रीजान १३५
	श्रीविजय १३६, १३७
	शृंग ४३
शक-सातवाहन ३६, ६५, ६६, १३५	शृङ् ३२
शतपथ वाट्ट्वण ३१, ३४, ३८, ३९	शान्ति रक्षित १३४

स सकन्द गुप्त १०४, १०९ सकन्दाचार ८ सतम्भ ४०, ४४, ५३ सतीशचन्द्र काला २४ स्त्रियों १३०, १३२ स्वपति ६, ५२ स्वामीय ६ सप्तर्णी गुहा ५६ सप्तभूमि ४२ सप्तशताब्दी डार १२२ सधा ३०, ४३ समागृह २, १३, १५, ४३, ४६, ५६, ६०, १२७ समरामणमुख्यार ५, ६, ७ समुद्रगृह ३७, १०४, १०६, ११५ स्याम १३५ स्यात् ८६ सहस्रदार ३४ सहस्रस्पृष्ट ३४ सागर १, ३२, १०६ सातकणि प्रथम ६३ साम्राज्य ३४ सामेश्वर ३० सामण ३०, ३४ सारनाथ ४, ५३, ५६, ५८, ६३, ७६, ८४, ११०, ११२ सात्पुत्र ३२, ५४	सोकास्य ४१, ५६ साची ४, ८, ४५, ४८, ५२, ५३, ५६, ६१, ६३, ६५, ६६, ६७, ६८, ७०, ७१, ७८, ७९, ७३, ७६, ७७, ८२, ८६, १३५ सिधु-सोवीर गैली ११६ सिमय ४३, ५५, ५८ सिरपुर ८८ सिहल १३८ सोहल विहार १०२ सीहीर १ सुधमोसभा ४४ सुपर्ण ३८ सुमाला १३८ सुमेर १३, ५४ सुनी ६०, ६८, ८१, १०१ सुखधार ४२ सुखधार मण्डन ५ सुनर ४१, ५८ सुखदार २४ सूर्यवर्षी १३० सोमनाथ ४ सोमनामार्ग ५२, १०१ सोब ४२ सीराष्ट्र-गैली ११८ सगनकुल्ल ३३ सर्वीत्ताला ८१, ८३, ८४ संघर्षिता १३८ सप्तराम ८६, ८८ संकर ४२
--	---

६

हस्तिनाला ६०

हुपेवदन ११६

हिन्द एलिया १३४, १३५, १३६, १३७

हिन्दचीन १३४, १३५, १३६

हिमाचल गैली ११३

हुएन-तांग ०, ४६, ४७, ४८, ५८, ५९,
६६, ८०, ११६

हुविज्ञ ६४

हेलियोडोर ६२

हेवेल ३५, ४४

होदो १३४

होल्समार्क १

हुडपा ८, १०, १२, १३, १५, १८,
२८, २५, २८हुडपा संस्कृति २, ३, १०, १२, १३,
१५, १६, २५, २८हुमिका ६६, ६७, ७७, ८८, ९८, १००
१०२

हुम्म १३, ४२

हरिपूरीया १३

हस्तिनापुर ७, ४१, १३६

प्राचीन वास्तु शब्द-सूची

abacus	फलका
aisle	वीथी
ancone	कूपर/कमटिचा/टोडा
ante-chamber	अध्रगाला/मुखगाला
ante-room	अप्रकाश
anies	उपकाश/उपगाला
apse	गंजपृष्ठ
arcade	महराब अंगो/चाप अंगी
arch	चाप/महराब
arch, facade	मुखद्वार चाप
arch, flying	तिष्यक् चाप
arch, horse-shoe	नालाकार चाप
arch, strainer	भारवाही चाप
arch, receding	पद्मशाली चाप
arcuated	चापयुक्त/महराबदार
astragal=tondino	पोला/कुमुद, कलम
atrium	द्वार-ग्रामण/बलिन्द
balcony	छञ्जला, प्रांगीव
baluster	लघु स्तम्भ
balustrade	लघु स्तम्भ गांकित/वेरिका
barge-board	बलभी-प्रान्त
basement	अधिकान
bastion	तुरंग
bastion, bollow	अवतल तुरंग (तुर्फी)
bastioned	तुर्फीयुक्त
bat	इष्टकार्यपाद/बद्धा

batten door	काण्ठ पट्टिका द्वार
battlement	संचित प्राकार
bay	बौद्धी
bay leaf garland	तेजपत्रालकरण
bay window =bow window	प्रधोपित खिड्को/झरोखा/मोखा
bead and butt	मनको—जुडे
bead, cock	उभरा मनका
bead and reel	मनका—परारी
beaded	मनका सञ्जित
beak-head moulding	चक्कु शीर्ष सज्जापट्टी
beam	धरण, धन्नी, झहरीर
beam and bracket	धन्नी तथा टोडा
bed moulding	प्रवेष्यतल सज्जापट्टी
bowstring truss	धनुयाकार कैची
belfry	घटा-घटा/पघटा-घर/बल-मचान
bell ornament	घण्डिकालकरण
bell-cot (bell cote)	घटा लट्टालिका
bell crank	घटा-कूपेर
bell-gable	घटा-बलभी लट्टालिका
beit course=band course	मचाला
belvedere	हम्मी/बाराहरी
billet ornament	गुटकालकरण
blind lane	अन्धवीची/बल्दीमस्ती
blind window	मन बालाघान
blind door	मनझार
block in course (bond)	दर्जेकाट चिनाई
bolection moulding	उभार मजबा पट्टी/उद्भूत मजबा पट्टी
bond	चिति/चिनाई
bond, English	अंग्रेजी चिनाई
bond, split	कटी चिनाई

bonnet	छाइक, छपरा
boss	उत्तर/कम्पुट-ब्रेसिंग
bottom panel	निम्नांकलक/निचला दिला
bottom rail	देहली पट्टी
bowstring roof	धनुषाकार छत
bowtell	उत्तर सज्जा पट्टी
box grave=cist grave	पेटिका लवाघास/ताकुरी कड़
box gutter	चौकोर नाली
bracket	टोड़ा
bracket cornice	कपोत/टोड़ा कानिस
bracketed stairs	टोड़ा युक्त सोपान
breach	दरार
brick	इंट
brick-nogging	इंट-भराई
broach spire	आटास/बठ्ठाहनु शिखर
building block	भवन खण्डक/भवन इटका
building line	निर्माण-नीमा
bullion=bull's eye	गवाल
butiment	अन्तराष्ट्रार
butt	हस्ता/कुम्हा/हल्पा; (२) कम्जा
caisson	बापतल-कलक
calyx	कणिका
camarin	सूगारिकम्/सज्जागृह
camber beam	कुर्ब छरण/टिकी शहतीर
capping	छत्रक
carrel	प्रकोष्ठ
casement	बल्टमि-बातायन
casement sash	बल्टमि बातायन-नंदार
castle	कोटि/गढ़ी
cavea	अद्वंचन्द्र/रेखमण्डप

cavetto	बुलाव्हापट्टी/सज्जापट्टी
ceiling	वितान/भीतरी छत
chair rail	मल्लवारणी
cill=sill	देहनी
cinquefoil	पचदल
circle valley—swept valley	बर्तुल नालिका/गोल नाली
circular base	बृत्ताकार आधार/गोल आधार
citadel	गढ़ी/कोटला
clapboard	छड़िया
classic architecture	ग्राम्य वास्तु
clearing hinge	वलता कम्बा
closer	मेलक इंटका/मिलाव इंट
clustered column	गुच्छित या संघटित स्तम्भ
coarse stuff	बज्जेप/बरेसी
coh=morter	आच्छादन/समृद्ध/गारा
cockle stairs—spiral stairs	चक्रित सोपान/चुमाऊ सीढ़ी
coffer	अन्तःफलक
collar	कण्ठ
collar beam	कण्ठ धरणी
collar roof	कण्ठ-छटा/कण्ठ-छत
colonnade	स्तम्भ-धोणी
colonnaded	स्तम्भ अणिक
water pavilion	धारामण्डप
columned interspaces	स्तम्भ अन्तराल
compo=stucco	मच/चूना
composed order	संनियोजित स्तम्भशैली
composite order=compound order	मिश्र स्तम्भशैली
concentric rings	संकेन्द्र वलय
conge	अवतल सज्जापट्टी

convolution	सर्वलग्न
coping = coping stone	उपर्योग
cop = merlon	कंपिशीर्षक
corbel	कदलिका
corbel stone	कदलिका प्रस्तर
corner post	कण्ठस्तम्भ
corner = turret	फलंकूट
counter batten	प्रतिपट्टिका
counter floor	प्रतिकुट्टिम्
counter lathing	प्रतिवलन
counter sink	प्रतिगतेन
coupled column	युम्म स्तम्भ
cover fillet = cover mould =	आवरण पट्टी
cover strip	
cowl-staff	भारवण्ड/विहंगिका/बहूगी
cradle roof	अधं-चन्द छत
cramp = clamp	प्रस्तर कील
crenel = crenelle	मोखा
cresting	विच्वर सज्जा
crocket	पत्रालकरण
cross vault	आडा मुच्चद
crowstep gable	काकपदी वस्त्री
crypt	भूमिगृह
curtail step	निम्नतम सौपान
curtain wall	वाहु प्राकारक/परदी
curvilinear	वक्ररेख्योग
curvilinear tower	रेखा विष्वर
cushion capital	चूचकाकार, स्तम्भ गोर्ह
cyma recta	पद्मसज्जा
cyma reversa	प्रतिपट्टिमसज्जा

dado	अधिष्ठानक/स्तम्भ पाद
dado rail	अधिष्ठानक पट्टी
dais	मंच
dancing steps	चक्रिल सोनान/चुमाक सीढ़ी
decking	भरत
demolition	समतलक
diagonal ribs	विकर्ण छत—दाढ़
die=dado	स्तम्भ पाद
dipteral	द्विपक्षि स्तम्भों/दोहरे स्तम्भों लाला
disposition	विनाश
distyle	द्विस्तम्भ
ditch	खाई/खात
dog-tooth ornament	दन्ताक्षरी-बलंकरण
dome	गूम्बद
dome, fretted	कटावदार गूम्बद
dome, hemispherical	अर्ध मॉलाकार गूम्बद
dome, stilted	ऊर्जवगामी गूम्बद
door	द्वार
door-frame	चौथट
door jamb	द्वारस्तम्भ
doorway	द्वार-मार्ग
dosseret	स्तम्भ खोये—गृटका
double dome	दीहरा गूम्बद
dovetailing	समायोजन
dragon beam	वरासमूख धरण
drawbridge	चलसेतु
dressing	प्रसाधक
dressed stone	प्रसाधित प्रस्तर
drop ornament	लटकन भलंकरण
drum-collar	ड्रम/गोलाघार

edge roll	कोट माला
enceinte	प्राकार/परकोटा
enrichment	अवृंदाल
entersol	प्रचलिती/परचलती
extrados	बहिर्भास
eye	मोखा/शरोखा/गवाघ
façade	द्वारमुख
false work	कच्चा काम
feather edged board	छुपडाकरण पट्ट
feathering	पल्लवांकन
fenestra	बानायन/मोखा
fielded panel	उभरा दिला/उद्धुत कलक
filled panel	बेलित कलक
figured glass	चित्रित काँच
finishing coat	अन्तिम लेप
flagged courtyard	प्रस्तरित प्रांगण
flagging	प्रस्तरण
fleuron	भुष्यालंकरण
flier:	सोपान-पद
flight:	सोपान
fitched beam	मनियोजित ब्रशी
floretted	भुष्यालंकृत
flush bead	समतल मनका (सज्जापट्टी)
fluted	ताली मुकुर
flutings, cabled	रजड़काकार नालियाँ
flying buttress	अधृचाप चप्प
flying shelf	प्रवेषित आला
foot block	पादांगमूल खण्ड
footings	नीचे के ग्रसके
footpace	पादपट्टी

fortified town	परकोटा बाला नगर/प्राचीर-युक्त नगर
foundation storey	जाघार तल
foyer	दालान
framed door	चैम्बड्युक्त डार
framed floor	काउटाइटादित फर्ण
framed roof	काउटाइटादित छत
fret, symmetrical	समक्ष प्रालक
fretted border	फटावदार हसिया/बालककृत प्रान्त
fringe, knotted	ग्रन्थिल झल्लरी
frieze rail	मध्य पट्टी (डार)
frontispiece	द्वारमुख मञ्च
gable	वलभि
gable, corbie	सोपान युक्त वलभि
gablet	लघु वलभि/उद्गम
gallery	दीधिका/बीधी
gallery, embrasured	सरन्ध दीधिका
gargoyle	प्रणाल/प्रनाला (व्यालमुख)
garth	बांडा/बाटक
gateway	प्रवेशद्वार/तोरण
gauged arch	प्रमापित चाप
gazebo	धारामृह
going	आरोह/चढ़ाव
goniometre	कोणमापी/गणिया
gorgerin	चीबालतराल
grating = grille	जैगला
grave	मताधि/कव
gravel	बजरी
griffin = gryps	व्यालक/सार्दूल
groin	चापान्तर
groined vaulting	चापान्तरित मेहराब

groin rib	चापान्तर रेखा
ground level	भूमि तल
ground storey	तल भूमि
gusset	कोनिया/कोणिका
gutter bracket	नाली टोहा
half bat	अंडा
half-timbered building	अध्रे काठ भवन
hall	मण्डप
hall, audience	सभा मण्डप
hall, hypostyle	बहुमाल्ही मण्डप
hall, main	मुख्य मण्डप
hall, transverse	आड़ा मण्डप/अनुग्रह मण्डप
hall of private audience	दीवाने आम/गृह मण्डप
hall of public audience	दीवाने आम/आम्भान मण्डप
hand (of doors)	द्वारपल
hand brick	हृष्णकी ईट
handrail = stair-rail	सोपान बेदिका
hanger	आलंब
hanging stile	आलंब पट्टी
harelip arch	मवतलाकार चाप
headers & stretchers	सेक तथा लम्बक
Hellenic	पुनानी
hollow bastion	खोखला मरमत
hollow wall	खोखली दीवार
hollow way	सुरग
hood mould	चाप-छत्र
hopper light	अन्तरवाताबन/भीतर खुलने वाली छिपकी
housed joint	नतिका संयु
household shrine	गृह देवालय

hut circle	कुटीष्ठेरा
impost	नापाचार
icon	प्रतिमा/मूर्ति
idol	देवमूर्ति
implement	उपकरण
indent	वाला
Indo-Islamic	हिन्द-इस्लामी
inhumation	गवाहान
intarsia	दार्शनिकीकारी
inlay	उल्लंचन/पक्की
intermediate ribs	मध्यवर्ती गलाकाएँ/कमरखियाँ
inscribed	उल्लिख
intertie	मध्य धरण
Ionic order	जागोनी लैली
intados	अन्तरवाप
inturned entrance	अन्तर्मुखी द्वार
jamb	-द्वारपाल
jointless flooring	सन्धिरहित कुटिटम/फलं
joist	आघार धरण/मुपा
keystone	बन्धन-प्रस्तर
keel arch	नीतल चाप
kiosk	छतरी
kiosk, pillared	स्तम्भ छतरी
knee	जानुबन्ध
kneeler	दिग्मन्तराक/वकाघार
knee-shaft	कोणदण्ड
lap	पल्ला
larmier	कपोत
lath	पट्टी
latticed screen	झरोखा/नालक

lay panel	सहरिया दिला
lean to roof	एक दाल छत/एक प्रवण छव
lime-stone	चूना-पत्तर
lintel	उल्लरम/सिरदल
line-drawing	रेखांकन
liwan	विकवा
lobe	खण्ड
lock-rail	ताला-पट्टी (द्वार की)
loggia	आगड़ादित बीघिका
loop-hole	प्राचीर रन्ध्र
low relief—bas relief	निम्न उद्भृत
meeting rails	संयोजक पट्टी
megalith	महापाणाण
megalithic tomb	महापाणाण समाधि
merlon	कंगुरा/कपिलीयंक
metropolitan area	महानगर छोव
middle rail	मध्य पट्टी
miniature	लघु/लघुक्षम
minor shrine	लघु मन्दिर
mitred valley	इयम छत
modillion	मकबरा
mohammedan tomb	अलंकृत टोडा
monobloc	एक खण्ड
monument	स्मारक
monumental architecture	स्मारक वास्तु
motif	अभिप्राय
mould	सौचा
moulding=molding	सज्जापट्टी/वसाई
moulding, bead	माणिक्य सज्जापट्टी
moulding, dancette	तरंग सज्जापट्टी

moulding, ovolو	उल्तल सज्जापट्टी
moulding, zig-zag	नहरिया सज्जापट्टी
mortice	फिर
mud brick	कम्बरी इंट
museum	संग्रहालय
nave	भव्यतावाची
nimbus	प्रभामण्डल
nook-shaft	कोण-स्तम्भ
nosing	नासा/नासाकरण
nulling	तहरिया
nymph	मुरमुन्दरी/अप्सरा
octagonal pavilion	अष्टाघर मण्डप
ogive=ogee	सपिल
opus sectile	पाषाण पच्चीकारी
order (of pillars)	स्तम्भ-लैली
order, composed	मुखिन्यस्त स्तम्भ-लैली
oriel window	द्वारोत्तरा/गवाह
ornamentation	अलंकरण
ornamental nich	बलकृत देवकोठ/बलकृत आला
outline	कम्परेक्षा
outwork	वहिर्दीन
oval	अपडाकार
overdoor	दारणीय
overhang	सज्जा/हस्त
overlapping=imposition	अति-छादन
ovolo	मोता
ovlet	मोखा
padstone	धरण-पाषाण
painting	चित्र/चित्रकला
painting, fresco	लेपचित्र

painting, mural	मिल्टिचित्र
painting, rock	गुहाचित्र
painted palace	रंगमठल
pair of stairs	सीढ़ी/सोयास
palette	रंगपट्टका
palisade	बेरा/काष्ठप्राचीर/कठहरा
palm vaulting	तालबूत छद/पेंचाकार छत
panel	फलक/दिला/दिलहा
palmette	तालचित्र
pantile	सरपिन
parapet: gutter	प्राकार नाली/मोरी
parvis=parvise	अहाता/वाटक/वाड़ा
pavement light	भूगू-वातापन
patio	जड़गन
pediment	उद्गम/विकोण
pele tower	बनाकोट
pendant	लटकन/सुमा
periphery	परिधि
perpendicular style	लम्ब शैली
peripteral=peristylar	परिस्तम्भीय
peristyle	परिस्तम्भ
piazza	चौक, आचारादि बीघी/प्रतीली
pictograph	चित्रलेख
picture rail	चित्रपट्टी
pier	चापाघार/मध्यापाद
pier arch	स्तम्भचाप
pilaster strip	कुद्दवस्तम्भ-दण्ड
pillar	स्तम्भ/लाठ
pinnacle	चित्तर
pivot	विवरिनी/कूल

plan ground	तलविन्यास/तलचाल
plan, elevation	कार्यवृच्छा
plinth	फुर्ती
plinth block=foot block	पादांग/बाट
polychromatic	बहुरंगी
quadrangle	चतुरव्याप्ति चौक
porch=portico	मुख्यमन्डप/द्वारमण्डप
portal	द्वार तोरण
portal of entry	प्रवेश-द्वार
porticulis	बैगला
portico=porch	द्वार मण्डप
precast stone	इक्का पत्तर
postern, spiked	कीलधुक्त द्वार
pre-history	प्रारितिहास
processional route	शोभायात्रा मार्ग
projection	प्रशोणण
projecting boss	प्रक्षेपित कुल्लक/उभरा कुटा
protohistory	आद्य इतिहास
pylon	गोपुर/सिंहपुर
quoin	कोण
rail=railing	वेदिका/वेण्टिका
railed parapet	वेण्टित प्राकार
railing pillar	वेदिका स्तम्भ
random rubble	अनगढ़ पत्तर-चिनाई
rampant arch	झंपी खेहराव/चाप
rampart	दुर्ग-प्राचीर/परकोटा
rear-arch	पहचाप
rear corner	पहचकोण
reel and bead border	मराठी-गुरिया अलंकरण
refectory	मठभोजनशाला

relic casket	धातु मन्त्रपा
relief	उद्भूत
relief, bas	निम्न उद्भूत
relief, high	उच्च उद्भूत
relief sunk	गहरा उद्भूत
recessed arch	दोहरी चाप
recessing	वलयन्त
remains	अवशेष
revolving platform	ज्ञमित चत्वर
replica	प्रतिकृति
rib	चापलाका
ceiling	वितान
ring building	गोल निर्माण
ring stone	बलय-प्रस्तुर
ring-well	बलय कृप
ritual monument	वर्जि-स्मारक
rock-cut	बैलहूल/शिलाहूल
rock-edict	शिलालेख/शिलोरकीण धर्मादेश
rock-cut facade	बैल गृहसुख
rollmoulding—scroll moulding	गोला देना/कुण्डलिनी सज्जापट्टी
roof	छत
roof, compass	अष्टवृत्त छत
roof, domical	गुम्बदी छत
roof, gabled	तिकोनी छत
roof, gambrel	बलभंडी छत
roof, low-pointed	जड़ीन्मुखी छत
roof, wagon	सकट छत
rosette	कुलिलका
rotunda	गोलभवन
royal figure hall	देवकुल मण्डप

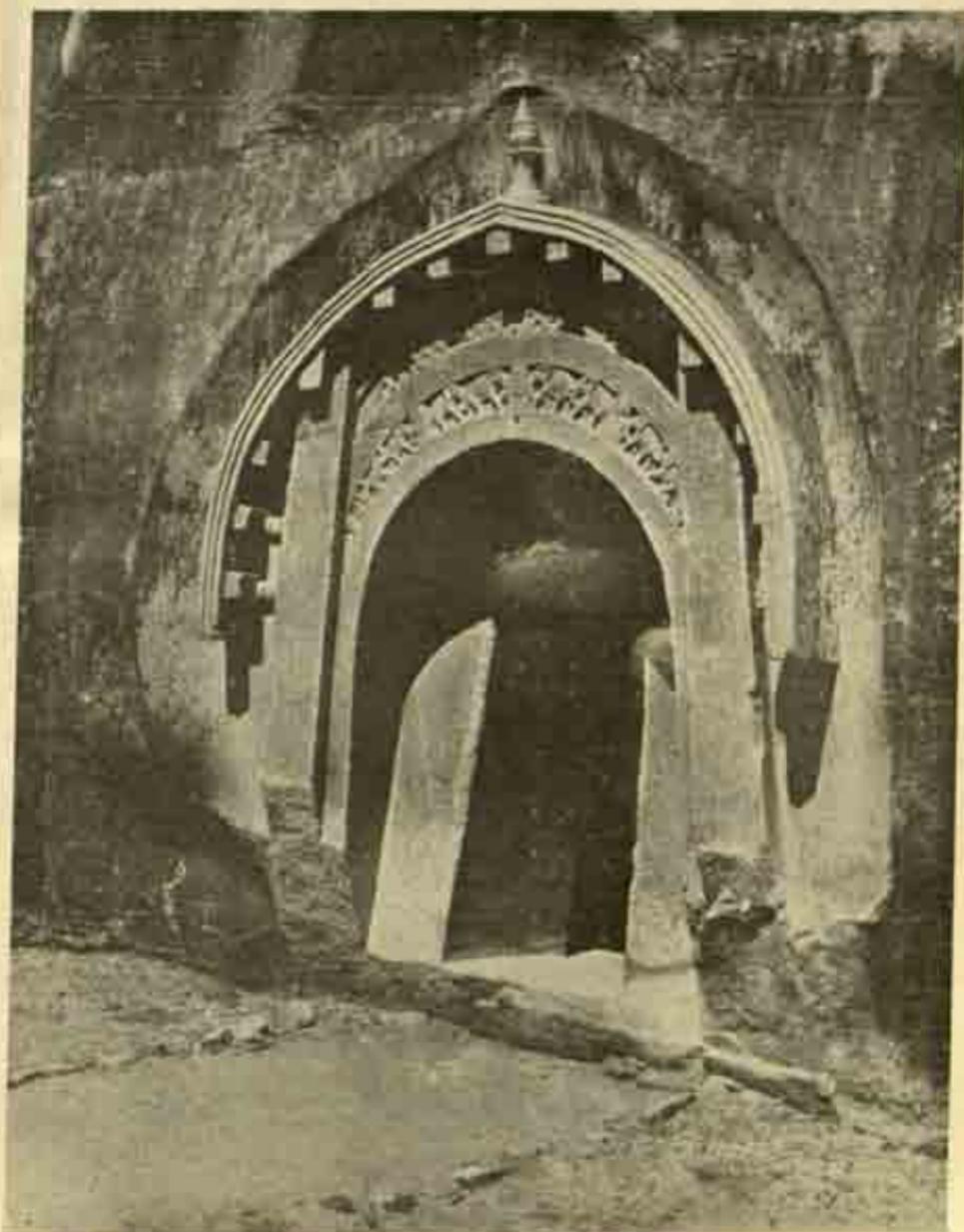
rubber	मुनायम ईंट/अम्बूजक
rubble	असंगड पत्तर
ruins	भग्नावशेष/घण्टहर
run (of stairs)	आरोह
ridge	छद्म-पृष्ठ
sacrificial post	पूप/यज्ञस्तम्भ
sanctum	गम्भीर
screen, arched	मेहराबदार परवा/चापबालक
sash	सन्धार/लौखटा
school	सेसी
screen of arches	चाप-बालक
sculptureque	मूर्ति-साकृत्य
sculptured art	मूर्तिकला
sepulchre	तमाचि
semi-divine	बधे ईबो
septal stone	फटपाण्याण
seraglio	अस्त्रपुर
severy	मेहराब कळ
shaft tomb	गते तुम्ब
shrine	देवमन्दिर
side posts (jambs)	पाई स्तम्भ
sill	तवाश/दहली
side wall	पाईभित्ति
sitting-out place	चढुतरा
soak pit	शोषक गते
souterrain	मुरग
sky-line	चोम रेखा
sloping outline	प्रवण रूपरेखा
sloping surface	प्रवणतल
sluice	बलकटपा

soffit	चाप-वितान
solid walling	अनभिल्लि-निर्माण
spandrel	चाप-स्फीति
spire	जिक्कर
staff bead	माणिक्य पट्टी / मनकापट्टी
stagger	जन्तरीकरण
stake	यूनी/स्युणी
stanchion	धातुदण्ड/धातु स्तम्भ
statuary	मूर्तिविषयक/मूर्ति-समूह
stele = stela	पट्ट/गिलापट्ट
stellate	ताराहृति
stencil	स्टैन्सिल/कटाव-सौचा
step	सोपान/अवरोहिण
stepped battlement	कंगूरा/आरोही करिंगोथक
stepped pyramid	आरोही गिरामिह
step-well	बापी/बावडी
stilted	अवस्थनभी
stone dressing	संगढरेसी
stone-flagged (floor)	चौके का फलं/गिलापट्ट चुट्टिम
stone grille	पत्त्वर का जेगला/पालाण जालवेदिका
storage bin	बाल्यकोठार
sculptor	मूर्तिकार/मूर्तितशक
stoup	तीर्थयात्र/सुरापात्र
streatcher course	लम्बक रद्दी
stress & strain	प्रतिबल तथा विकृति
string	मोरान-नंधार
stucco	तुष्ठि/मज
stylobate	स्तम्भाधार
subbase	उपपीठ
sub-structure	नीच/आधार

sunk arch	निमच्छित चाप
supercolumn	उच्चतालक
swan-neck	हंसशीलक
swag	बन्दनवार
swept valley	नसिया
symbol	प्रतीक
tablet	पट्ट
tablet, votive	संकल्प पट्ट
tablet of homage	जायाग पट्ट
taper	सुष्ठुपाकार
tapering	सुष्ठुपाकार प्रवृत्त
tassel	सालर/शलतरी
tectonics	निर्माण-विज्ञान
archi-tectonics	वास्तु-विज्ञान
temenos	मन्दिर-प्रांगण
tempera—distemper	समारबन्न/डिस्टेम्पर
template	भराव पट्टी
terreplein	प्राकार पृथक्तल
theatre	रंगभूमि/रंगशाला
thrust, lateral	पाल्वे प्रणोद
tierceron	बलवधेनी शलाका
tiling	ठाईल लगाना
timber-laced	दाक-बेंगिल
titanic	करिकाय
tomb	समाधि, तुब/मकबरा
tomb-chamber	समाधिकक्ष
tondino	अघं गोला
tope	स्तूप
topia	भित्ति विश्वकला
topiary	उद्घान-प्रसाधन

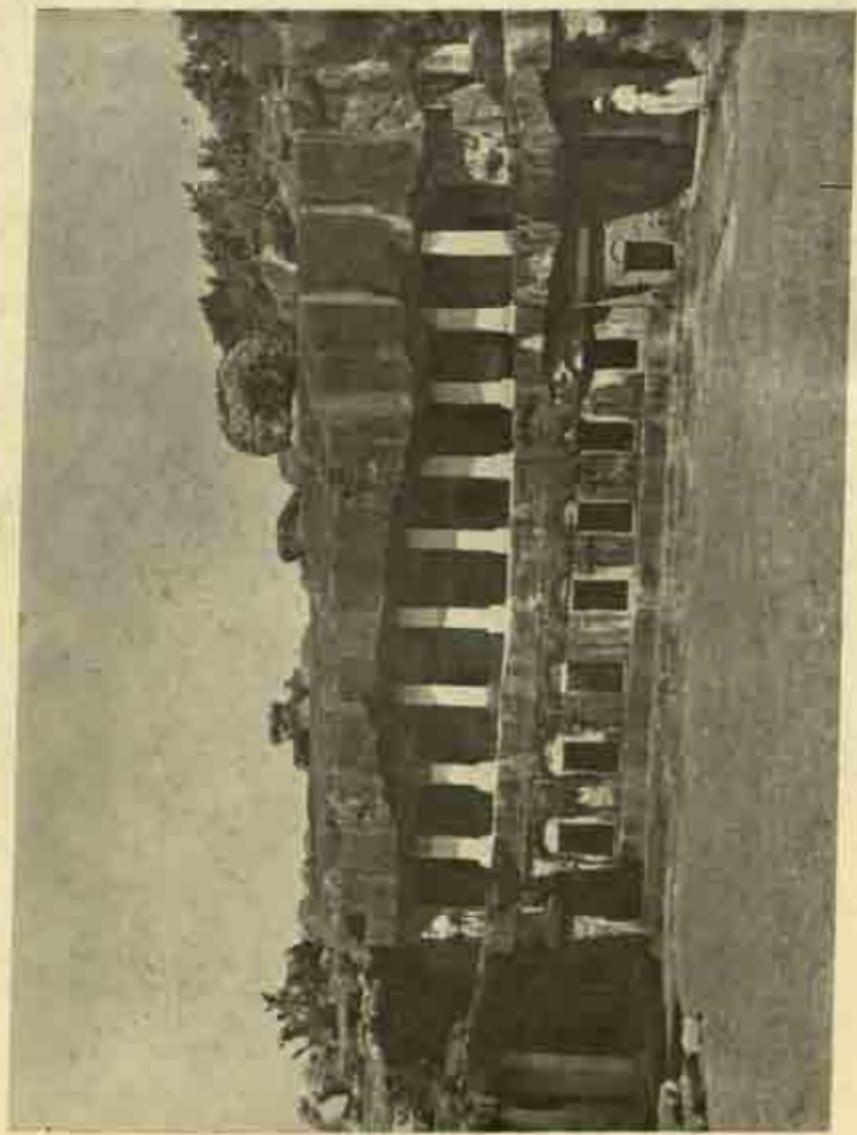
top architrave	बीपे उत्तरंग
top rail	शीघ्रगट्टी
torso	प्रह/सपिल स्तम्भ
torus	बोला
tower	प्राकार जट्ट/कुञ्ज
tower of victory	जयस्तम्भ/कीर्तिस्तम्भ
town-gate	नगरद्वार
trabeate	धरणिक बास्तु
tracery	जालालकरण/जाली
tracery, bar	बलाका-जाली
tracery, blind	अन्धी जाली
tracery, plate	पट्ट-जाली
transom—transome	उप-सिरदल
transom window	उपसिरदली-चिङ्गी
transverse rib	आँखीचिरा/अनुप्रस्थचिरा
trefoil	चिंदती
triforium	चिंदारी/तिदरी
triple curve	चिंदग
triple openings—triple gate-way	चिंदारी/चिंदोलिया
triple floor	त्रिगठित (काठ) कल्प/कुटिटम
tripolis	त्रिपुरी
triumphal column	जयस्तम्भ
truncated	कण्ठित
tumulus	स्तूप
turret	कमूरा/कुञ्ज
turret, balconied	छव्वेदार कमूरा
turret, domical	गुम्बदीय कमूरा
twelve pillared	बारादरी
tympanum	तिकोना द्वारमाचा/चिकोन द्वारकीय

underground cave	भूमिगत गुहा
valley	दरी
vandalism	कलाविच्छिन्न
vault—arched roof	महराबदार छत/चाप छद
vaulted tomb	महराबदार मकबरा
vestibule	अद्यमण्डप/अन्तराली/प्रतियारा
volute	कुर्लित
vousoirs	महराब कन्नी
wagon-head ceiling	जकटाकार वितान/अधंगोल वितान
wagon-roof	अधंगोल छत
wagon vault	अधंगोल चाप
waist string	कटिसूत
wall of fort	परकोटा/प्राचीर
wall painting	प्रितिचित्र
wall-ribs	प्रितिजलाका
watergate	जलद्वार
water pavilion	बल-मण्डप
window, bay	अवृ-वातावरन/सरोखा
window, bow	घनुपाकार खिडकी/घनुर्घवाक
window, casement	बौखटेवाली खिडकी/बतुण्काढ़ वातावरन
window, circular	गोल खिडकी
window, oriel	सरोखा
window, rose	गोल खिडकी
window, sun	सूर्यमुखी वातावरन
window, wheel	चक्र वातावरन
working stone	प्रस्तरकम्

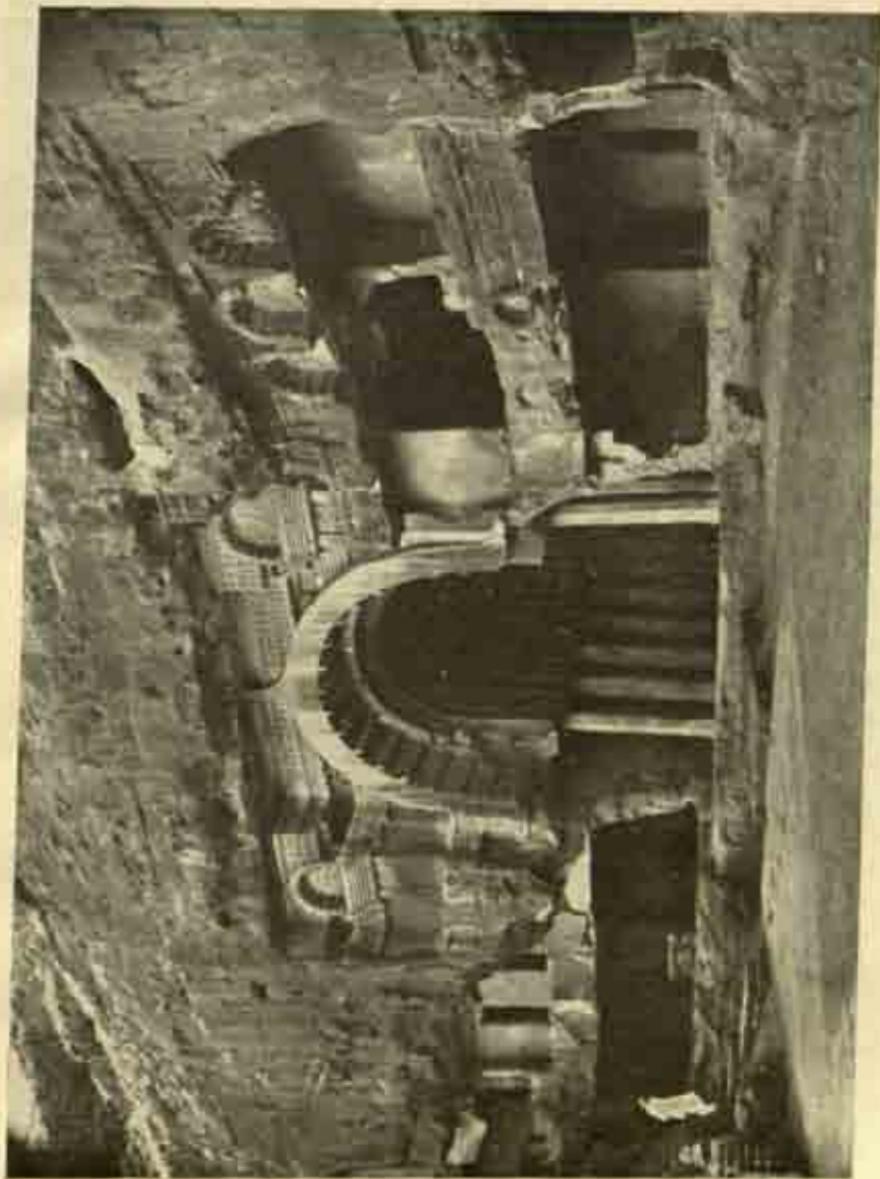


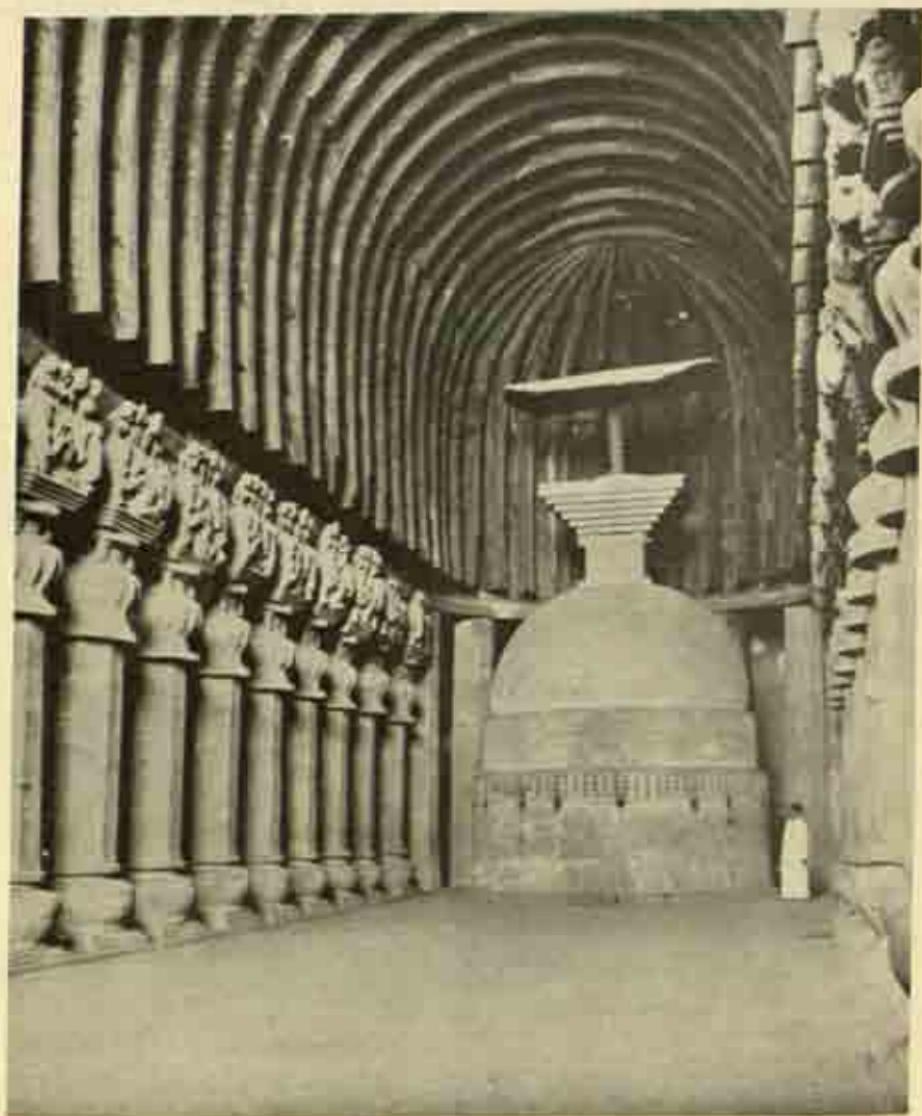
लोमण झट्टि गुहा का प्रवेश-द्वार [बाराबर, मगध]

गणि गुणा, उदयपीठ | उदयसा |

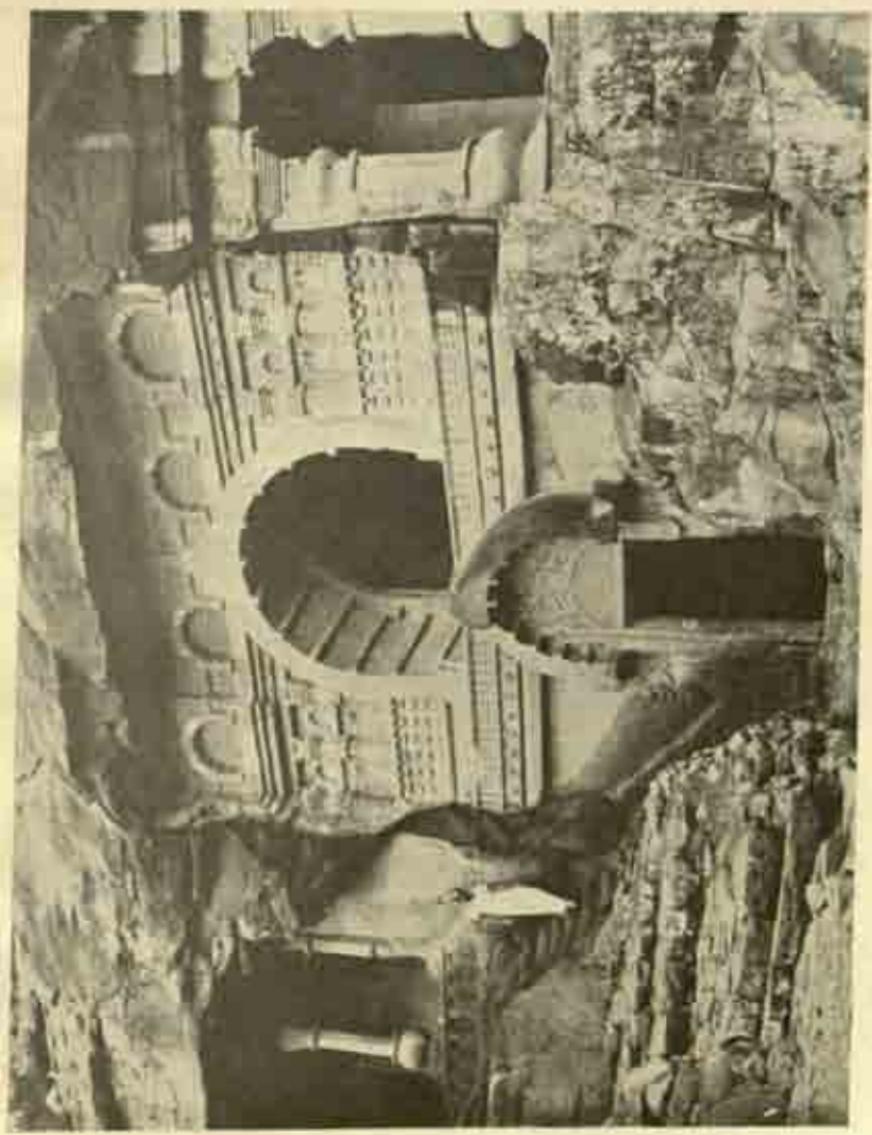


Eintrittspforte zu den Höfen

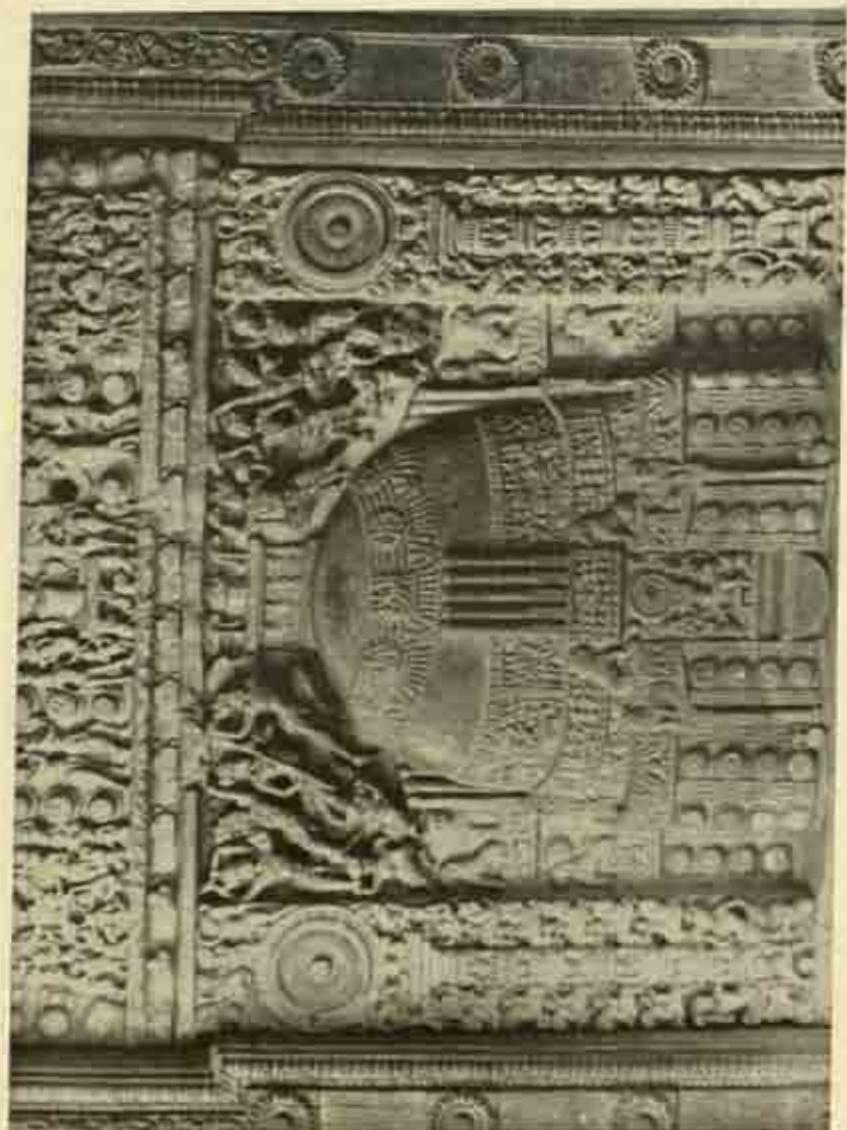




बाले का मुहा-चैत्य तथा अलकृत स्तम्भ

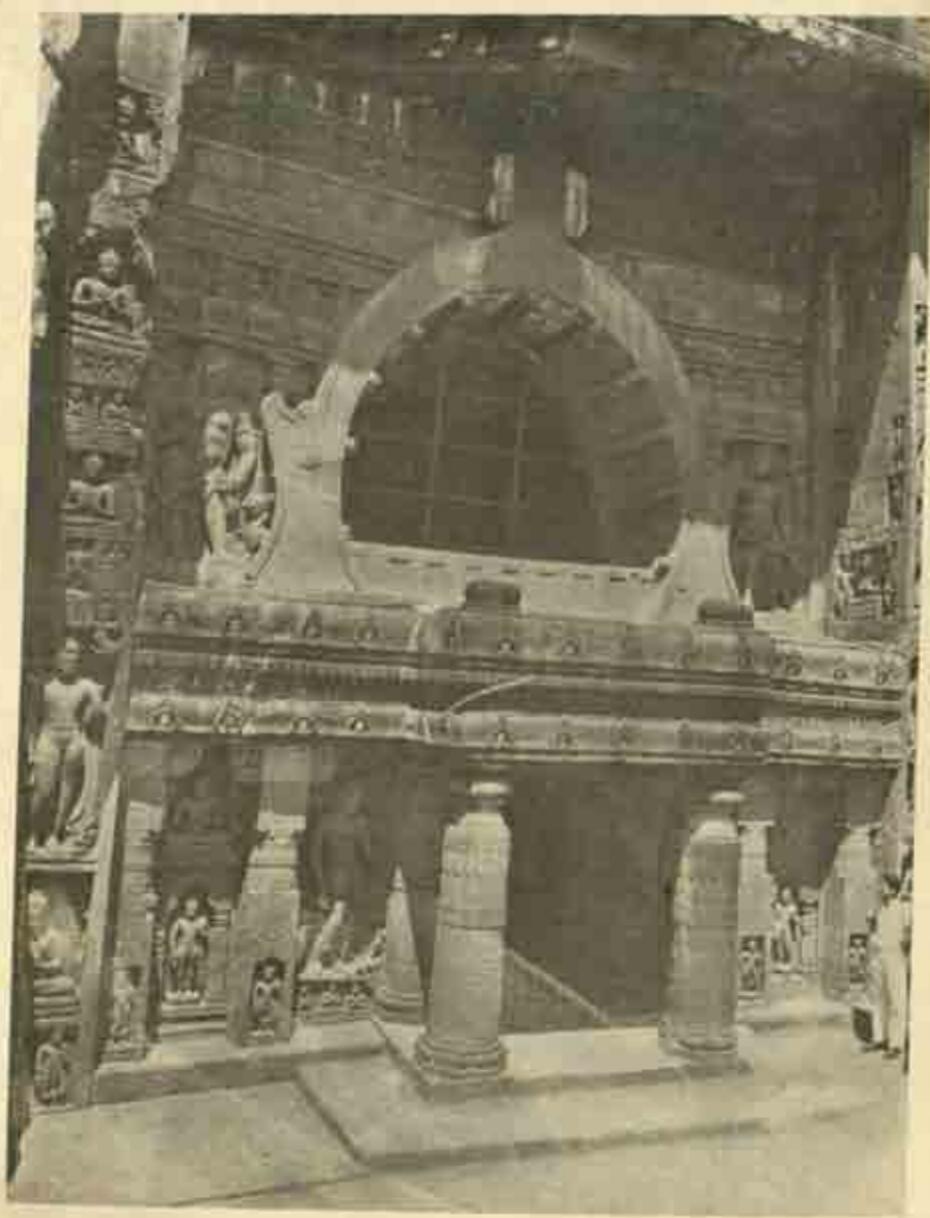


नारिया के प्रमुख जल्द का दृश्य



मार्गी का युद्धकालीन पर्मिन्दर

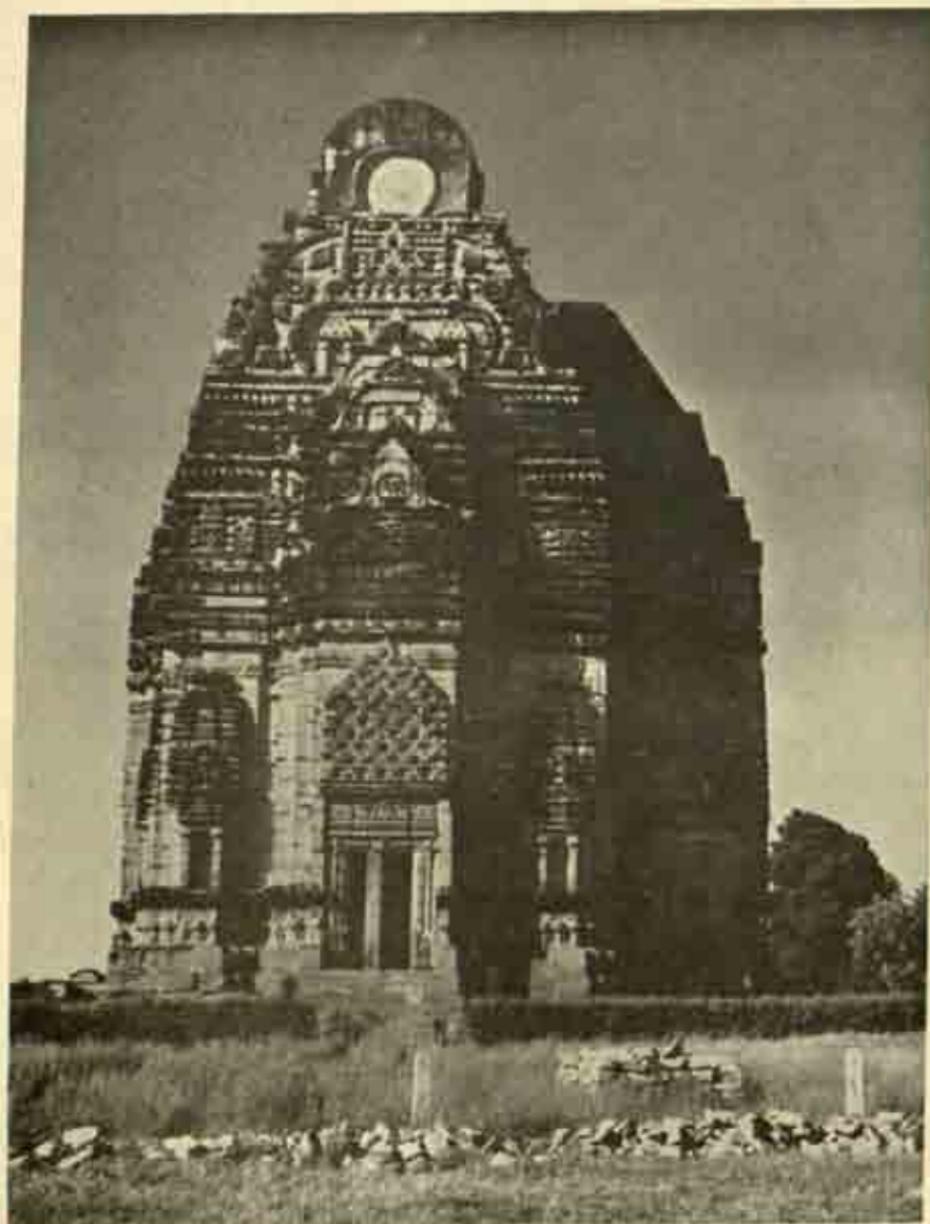




ब्रह्मना की वीलकुल मुहा

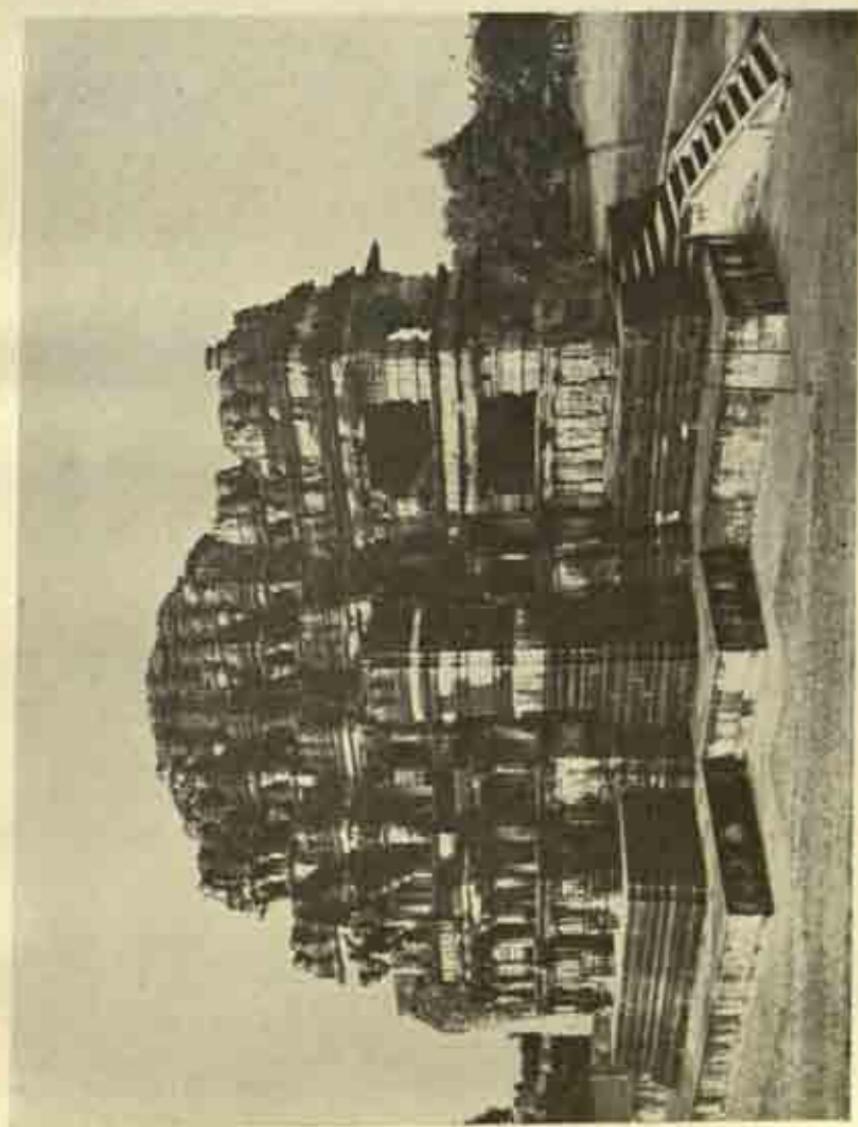


लक्ष्मण मन्दिर, मिरपुर (जि० रायपुर)



गुजरातीहार-कालीन 'तेजो का मन्दिर', म्बालिमर दुर्गे

मातृ-वहन मन्दिर, गवाहाचाल





माला देवी मन्दिर के अलंकृत स्तम्भ, म्यारमपुर (जि० विदिशा)

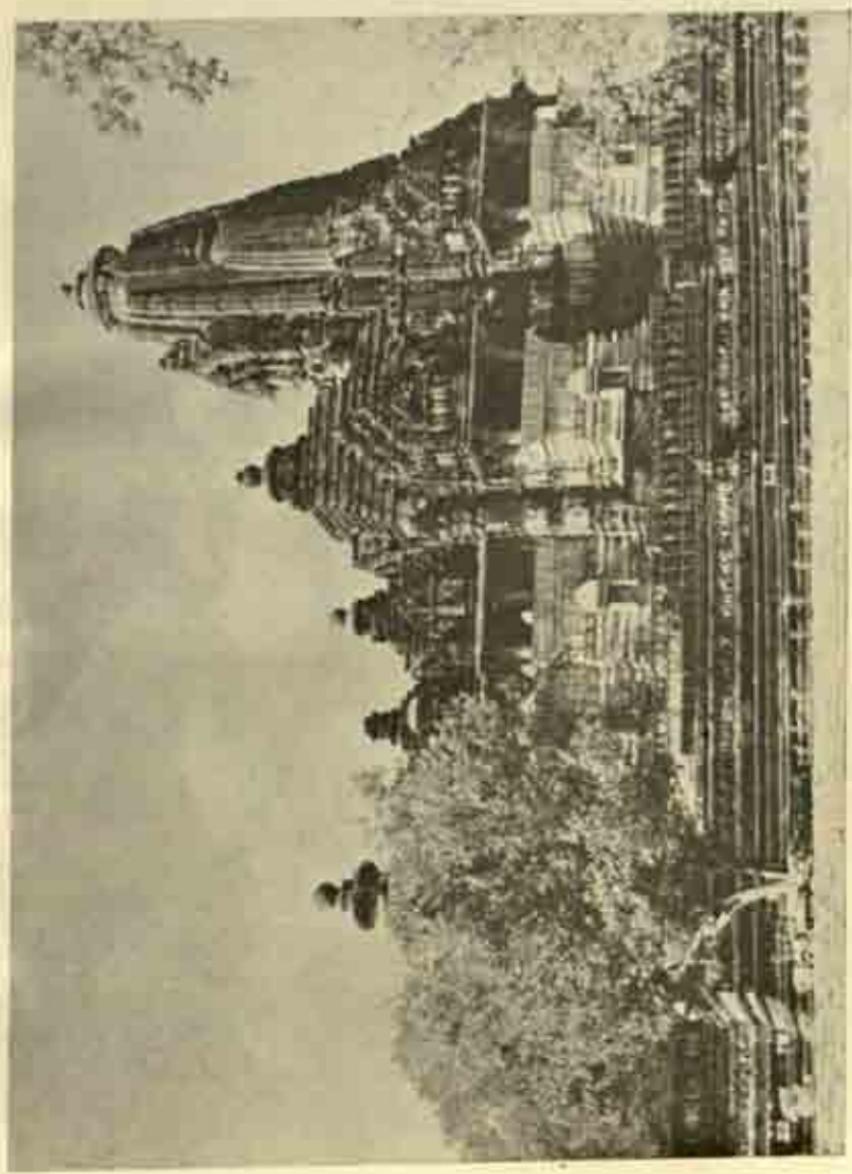


वांद्रीगढ़, जिला गढ़वाल (मध्य प्रदेश) का मन्दिर

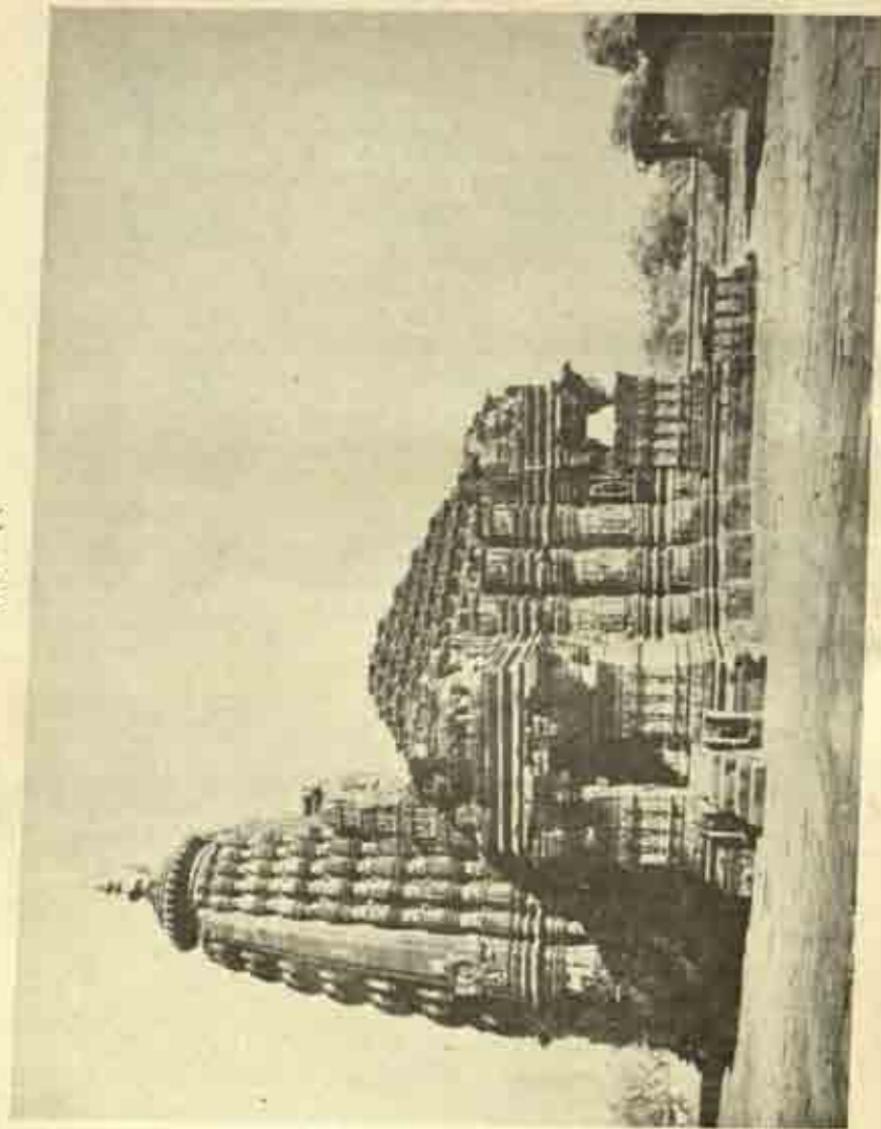


पाश्वनाथ मन्दिर, खजुराहो

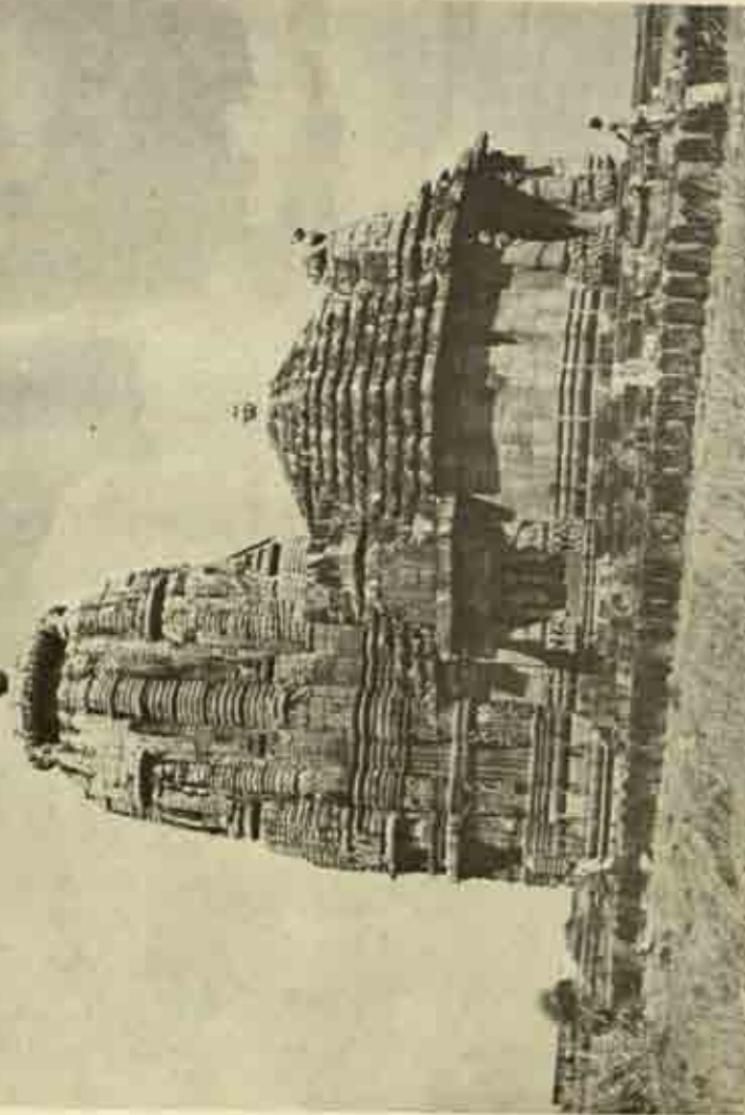
तदमाला नेप्ति, ब्रह्मरही

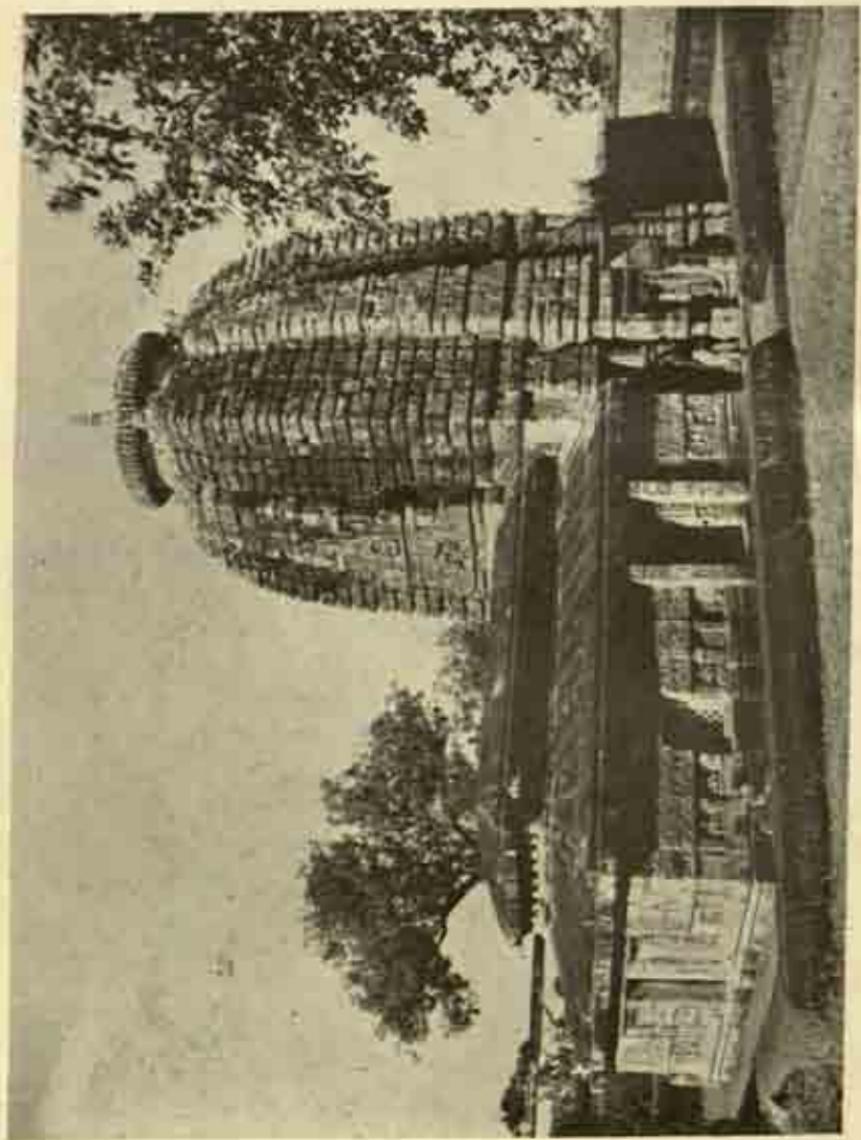


परमारथालय उद्योगपाल मन्दिर, देवरी (१०० फुट)



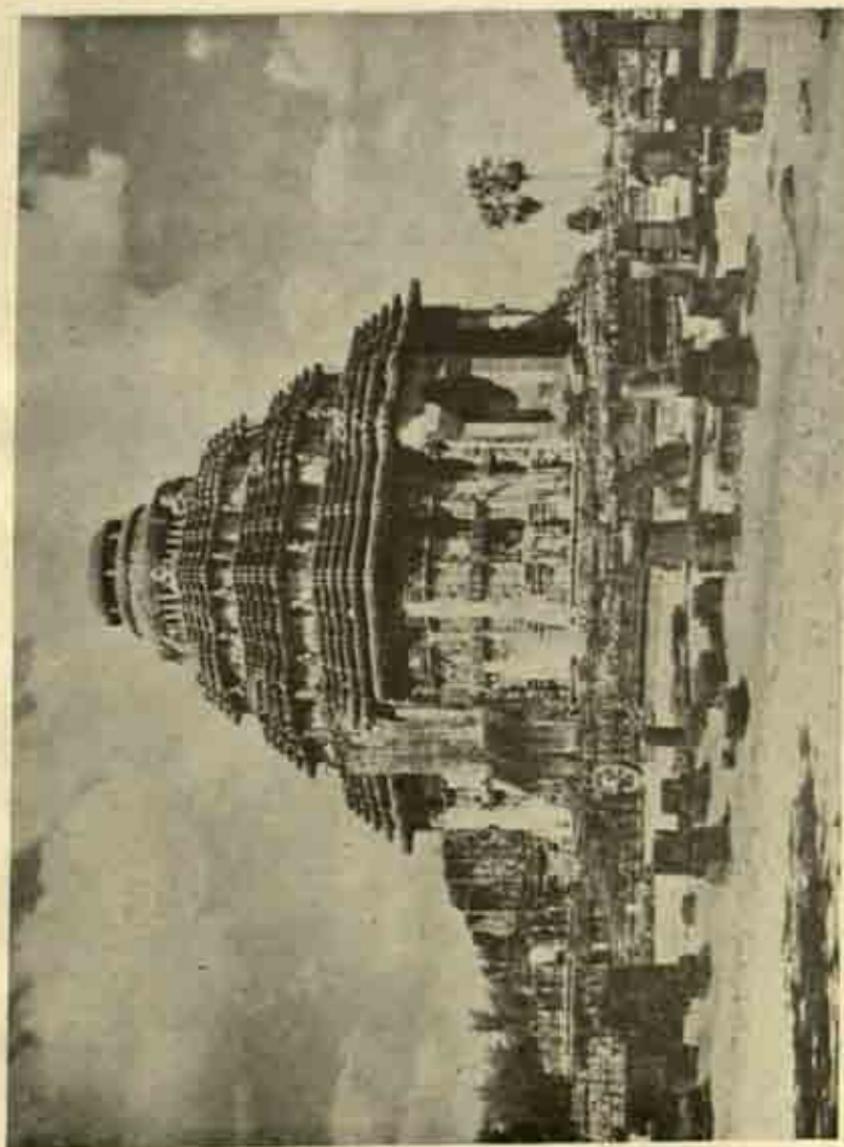
रामारामी मन्दिर, घुबनेश्वर

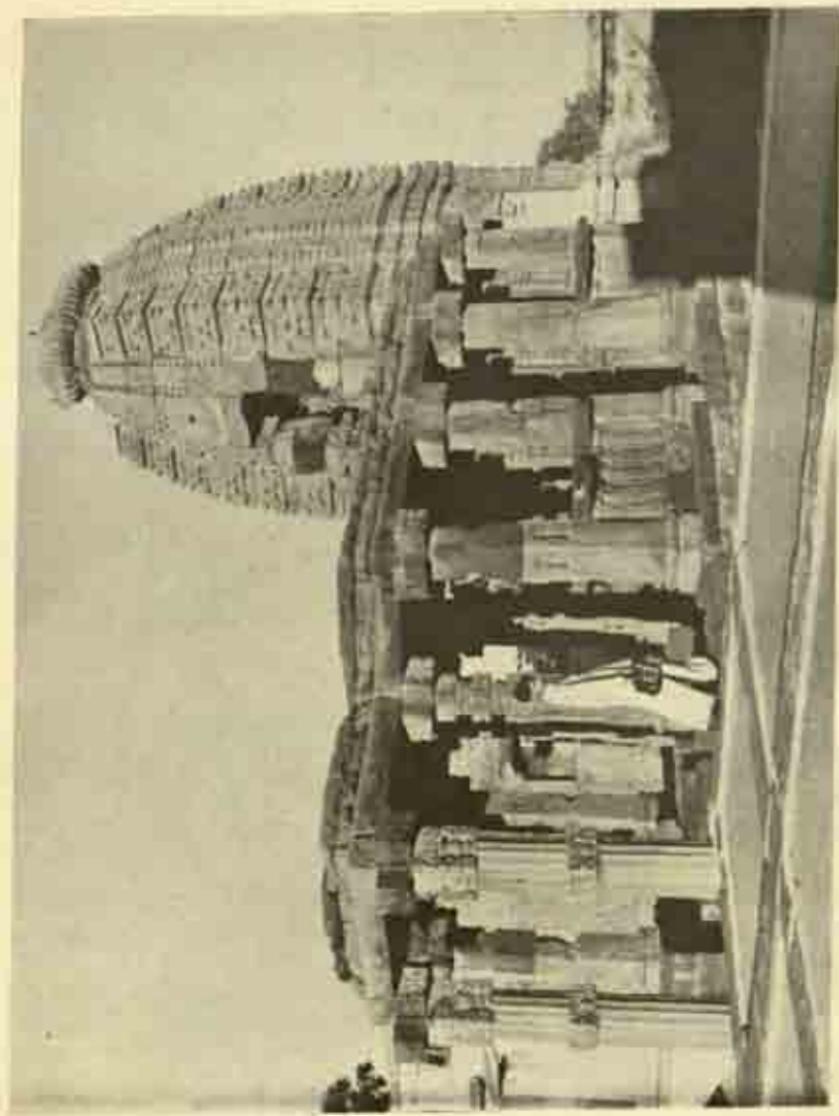




परम्परामेश्वर बाहिर, भुवनेश्वर

कोणार्क (उडीमा) का मुख्य-प्रतिकर



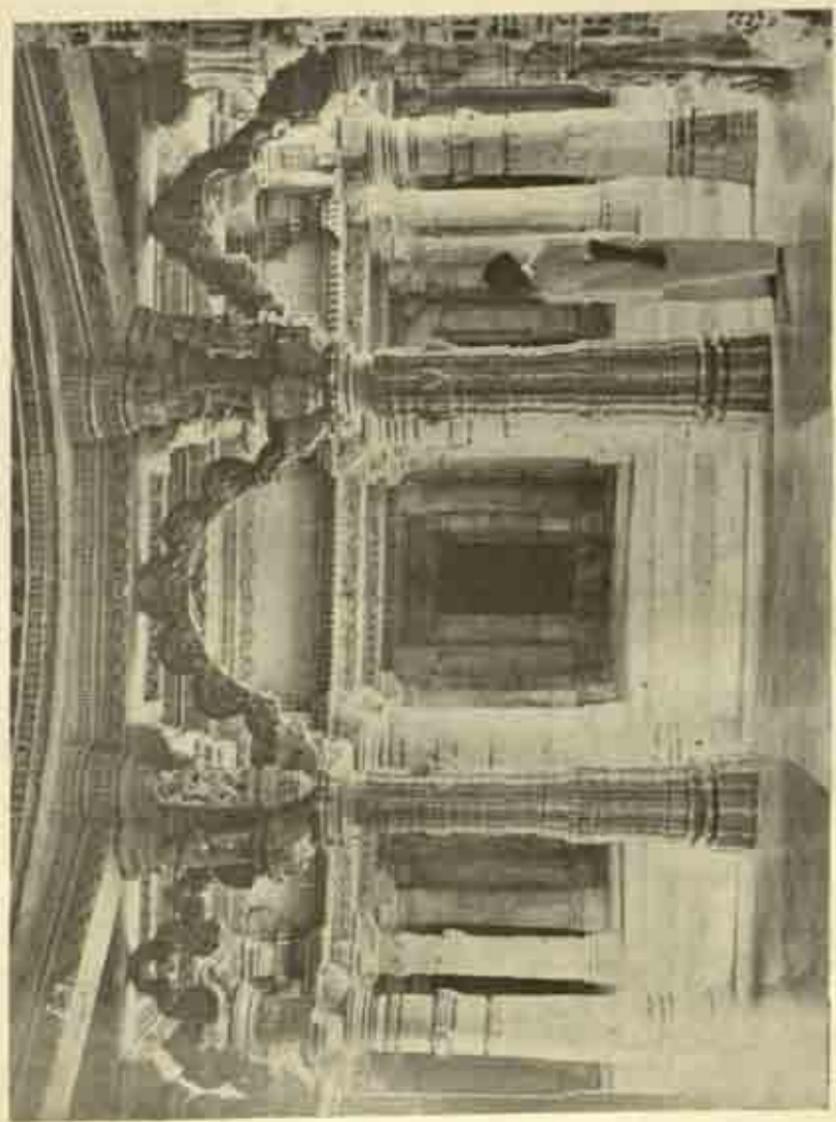


सुर्यनारायण मन्दिर, अंगमिठा (राजस्थान)

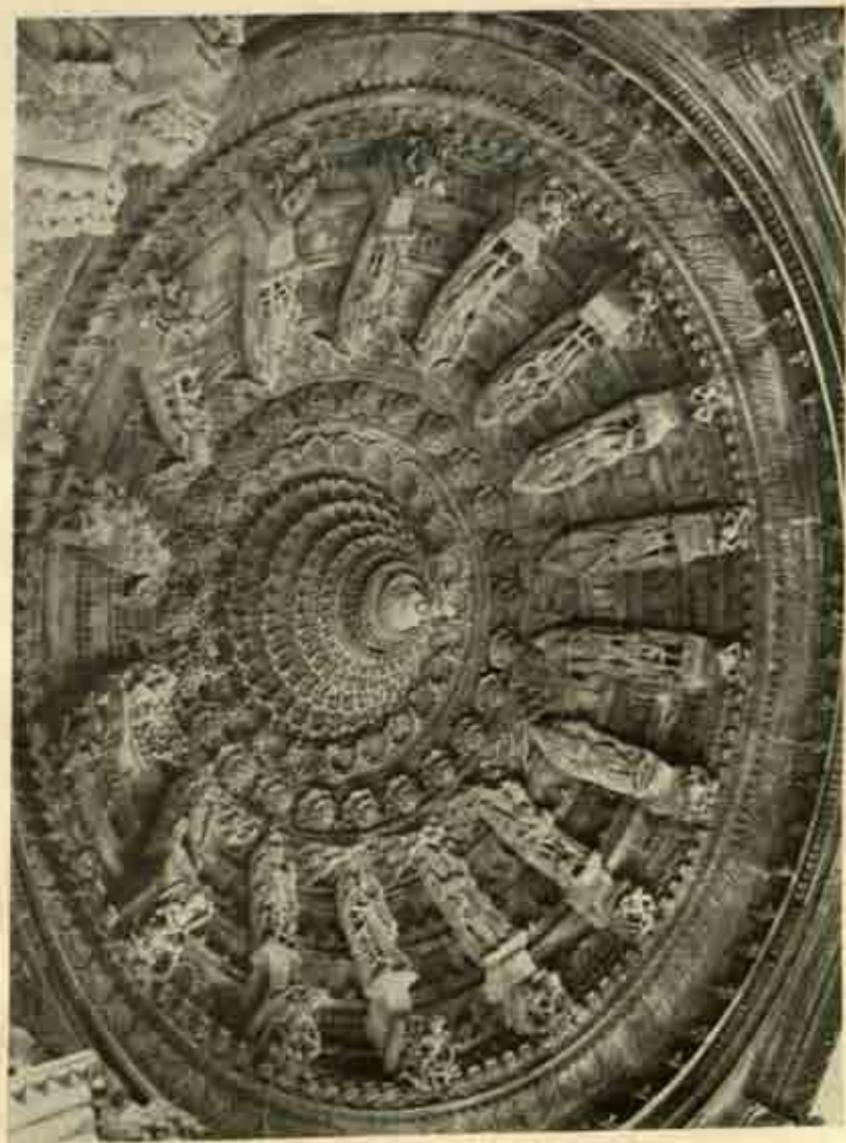


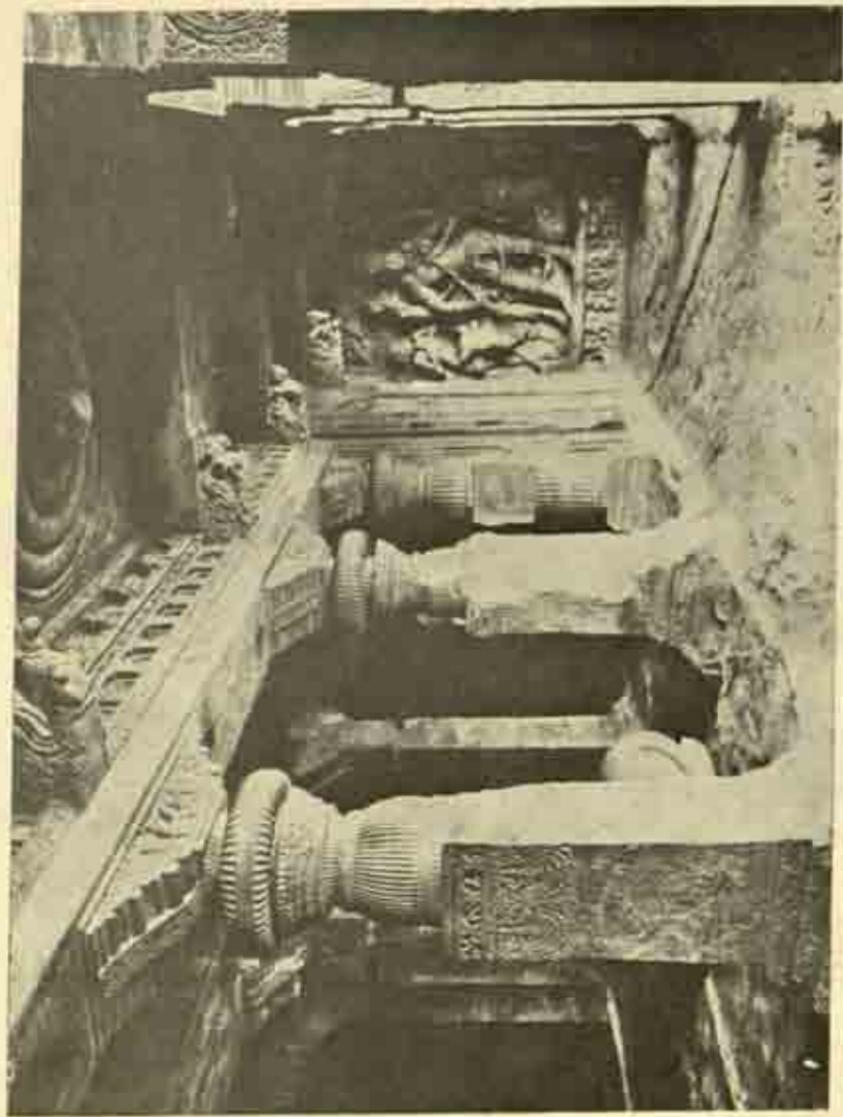
किराड़ के शिव मन्दिर का मण्डप

आदृ के नगराल मन्दिर का छीतरी दृश्य

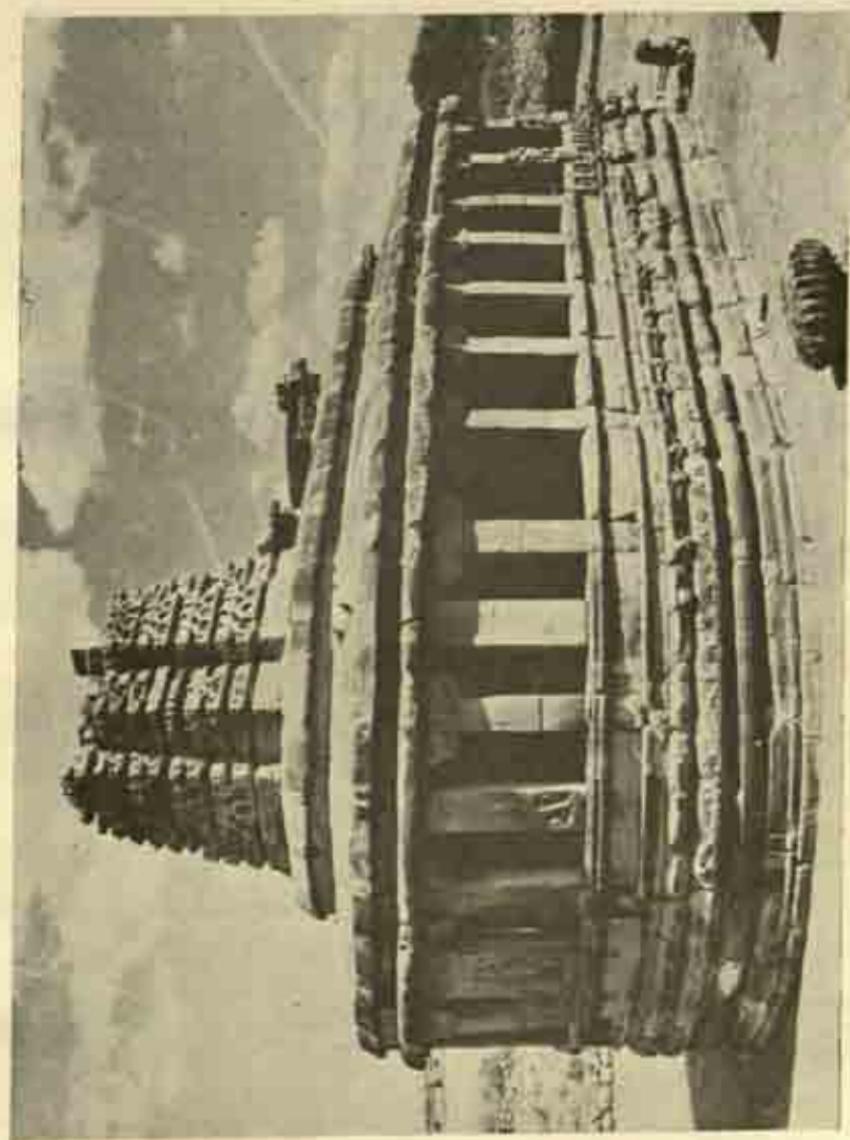


संचारण मंदिर की अवधूत शिल्प



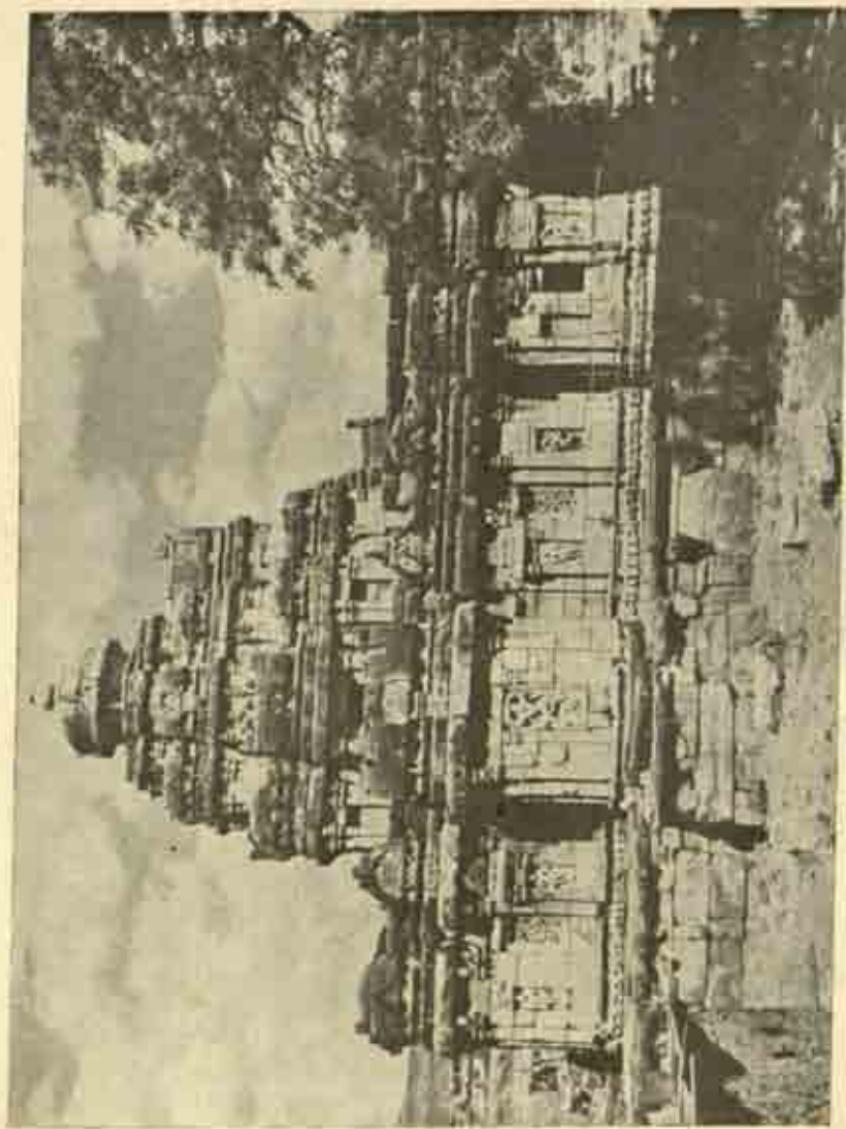


बादामी के मन्दिर का अवशेष

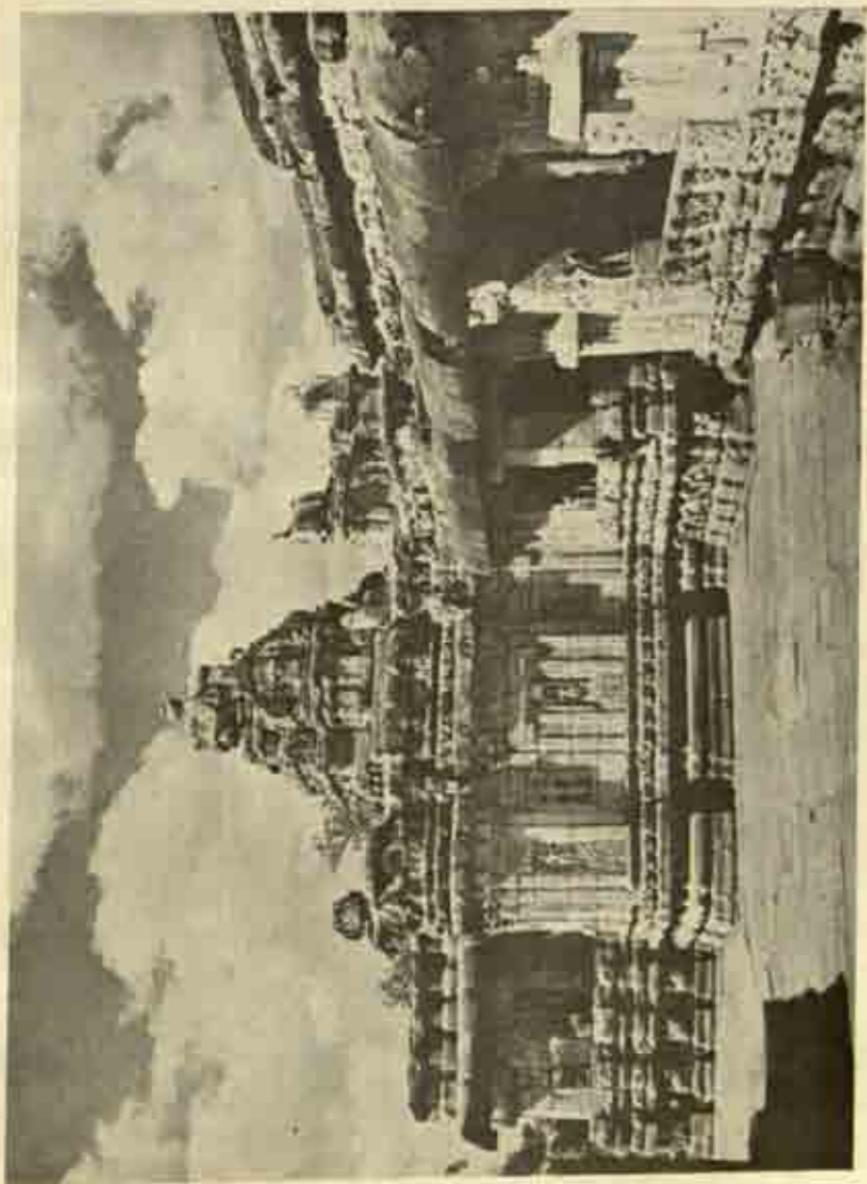


એહેં કા દુર્ગા મંદિર

महालक्ष्मीन मन्दिर, पट्टदलाळ

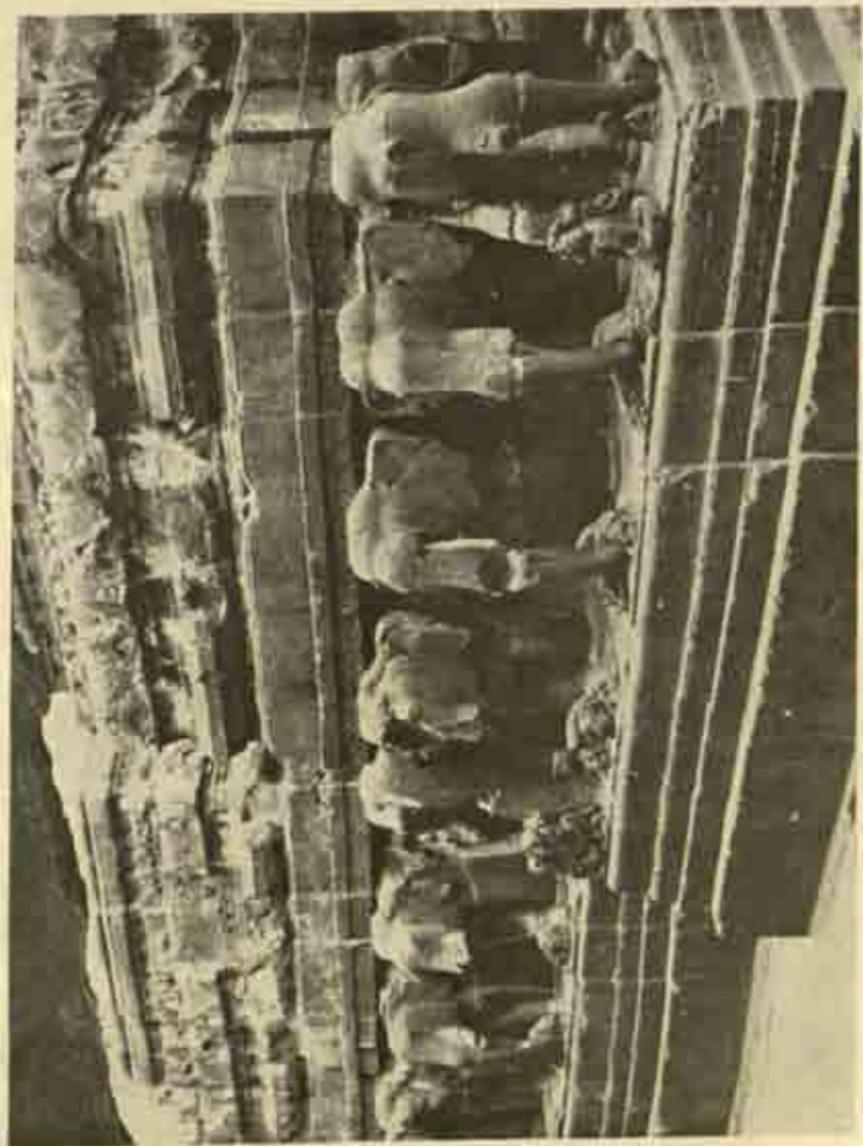


गिरावर्ष गिरि, पट्टदल



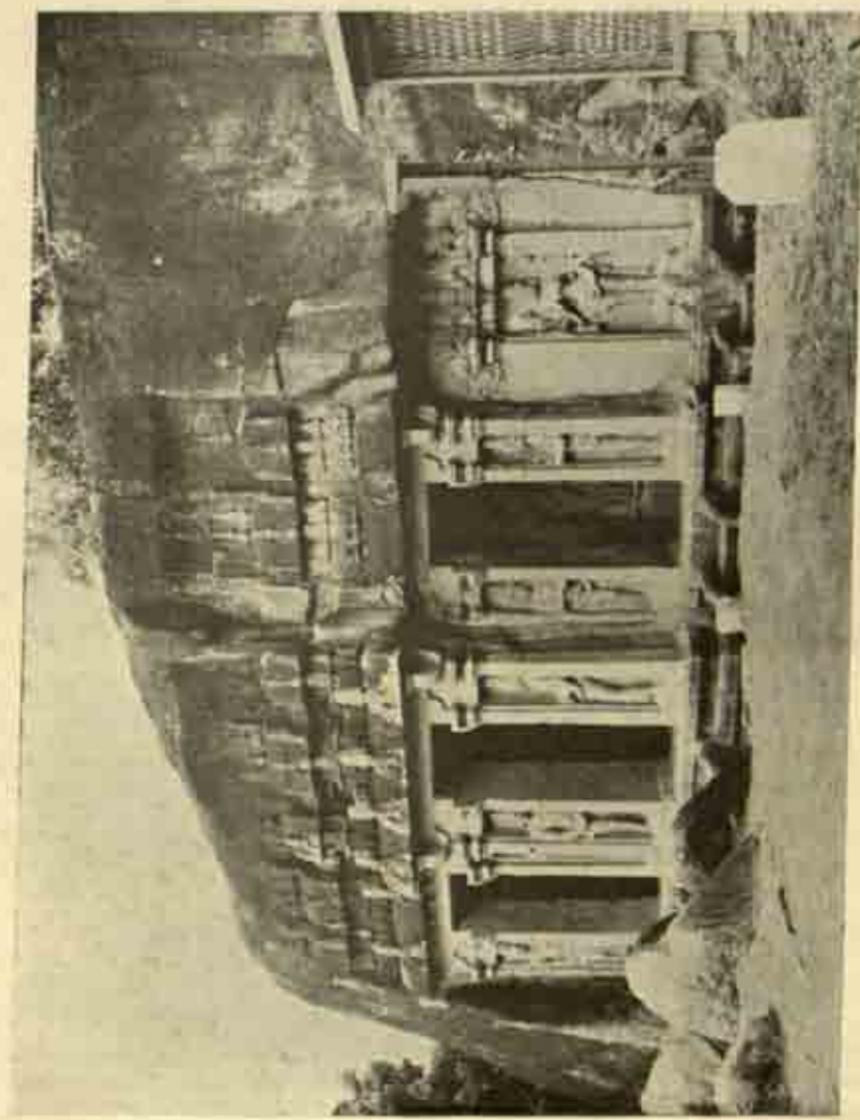


गुदोरा का कैलास मन्दिर



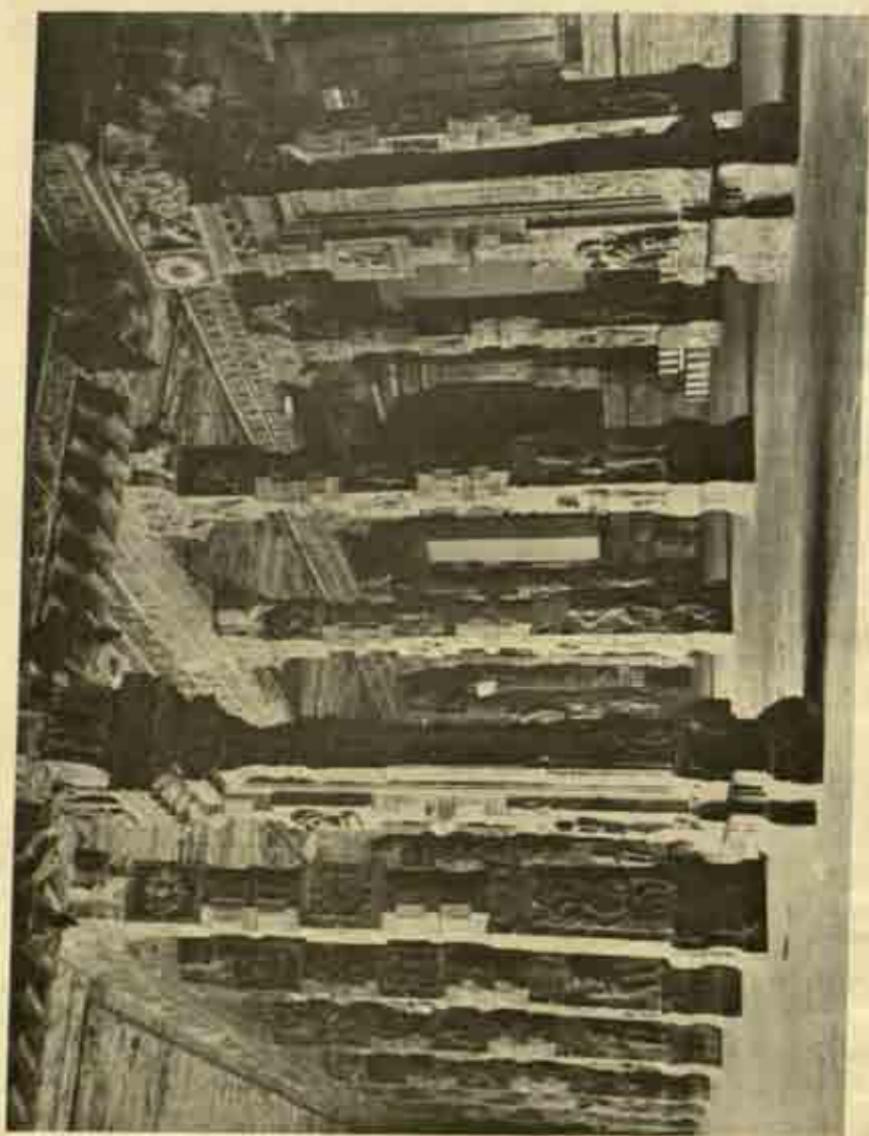
एकोया के कलास-बनिंदर में काव्यपरिचाण शालियों की बैठिस-मउजा

विमलि गुहा, महावरीपुरम्





गोमेकोंड-चोलपुरम् का बहुदीश्वर मन्दिर



11
n 7574

Central Archaeological Library,
NEW DELHI. 52258

Call No. 722.4109 / Kay.

Author— श्रीरामदेव अस्त्रियनि

Title— रामायण विजयचरित्रम्

Borrower No:	Date of Issue	Date of Return
01		

"A book that is shut is but a block"
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI

Please help us to keep the book
clean and moving.